प्रकाशक :
मंत्री-श्री जवाहर साहित्य समिति
भीनासर (बीकानेर-राजस्थान)

दूसरा सस्करण
मई १६६६

मूल्य :- दो रुपये पच्चीस पैसे

मुद्रक :
जैन आर्ट प्रेस
(श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा संचालित)
रांगड़ी मोहल्ला, बीकानेर

प्रकाशकीय

'नारी–जीवन' जवाहर किरणावली की परपरा में अट्ठाईसवीं किरण है। इसमे पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा. के नारीजाति सबन्धी प्रवचनों के आधार पर विचारो, उपदेशों, शिक्षाओं और उदाहरणों का सकलन किया गया है।

अधिकांश विचारक और विशेषतः आध्यात्मिक तत्त्वदृष्टा नारीजाति के प्रति उपेक्षा का दृष्टिकोण व्यक्त करने वाले दिखते हैं। उनका यह दृष्टिकोण उनके विचारो से सत्य है लेकिन इस बात को भी नहीं भुलाया जा सकता है कि नारी मानवता का पाठ पढाने वाली शिक्षिका है। नारी में दया, कोमलता, शांति और स्नेह आदि कुछ ऐसी स्वाभाविक विशेषतायें हैं जो उसे सदा–सर्दा के लिए गौरवशाली पद पर प्रतिष्ठित करने के लिये समर्थ हैं।

माता के रूप ने नारी स्नेह की अमीधारा की प्रतीक है जो सदैव मानवजाति को उच्चतम स्थिति की ओर गतिशील होने की शक्ति प्रदान करती है। पत्नी के रूप में भी नारी की स्थिति बहुत ऊंची है। वह गृहस्वामिनी है। नर के जीवन की प्रभाव-शील साझो है और पारिवारिक–व्यवहार के मामलों में उसकी उपेक्षा नही की जा सकती है। वहिन के रूप में नारी ने नर को वीरता का बोध कराया है। इसके अनेक उदाहरण इतिहास मे अकित हैं और यदि नारी के रूप में नारी का चित्रण करें तो नारी सारे संसार में सबसे अधिक नि स्वार्थ, सबसे अधिक आत्म–त्यागी, सबसे अधिक धैर्यशील, सबसे अधिक कर्त्तव्य परायण और सबसे अधिक कष्टसहिष्णु है एव उसे इसके लिए गर्व है।

पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा एक महान विचारक

और अध्यात्मवादी संतशिरोमणि थे और उनका नारीजाति के प्रति बड़ा सहानुभूति पूर्ण उदार दृष्टिकोण रहा है। उन्होंने मुक्त-कंठ से नारी जाति की महत्ता एवं विशिष्टता का प्रतिपादन किया है। साथ-ही-साथ नारीजाति की निर्बलताओं का भी यथायोग्य दिग्दर्शन कराने में कोई कसर बाकी नहीं रखी है और वह भी इसलिये कि नारीजाति अपनी निर्बलताओं को परखकर प्रशस्त पथ पर आरूढ होने में सक्षम बने।

भारतीय-संस्कृति ने नारी को सदैव सम्माननीय स्थान पर प्रतिष्ठित किया है। जिसकी साक्षी—यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता' जैसी सूक्तियां हैं। किन्तु आज भारतीय नारी अपने महत्त्व को, मातृत्व की गरिमा को और, देश समाज का कल्याण करने वाले आदर्शों को विस्मृत करती जा रही है। वह बालक को जन्म देने वाली जननी ही नहीं बल्कि गुरु भी है। उसके द्वारा डाले गये संस्कार संतान के भावी विकास के लिये पाथेय हैं। अतः नारीजाति की यह दुहरी जिम्मेदारी है कि वह वर्त-मान को व्यवस्थित करने के साथ-साथ भविष्य—निर्माण के लिये कृतसंकल्प बने। लेकिन यह तभी संभव है जब वह अपने दायित्वों को समझते हुए उन्हें साकार रूप देने के लिए अग्रसर होगी।

पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा. ने प्रवचनों के माध्यम से नारीजाति को उसके आदर्श, कर्त्तव्य, आदि का बोध कराया है और जो श्री कमला जैन 'जीजी' विशारद द्वारा लिपि-बद्ध और सुसंपादित होकर पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित है।

पच्चीसवीं, छब्बीसवीं, और सत्ताईसवीं किरण की भांति समाज के अग्रगण्य स्व. सेठ श्री इन्द्रचंदजी गेलडा द्वारा अपनी पुण्यश्लोका मातेश्वरी श्रीमती गणेशबाई की पुण्यस्मृति में श्री जवाहर विद्यापीठ भीनासर को प्रदत्त १११११०० में से

साहित्य प्रकाशन के लिये ६०१००० से इस अट्ठाईसवीं किरण के प्रथम सस्करण का प्रकाशन हुआ था। मूल रकम को कायम रखते हुए नया नया साहित्य प्रकाशित करने की नीति के अनुसार यह द्वितीय सस्करण भी उसी रकम से प्रकाशित हो रहा है।

पुस्तक प्रकाशन में श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ और उसके द्वारा सस्थापित, सचालित जैन आर्ट प्रेस के कार्यकर्त्ताओं के सक्रिय सहयोग के लिये सधन्यवाद आभारी हैं।

भीनासर — संघ सेवक

स. २०२६ मिती जेष्ठ शुक्ला २ — चपालाल बांठिया

दि १८–५–६९ — मन्त्री–श्री जवाहरसाहित्य समिति

! नम–संस्करण की प्रस्तावना

मुझे यह लिखते हुए बड़ा हर्ष होता है कि श्रीमती कमला देवीजी ने "नारी-जीवन" पुस्तक लिखकर वास्तव मे देश तथा समाज का बड़ा ही उपकार किया है।

किसी भी देश की उन्नति तथा विकास का उत्तरदायित्व बहुत अंशों में उस देश की स्त्रियों पर निर्भर होता है। इस पुस्तक में यही बताया गया है कि नारी का स्थान कितना ऊचा है तथा कोई भी देश, समाज और राष्ट्र इसके बिना निर्जीव है।

भारतीय नारी का स्थान सदैव ही ऊचा रहा है, भारतीय संस्कृति सदैव ही आध्यात्म-प्रधान रही है, किन्तु हम भारतीय नारी-महत्व को, मातृत्व के गौरव को, देश और समाज का कल्याण करने वाले आदर्शों को भूलती ही जा रही हैं। यह पुस्तक पुन. हम मे भारतीय नारी के महत्त्व को उपस्थित करती है तथा मशीन-युग में हमें उसी आध्यात्मप्रधान-संस्कृति का अनुसरण कर जीवन को आदर्शमय बनाने का आदेश देती है।

यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि "नारी-जीवन" पुस्तक हमारे समक्ष आई, जिसमें यह बताया गया है कि बच्चों के जीवन को उच्च बनाने के लिए नारी का कितना महत्त्व है ? समाज का उचित निर्माण और उत्थान करने के लिए स्त्री-स्वातन्त्र्य, प्रेममय जीवन, मातृत्व का गौरव महिलाओं को प्रदान करने की कितनी आवश्यकता है !

इतना ही नहीं, इस पुस्तक मे अनेक व्यवहारिक विविध

विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है। नारी का कार्यक्षेत्र घर की चारदीवारी के बाहर भी है, स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता क्यों है, इत्यादि। नारी की सहनशीलता का वास्तविक परिचय उसके मातृत्व जीवन से मिलता है, जिसके वात्सल्य का अखण्ड निर्मल झरना कभी नहीं सूखता।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इन सब अमूल्य विषयो को पढ़ने और मनन करने से हम सब का लाभ होगा। जैसी परिस्थिति इस समय देश की हो गई है, उसमें ऐसे ग्रथो का विशेष मूल्य है, उनके अध्ययन की विशेष आवश्यकता है।

शान्ति जैन एम. ए., बी. टी.
प्रधानाध्यापिका
सोसाइटी गर्ल्स हाई स्कूल, ब्यावर

अनुक्रमणिका

१ भारतीय नारी

१ प्राचीनकाल में स्त्री

किसी भी समय, किन्ही भी परिस्थितियो मे तथा किसी भी समाज मे स्त्रियो का स्थान सदैव महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण करने मे उन्ही का हाथ रहता है और वही व्यक्तित्व समाज व राष्ट्र का निर्माण करता है। परोक्ष रूप मे राष्ट्र की उन्नति व अवनति स्त्रियों की स्थिति पर ही अवलंबित है। अगर समाज मे स्त्रियां शिक्षिता, सुयोग्य गृहिणी व आदर्श माता हैं तो संतान भी गुणवान्, वीर तथा बुद्धिशाली होगी। भारतवर्ष सदैव समाज में स्त्रियो को महत्त्वपूर्ण स्थान देता रहा है। सीता, सावित्री के आदर्श किसी भारतीय से छिपे नही। स्वामी विवेकानन्द के शब्दो में—

'स्त्रियों की पूजा करके ही सब जातियां बड़ी हुई हैं। जिस देश मे, जिस जाति मे, स्त्रियो की पूजा नही होती वह देश, वह जाति, कभी बडी नहीं हो सकी और न हो सकेगी। तुम्हारी जाति का जो इतना अध पतन हुआ है उसका प्रधान कारण है इन्हीं सब शक्तिमूर्तियो की अवमानना।'' ।

स्त्री के मातृत्व की पूजा भारतवर्ष का आदर्श रहा है। वैदिक काल में स्त्रियां समाज मे किसी प्रकार से हीन न थीं। वे सदैव पुरुषो के समान अधिकारिणी थी। उन्हें पठन-पाठन आदि

सभी प्रकार की सुविधाएं प्राप्त थी। उन्हें "अर्धांगिनी" कहा जाता था। इसी शब्द मे उनका महत्त्व व उनके अधिकार स्पष्ट हैं। इसी प्रकार 'दम्पती' शब्द से भी समानता का बोध होता है। दोनो ही घर के स्वामी थे।

प्राचीन भारत स्त्रियो को वहुत महत्त्व देता था। जितने आदर्श स्वरूप देवी देवताओ की मान्यता थी उनमे स्त्री रूप का महत्त्व भी विचारणीय है। विद्या की देवी सरस्वती, धन की लक्ष्मी, सौदर्य की रति पवित्रता की गगा आदि। इनके अलावा भी काली महाकाली, दुर्गा, पार्वती आदि कई देवियों की उपासना की जाती थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि उस समय स्त्रियो को बहुत पवित्र उज्ज्वल दृष्टि से देखा जाता था। वर्तमान मे भी इन देवियों को काफी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है; बडी पवित्रता से इनकी पूजा की जाती है। वेदो मे एक स्थान पर कहा गया है कि, 'हे वधू! जहाँ पर तू व्याही गई है वहाँ की तू पूर्ण रूप से सम्राज्ञी है, वह तेरा ही साम्राज्य है, तेरे समस्त कुटुम्बीजन उस राज्य में सन्तुष्ट रहे!'

इस प्रकार परिवार मे वधू का स्थान काफी ऊंचा था। पर्दे की प्रथा तो उस समय नाम मात्र को भी न थी। स्त्रियाँ धार्मिक वादविवादों में नि सकोच भाग लिया करती थी। विदुषी गार्गी का उदाहरण देना इसके लिए पर्याप्त होगा। महिलाएं राजकार्य मे भी भाग लिया करती थी। वहुत समय वाद तक भी यह प्रथा प्रचलित रही। राज्यश्री वरावर राजसभा मे उपस्थित रहती थी तथा परामर्श भी देती थी।

स्त्रियाँ उच्च शिक्षा भी प्राप्त करती थी। कालीदास तथा उसकी पत्नी की प्रारभिक कथा वहुत प्रचलित है। गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा, आदि कई ऋषिकाएं थी जिन्होंने वेदो की ऋचाए भी लिखी हैं। जैन शास्त्रो में भी ऐसी महिलाओ के नाम भरे पड़े हैं

जो बहुत विदुषी थी। चन्दनबाला, मृगावती, ब्राह्मी, सुन्दरी आदि १६ सतियां तो थी ही इनके अलावा भी कई आर्याए थीं जो बहुत विदुषी थी। आज कल के कुछ लोग चाहे इन बातो मे विश्वास न करें, पर इनसे स्त्रियो की समानता के अधिकार की सिद्धि मे बाधा नही पड सकती।

आत्मिक विकास की दृष्टि से भी स्त्रियां पुरुषो के सदृश एक ही कार्यक्षेत्र मे रहती थी। याज्ञवल्क्य तथा मैत्रेयी का सवाद प्रसिद्ध है। मैत्रेयी ससार के समस्त ऐश्वर्य को तुच्छ समझती थी, अध्यात्मविकास को जीवन का सब से बडा ध्येय मानती थी। इस प्रकार आध्यात्मिक ज्ञान के साथ ही साथ धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में भी स्त्रियों को अच्छा स्थान प्राप्त था।

सीताजी के दुबारा वनवास के बाद जब राजसूय यज्ञ होने लगा तब सीताजी की उपस्थिति उस यज्ञ मे आवश्यक समझी गई। एक स्वर्ण-मूर्ति बनवा कर ही उस अभाव की पूर्ति करली गई। राज्याभिषेक के समय राजा व रानी दोनो का अभिषेक किया जाता था। माता व पिता दोनो मिलकर कन्यादान करते हैं, अकेला पिता ही कन्यादान नहीं कर सकता।

इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि उस समय सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक क्षेत्र मे स्त्रियो को समान अधिकार प्राप्त था। उनके मातृत्व के गौरव की सदैव पूजा होती थी। वे अपनी विद्वत्ता एव प्रतिभा के सस्कार अपनी संतानों पर अंकित कर राष्ट्र का भार वहन करने योग्य, गुणवान तथा वीर सतान उत्पन्न कर अपना कर्त्तव्य पूर्ण करती थीं।

२ मध्यकाल में स्त्री

पर धीरे धीरे मध्यकाल मे परिस्थितियां कुछ बदलती गई।

मध्यकाल में स्त्रियों की स्वतन्त्रता उतनी न रही जितनी प्राचीन काल मे उन्हें मिलती थी। वह पूज्य दृष्टि भी वैसी न रही। पुरुष की स्त्री के प्रति पवित्र भावधारा अब विपरीत दिशा की ओर बहने लगी। जिन आदर्शों के द्वारा देश व समाज का कल्याण हो सकता था उन्हें लोग भूलने लग गए। पहिले स्त्रियों मे जो दिव्य गुण थे वे ही अब कमजोरियों मे परिणत होने लगे। स्त्री शारीरिक दृष्टि से पुरुष की अपेक्षा कुछ कमजोर थी, अत पुरुष उसकी रक्षा करने मे कुछ गौरव का अनुभव करता था। धीरे धीरे आर्थिक दृष्टि से भी स्त्री के अधिकार कम हो गए। अतः पुरुष स्त्री को एक साधारण दासी के रूप मे समझने लगा। जो स्त्री पहिले सम्राज्ञी थी उसका स्थान बहुत हीन हो गया। पहिले जो स्त्रियाँ अपनी योग्यता द्वारा समाज, धर्म व राष्ट्र का नेतृत्व कर सकती थीं वे अब कमजोरियों की खान होकर निर्बल, पराधीन व निरुपाय हो गई। प्राचीन आदर्श भी पूर्ण रूप से भुला दिया गया। धीरे-धीरे परिस्थितियाँ और भी बिगडती गई। स्त्री की स्वतन्त्र विचारशक्ति तथा व्यक्तित्व का लोप सा हो गया।

नये आदर्श बिना सिर पैर के बना लिए गए तथा प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष ने अपने अधिकारो को असीम बना लिया। मनुस्मृति में लिखा है:—

अस्वतन्त्रा. स्त्रिय कार्या पुरुषैं स्वैर्दिवानिशम्।
विषयेषु च सज्जन्त्य. संस्थाप्या आत्मनो वशे॥
पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥

स्त्री की परिस्थिति का सजीव चित्र इस मे स्पष्ट है। स्त्रियों को परतन्त्र रखना चाहिए। पुरुषो को चाहिए कि वह पत्नियों को अपने वश में रखें। कौमारावस्था मे पिता कन्या की रक्षा करता है, यौवनावस्था में पति रक्षा करता है तथा वृद्धावस्था में

पुत्र । स्त्रियों को स्वतन्त्रा कभी नही मिलनी चाहिए ।

स्त्रियो को सर्वदा अविश्वास की दृष्टि से देखा जाने लगा। उन्हें पुरुषों के सदृश अधिकार पाने के सर्वथा अयोग्य समझा जाने लगा । आठ प्रकार के विवाहो मे से असुर राक्षस तथा पैशाच भी माने गये । यदि पुरुष किसी स्त्री का जबर्दस्ती अपहरण भी करले तो भी वह उसके साथ विवाह करने का अधिकारी है। बौद्ध सघ मे पहिले तो स्त्रियो को भिक्षुणी होने की मनाई थी पर जब उन्हें आज्ञा दे दी गई तब भिक्षुओ से अधिक कड़े नियमों का निर्माण किया गया ।

पहिले स्त्रियाँ विस्तृत, पवित्र कार्यक्षेत्र मे थीं, किन्तु मध्य-युग का वातावरण अत्यन्त सकुचित, विषमतायुक्त, अविश्वास-पूर्ण तथा हीन था। उनकी शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक सभी प्रकार की उन्नति को रोक कर उनका स्थान घर तक ही सीमित कर दिया गया । पति की सेवा ही उसके जीवन का एक मात्र पवित्र उद्देश्य निश्चित हो गया । कहा गया —

"पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया"

-पतिसेवा ही स्त्री का गुरुकुल में रह कर शिक्षा प्राप्त करना है। गृहकार्य ही उसका यज्ञ व अग्निहोत्र है ।

पर इतना सब होते हुए भी कही कहीं स्त्रियों के प्रति पूज्य-भाव की झलक मिलती है। जैसे:—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता"

अर्थात् जहाँ स्त्रियो का सम्मान किया जाता है वहाँ देवताओं का निवास होता है। इस वाक्य मे पुराने आदर्श का स्पष्ट प्रतिबिम्ब है, पर ऐसे कुछ वाक्य सिर्फ स्त्रियो की गौरव-गरिमा ही करते रहे । उनकी स्थिति तथा अधिकारो मे कोई परिवर्तन नहीं हुआ ।

इस समय तक स्त्रियों की हालत काफी खराब हो चुकी

थी, उनकी विद्वत्ता, व्यक्तित्व, विचारशक्ति, पाडित्य काफी क्षीण हो चुका था पर यह सब पूर्ण रूप से नष्ट नहीं हुआ था। उनकी शक्तियो पर एक आवरण-सा आगया था, जिसके कारण अपनी शक्ति व योग्यता का उचित उपयोग वे नहीं कर सकती थीं। बौद्ध ग्रंथों मे कई विदुषी भिक्षुणियो का उल्लेख है।

३ राजपूत काल में स्त्री

राजपूतों के समय में भी स्त्रियों की वीरता तथा शौर्य का पूर्ण रूप से नाश नही हो गया था। रानी दुर्गावती, लक्ष्मीबाई आदि के उदाहरण भारतीय इतिहास मे सर्वदा अमर रहेंगे। राजपूत स्त्रियो की सतीप्रथा विश्व के समक्ष भारतीय ललनाओं के त्याग व वीरत्व का ज्वलत उदारहण है। मुगलो के आक्रमणों मे उनकी जीत हो जाने पर अपने सतीत्व की रक्षा के लिए वे स्वतः ही अग्नि मे जल कर भस्म हो जाती थीं। स्त्रियो के अनुपम जीवित त्याग के ऐसे उदारहण विश्व मे कही भी नहो मिल सकते।

स्त्रियों की स्थिति का पतन हो रहा था पर प्राचीन अ दशो की छाप उनमे स्पष्ट लक्षित होती है। प्राचीन युग के उन पवित्र आदर्शों को पुरुष भूलने लग गये थे पर स्त्रियों के हृदय प्रदेश के एक कौने मे वे सदैव प्रतिध्वनित होते रहे।

४ महिलामर्यादा का ह्रास

प्राचीन आदर्शों के बचे खुचे अ श आखिर कब तक समय व परिस्थितियो के थपेडों से अपने को सुरक्षित रख सकते थे? शीघ्र ही वे धराशायी हो गये। स्त्री समाज का भाग्य सितारा भी अस्त हो गया। उन्हें परतन्त्रता की बेड़ियों मे अच्छी तरह जकड़ा

गया। उनके समस्त अधिकार छीन लिये गये। परिवार तथा समाज मे कई स्त्रियो का स्वतन्त्र अस्तित्व न रह गया। समाज के अत्याचारो व अन्यायो से वे पूरी तरह ग्रस्त हो गई। पग पग पर कठोर यातनाए सहते हुए भी उनकी आहे समाज का हृदय द्रवित न कर सकी। मानव न समझ कर पशुओ की तरह उनके साथ व्यवहार किया गया। कही कही तो पशुओ से भी बुरी हालत उनकी हो गई। जानवरो को भी कम से कम पूरा परिश्रम करने पर भर पेट भोजन प्रेम से प्राप्त हो ही जाता है पर स्त्रियो को वह दूभर हो गया।

जहाँ पहले 'गृहसम्राज्ञी' 'गृहस्वामिनी' आदि आदर-सूचक शब्दो द्वारा उनका सम्मान किया जाता था वहाँ मनुष्य स्त्रियों के 'पैर की जूती' जैसे अनादर वाचक शब्दो का प्रयोग करते हुए भी लज्जा का अनुभव न कर अपने को अधिक पुरुषत्वमय समझने लगे। इसे निरी पशुता न समझी जाय तो और क्या समझा जाय।

पुरुष, स्त्री व समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों को तो भूल ही गए थे, वे स्त्री को एक मनोविनोद व सुख का साधन मात्र समझने लगे। जो स्त्री जितना अधिक पुरुष को शारीरिक या वैषयिक आनन्द प्रदान कर सके उतनी ही वह उसकी प्रेमपात्री रही। जो आत्मसमर्पण द्वारा पुरुष की कामलिप्सा को पूर्ण नही कर सकी उनके साथ बहुत अमानुषिक व्यवहार किया जाने लगा।

बाल विवाह की प्रथा भी स्त्री जाति के पतन में बहुत सहायक हुई।

"अष्टवर्षा भवेद् गौरी, नववर्षा तु रोहिणी,
दशवर्षा भवेत् कन्या, अत ऊर्ध्वं रजस्वला।"

यह सिद्धान्त लोगो को बहुत मान्य एव रुचिकर प्रतीत हुआ। कन्याओ को गुणवती व शिक्षिता बनाना तो अलग रहा, अल्पवय मे

उनका विवाह करना ही उन्हे सब से अधिक हितकर प्रतीत हुआ। मानो विवाह के अलावा विश्व मे लडकियो के लिए अन्य महत्त्व-पूर्ण वस्तु है ही नही। इस अज्ञानता का प्रभाव बहुत दूषित रहा। जहाँ दो चार वर्षों की उम्रवाली कन्याओ के विवाह होने लगे वहाँ आठ दस वर्ष की उम्र वाली विधवाओ की कमी न रही। जिस अवस्था मे वे दुधमुहीं अबोध बालिकाएँ सरलतावश विवाह को समझती भी नही, उसी उम्र मे उनका विधवा हो जाना कितना दयनीय होगा!

ऐसी परिस्थितियो मे आजन्म ब्रह्मचर्य पालन भी असभव है। ब्रह्मचर्य कोई जबर्दस्ती की वस्तु नही। मानव सुलभ भावनाओ को तो नही दबाया जा सकता। जहाँ बडे भारी तपस्वी सदाचारी विश्वामित्र भी मेनका के समक्ष कामवासना को वश मे न कर सके, वहाँ इन भोली भाली कन्याओ से क्या आशा की जा सकती है कि वे अपने सदाचरण द्वारा अपने हृदय को पवित्र व निष्कलङ्क रख सकें। परिणामस्वरूप समाज मे दुराचार व वेश्या-वृत्ति बढने लगी। आर्थिक विषमता भी इसमे काफी सहायक रही।

पहिले जब स्त्रियाँ सुशिक्षित तथा सुसस्कृत थी, वे विवाहित जीवन तथा पतिव्रत के आदर्श को समझ कर उसके अनुसार आचरण करने का पूर्ण प्रयत्न करती थीं। उसी के फल-स्वरूप पति की मृत्यु के उपरात अपने जीवित रहने की अपेक्षा मृत्यु का आलिंगन अधिक उपयुक्त समझ कर अपने आपको अग्नि मे जला कर भस्म कर देती थी। यद्यपि यह धारणा या प्रथा घोर अज्ञान का ही फल थी, मगर बिल्कुल स्वेच्छा से थी। किसी भी प्रकार की जबर्दस्ती इस सम्बन्ध मे करना अनुचित समझा जाता था। क्योकि जबर्दस्ती किसी स्त्री को जल मरने के लिए बाध्य करना मानव हिंसा से किसी भी हालत मे कम न था। पर धीरे धीरे

लोग पाशविकता की सीमा को भी उलघन कर बैठे। पति की मृत्यु के साथ साथ पत्नी को भी चिता मे जलाने के लिए विवश कर दिया जाने लगा। एक तरफ अबोध, पर्दे में बन्द, पराधीनता मे जकडी हुई, पुरुष के अत्याचारों से त्रस्त बालिकाओ का करुण क्रदन और दूसरी ओर विधवाओ के रूदन तथा चिता पर बैठी हुई बालिकाओ के करुण चीत्कारो से समाज का अणु अणु सिहर उठा। धीरे-धीरे इन पाशविक अत्याचारो की प्रतिक्रिया के लिए पुकारें उठने लगी।

वर्तमान युग में महिला

इन्हीं बुराइयो को दूर करते हुए, किन्ही अशो मे समाज-सुधार की आवाजें उठाते हुए वर्तमान युग का प्रारम्भ होता है। बहुत कुछ सुधार होना प्रारम्भ हो रहा है, पर जैसा होना चाहिए वैसा नही। सती प्रथा को बन्द कर दिया गया। इसके आन्दोलन को उठाने वाले सर्व प्रथम राजा राममोहन राय थे। ऐसी पाशविकता क्रूरताएँ मानव समाज के लिए अत्यन्त लज्जास्पद थी, अत सरकार को इसके विरुद्ध नियम बनाने को बाध्य किया गया।

बालविवाहो को रोकने के लिए भी प्रयत्न किए गए। 'शारदा एक्ट' के द्वारा ये गैर कानूनी घोषित हो गए। आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए भी आवाज उठाई गई। पैतृक सम्पत्ति मे स्त्रियो के अधिकार का प्रश्न भी आजकल महत्वपूर्ण हो रहा है।

इस प्रकार स्त्रियों के अधिकारों की प्राप्ति के लिए बडे जोरों से प्रयत्न हो रहा है। इस युग को प्रतिक्रिया का युग कहें तो अतिशयोक्ति न होगी।। स्त्री समाज भी सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक क्षेत्र में अपने अधिकारो के लिए लालायित हैं। हीन

मनोवृत्ति तथा अत्याचार बर्दाश्त करने के लिए अब स्त्रियाँ तैयार नहीं है। पुरुषों के बराबर ही रहना उनकी शिक्षा का मुख्य ध्येय है। कम से कम शिक्षिता स्त्रियाँ तो पुरुषों के अधीन रहना कभी पसन्द नही करतीं। वे देश व समाज के प्रश्नो को हल करने के लिए पुरुषों के समान ही अपने को सिद्ध करना चाहती हैं। उच्च शिक्षिताओ के सिवाय साधारण शिक्षिता स्त्रियाँ भी अपने अधिकारो को समझने लगी है। आधुनिक राजनीतिक तथा सामाजिक आन्दोलनो मे सभी प्रकार की स्त्रियाँ का भाग लेना इसी मनोवृत्ति का परिचायक है।

भविष्य

स्त्री और पुरुष समाज के दो अविभाज्य अंग है। दोनों की समान रूप से उन्नति और जागृति के बिना समाज की उन्नति असम्भव है। क्योंकि अशिक्षिता एवं पिछडी हुई स्त्री जाति राष्ट्र के लिए गुणवान एव वीर सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकती। अतः स्त्री जाति का उत्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह भी निश्चित है कि परतन्त्रता मे कभी भी सुख और उन्नति नही हो सकती। अत. स्वतन्त्र वातावरण ही जागृति के क्षेत्र का पहला कदम होगा। कई लोगो की दृष्टि मे सम्भवत. स्त्री-स्वतन्त्रता अनुपयुक्त हो पर किसी भी दृष्टिकोण से यह भावना दूषित नहीं, पर यह आवश्यक है कि स्वतन्त्रता का अनुचित उपयोग न हो। यह तो जागृति का एक साधन मात्र, है अन्तिम लक्ष्य नही। भारतीय आदर्श को समझना तथा उसके अनुसार आचरण करना ही स्वतन्त्रता का सफल परिणाम होगा। स्वतन्त्रता के भारतीय और पाश्चात्य आदर्शों मे बहुत विभिन्नता है। पाश्चात्य सभ्यता मे स्वतन्त्रता अनियन्त्रित तथा तथा ऊँचे आदर्शों से रहित है। आध्यात्मिक सुखो को त्याग कर

शारीरिक सुख प्राप्ति ही उसका लक्ष्य है। मानवसुलभ गुण जैसे विनय, लज्जा धैर्य आदि को वहाँ महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नही। ऐसा दृष्टिकोण भारतीय सस्कृति से मेल नही खाता। योरोप में सामाजिक जीवन मे चाहे जैसी सफलता हो पर भारतवर्ष मे इन सिद्धान्तो के अनुसार सफल गृहस्थ जीवन नही हो सकता तथा आध्यात्मिक रुचि तो इसमे कम से कम पैदा नहीं की जा सकती। और वही भारतीय आदर्श का प्राण है। भारत की उच्च शिक्षिता स्त्रियाँ इसी पाश्चात्य सस्कृति के प्रवाह मे वही जा रही है। नाना प्रकार की विभिन्न विलास सामग्रियो से अपने को सुसज्जित रखने मे ही अपनी शिक्षा और योग्यता का उद्देश्य समझती हैं। वे सीता और सावित्री बनने की अपेक्षा सिनेमा-अभिनेत्री बन कर अपने सौंदर्य तथा अश्लील अभिनय एव नृत्यो द्वारा जनता को आकर्षित करने मे ही अपने कर्त्तव्य की इति श्री समझती हैं। कला की उपासना और अश्लील सौंदर्य-प्रदर्शन भिन्न वस्तु है।

इस प्रकार की स्वतन्त्रता आध्यात्मिकता से दूर रखकर विलासिता सिखाती है, मर्यादा का उल्लघन कर अनियन्त्रित उच्छृं-खलता को प्रेरित करती है। यह भारतीय आदर्श के सर्वथा विपरीत है। पाश्चात्य सभ्यता का ऐसा अन्धानुसरण भारत के लिए हितकर सिद्ध नही हो सकता।

योरोप मे महिलाओ को प्रारम्भ से ही आजीविका की चिंता करनी पड़ती है। उनकी शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य धनोपार्जन ही होता है। ऐसी अवस्था मे स्त्री और पुरुष दोनो प्रतिद्वन्द्वी हो जाते हैं। भारतीय गार्हस्थ्यव्यवस्था के समान पूर्ण रूप से सुचारु विभाजन न होने से वहाँ कौटुम्बिक जीवन में शाति एवं सुख का अभाव है।

पुरुष और स्त्री की स्पर्धा मे ही स्वार्थ भावना अन्तर्हित हो जाती है। न पुरुष स्त्री के लिए स्वार्थ त्याग कर सकता है

और न स्त्री, पुरुष के लिए। जहाँ इतने भी आत्मसमर्पण की भावना न हो वहाँ दाम्पत्य जीवन कैसे सुखी और सन्तुष्ट हो सकता है ? केवल आर्थिक स्वतन्त्रता ही तो जीवन को सुखमय बनाने के लिए पर्याप्त नहीं। किन्ही परिस्थितियो मे यह दम्पती के हृदयों मे वैमनस्य बढाने में सहायक भी हो सकती है। वहाँ स्त्री जाति की स्वतन्त्रता ही ने पारिवारिक सुखो पर पानी सा फेर दिया है। महिलाएँ उसका उचित उपयोग नहीं करती। जहाँ दानो के हृदयों मे एक दूसरे के प्रति तनिक सी भी त्याग और बलिदान की भावना न हो वहाँ कौटुम्बिक जीवन मे सरसता की आशा किस प्रकार की जा सकती है ? विचारों की थोडी सी विभिन्नता शीघ्र ही हृदयो मे कटुता व मलिनता उत्पन्न कर सकती है। योरोप मे ऐसी परिस्थितियाँ अत्यन्त भीषण रूप धारण कर खडी हैं। विचारक गण अपने मस्तिष्क की शक्ति को इन समस्याओ को सुलझाने मे लगा रहे हैं, पर यह विषय मस्तिष्क का न होकर हृदय का है। जब तक समाज की विशेष रूप मे महिलाओ की मनोवृत्तियो मे परिवर्तन नही हो जाता कौटुम्बिक जीवन मे सुधार की आशा असम्भव है।

ठीक ऐसी ही परिस्थितियाँ अभी भारतवर्ष मे होती जा रही है। ज्यो-ज्यो स्त्री शिक्षा का प्रचार होता जा रहा है महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्वतन्त्रता के नारे लगाए जा रहे हैं। पाश्चात्य सभ्यता की चमक भारतीय महिलाओं के सरल नेत्रों मे एक विचित्र सा जादू कर रही है, वे चकाचौंध होकर स्थिर दृष्टि से कुछ सोच भी नहीं सकती। अभी तक तो यही दिखलाई पड़ रहा है कि हमारी शिक्षा पाश्चात्य सभ्यता की ओर जा रही है। कोरी आर्थिक स्वतन्त्रता से जीवन में जो नीरसता तथा कर्कशता आ सकती है उसी के लक्षण यहा भी दिखाई पडने लग गए हैं। सभवत इस प्रकार की शिक्षा दाम्पत्य जीवन को सरस एव

सुन्दर बनाने में अपूर्ण रहेगी। शिक्षिता स्त्रियाँ स्वाभाविक रूप से पहिले से ही कुछ आत्म-गौरव का अनुभव करती है, जिसके कारण पति के प्रति सहज प्रेम और वह आदर भाव नही होता जो सफल दाम्पत्य-जीवन का प्राण है।

हमे विश्वविद्यालयो के पाठ्यक्रम की शिक्षा के अलावा ऐसी शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए जो क्रियात्मक रूप से सरस कौटुम्बिक जीवन के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके। केवल अर्थ-प्राप्ति ही तो जीवन को सुखी नही बना सकती। निर्धन पुरुष भी श्रीमन्तों की अपेक्षा अधिक सन्तुष्ट, निश्चित तथा सुखी रह सकते हैं। प्रश्न तो हृदय में प्रेम और सहानुभूति का है। जहाँ पवित्र प्रेम हो वहाँ कैसी भी परिस्थिति मे जीवन सरस रहता है।

हम अभी यह अनुभव नही कर रहे है कि आर्थिक स्वतन्त्रता के साथ साथ स्त्री के प्रतिस्पर्धा के क्षेत्र मे प्रवेश करने पर उसकी भावनाओ मे स्वार्थपरता आने की अधिक सम्भावना है। ठीक योरोप की तरह। लेकिन स्त्रियो को तो आत्मसमर्पण, प्रेम और त्याग की सजीव प्रतिमा होना चाहिए। आर्थिक प्रश्न तो यहाँ उपस्थित ही नही होना चाहिए। जीवन के इन बहुमूल्य गुणों को खोकर थोडी सी स्वतन्त्रता प्राप्त की तो वह बिल्कुल नगण्य है। इन गुणों से जीवन मे जो शाति,सुख, सन्तोष एवं सरसता प्राप्त हो सकती है वह बहुत सा अर्थ सचय करने मे भी नही। भौतिकवादी दृष्टिकोण से अर्थ को ही जीवन की सबसे मुख्य वस्तु समझ लेना बडी भारी भूल है। स्त्री जाति को इससे दूर रखने की आवश्यकता है। उनके लिए सबसे मुख्य वस्तु तो प्रेम, सहानुभूति, आत्मसमर्पण तथा विनय द्वारा आदर्श पत्नी तथा आदर्श माता बनकर राष्ट्रोत्थान के लिए वीर, तथा गुणवान सन्तान उत्पन्न करने में ही जीवन की सार्थकता है।

महिला-महिमा

स्त्रियो को हीन समझ लेने से ही आज भारत के प्राचीन गौरव से लोग हाथ धो बैठे हैं। जिस समय भारत उन्नति के पथ पर था उस समय का इतिहास देखने से पता लग सकता है कि तब स्त्रियों को किस उच्च दृष्टि से देखा जाता था और समाज मे उसका कितना ऊँचा स्थान था। पश्चात् जैसे जैसे पुरुष स्त्रियों का सम्मान कम करते गए, वैसे वैसे ही स्वय अपने सम्मान को भी नष्ट करते गए। राष्ट्र में नवीन चैतन्य आना स्त्रियो की उन्नति पर ही निर्भर है।

कई लोगों ने स्त्री समाज को पगु कर रखा है, या यों कहो कि पगु बना रखा है। यही कारण है कि यहां सुधार आन्दोलनों मे पूरी सफलता नहीं होती। यदि स्त्रियों को इस प्रकार तुच्छ न समझ कर उन्हे उन्नत बना दिया जाय, तो जो सुधार आन्दोलन आज अनेक प्रयत्न करने पर भी असफल रहते हैं, फिर उन्हे असफल होने का कोई कारण ही न रहे।

स्त्रियों की शक्ति कम नहीं है। जैन शास्त्र मे वर्णन है, कि स्त्रियो की स्तुति स्वयं इन्द्रो ने की है और उन्हे साक्षात् देवी कहकर त्रिलोकी मे उत्तम बताया है। त्रिलोकीनाथ को जन्म देने वाली स्त्रियाँ ही हैं। भगवान् महावीर ऐसे को उत्पन्न करने का सौभाग्य इन्ही को प्राप्त है।

स्त्री, पुरुष का आधा अग है, अत उस अग के निर्बल होने से अनिवार्य रूप से ही पुरुप निर्बल होगा। ऐसी स्थिति मे पुरुष समाज की उन्नति के लिए जितने भी उद्योग करते हैं, वे सब असफल ही रहेगे, अगर उन्होने पहले महिला-समूह की उन्नति व स्थिति सुधारने का प्रयत्न न किया।

मैं समभाव का व्यवहार करने के लिये कहता हूँ। इसका अभिप्राय यह नही है कि स्त्रियो को पुरुषो के अधिकार दे दिये जाय। मेरा आशय यह है कि स्त्रियो को स्त्रियों के अधिकार देने में कृपणता न की जाय। नर और नारी मे प्रकृति ने जो विभेद कर दिया है, उसे मिटाया नही जा सकता। अतएव कर्त्तव्य मे भी भेद रहेगा ही। कर्त्तव्य के अनुसार अधिकारों मे भी भेद भले ही रहे। मगर जिस कर्त्तव्य के साथ जिस अधिकार की आवश्यकता है वह उन्हें सौंपे बिना वे अपने कर्त्तव्य का पूरी तरह निर्वाह नहीं कर सकती।

पुरुष जाति को स्त्री जाति ने ही ज्ञानवान् और विवेकी बनाया है। फिर किस बूते पर पुरुष इतना अभिमान करते हैं? बिना किसी कारण के एक उपकारिणी जाति का अपमान करना, उसका तिरस्कार करना महाधूर्तता और नीचता है। पुरुषो की इन्हीं करतूतों से आज समाज रसातल की ओर जा रहा है। के बिना के नियम को याद रखे बिना और स्त्री जाति के उद्धार प्रकृति समाज का उद्धार होना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है।

कभी-कभी विचार आता है—धन्य है स्त्री जाति! जिस काम को पुरुष घृणित समझता है और एक बार करने मे भी हाय तोबा मचाने लग जाता है, उससे कई गुना अधिक कष्टकर कार्य स्त्री जाति हर्षपूर्वक करती है। वह कभी नाक नहीं सिकोड़ती। मुँह से कभी 'उफ' तक नही करती। वह चुपचाप अपना कर्त्तव्य समझकर अपने काम में जुटी रहती हैं। ऐसी महिमा है स्त्री जाति की। स्त्री जाति जिसका एक बार हाथ पकड़ लेती है, जन्म भर के लिए उसी की हो जाती है। फिर भी निष्ठुर पुरुषो ने उसे नरक का द्वार बतला कर अपने वैराग्य की घोषणा की है। अनेक ग्रन्थकारों ने स्त्री जाति को नीचा बतलाया है। वे यह क्यो नही सोचते कि पुरुष

के वैराग्य में अगर स्त्री बाधक है तो स्त्री के वैराग्य में क्या पुरुष बाधक नहीं है ? फिर क्यो एक की कडी से कडी भर्त्सना और दूसरे को दूध का धुला बताया जाता है ? इस प्रकार की बातें पक्षपात की बातो के अतिरिक्त और क्या हैं—

२ ब्रह्मचर्य

२ स्त्रियां और ब्रह्मचर्य

'किन्नाप्नोति रमारूपा ब्रह्मचर्य-तपस्विनी'

उस लक्ष्मीस्वरूप स्त्री के लिए कुछ भी असम्भव नहीं जो ब्रह्मचर्य तप की तपस्विनी है।

कुछ लोगों का कथन है कि स्त्रियों को पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना उचित नही, लेकिन जैन शास्त्र इस कथन के बिल्कुल समर्थक नहीं अपितु विरोधी हैं। उनमे जैसे पुरुषों के लिये ब्रह्मचर्य का उपदेश है बिल्कुल वैसा ही स्त्रियों के लिए भी। जैन शास्त्रों का यह आदेश कई महान् महिलाओं के आदर्श के अनुकूल है। ब्राह्मी और सुन्दरी नाम की भगवान् ऋषभदेव की दोनों सुपुत्रियों ने आजीवन ब्रह्मचारिणी रह कर ससार की स्त्रियो के सन्मुख एक आदर्श प्रस्तुत किया हैं। इसी प्रकार राजीमती और चन्दनबाला आदि सतियों ने अखड ब्रह्मचर्य का पालन किया था। इस प्रकार जैन शास्त्रों में स्त्री और पुरुष दोनो को समान रूप से ब्रह्मचर्य-पालन का आदेश है। स्त्रियां ब्रह्मचारिणी न हों, वे ब्रह्मचर्य का

पालन न करें यह कथन जैन शास्त्रों से सर्वथा विपरीत है। उन पर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध लगाना अनुचित है। स्त्री हो या पुरुष, जो ब्रह्मचर्य का पालन करेगा उसे उसका फल अवश्य ही प्राप्त होगा।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां ब्रह्मचर्य का पालन भी अधिक सुचारु रूप से कर सकती हैं। जैन शास्त्रों में ऐसी कई महिलाओं के उदाहरण हैं जिन्होंने अपने ब्रह्मचर्य व्रत से कई पतित पुरुषों को ब्रह्मचर्य पर स्थिर किया हो, राजीमती ने रथनेमी को पतित होने से बचाया था।

जिस प्रकार पुरुषों को अब्रह्मचर्य से हानियाँ होती हैं, उसी प्रकार स्त्रियों को बालविवाह, अतिमैथुन आदि से नुकसान होता है। इसके विपरीत ब्रह्मचर्य के पालन से स्त्रियों को सभी प्रकार का लाभ होता है।

२—ब्रह्मचर्य का स्वरूप

मन का कार्य इन्द्रियों को सुख देना नहीं किन्तु आत्मा को सुख देना है और इन्द्रियों को भी उन्हीं कामों में लगाना है जिनसे आत्मा सुखी हो। इन्द्रियों और मनका, इस कर्त्तव्य को समझ कर इस पर स्थिर रहना, इसी का नाम ब्रह्मचर्य है। गांधीजी ने ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में लिखा है—

"ब्रह्मचर्य का अर्थ सभी इन्द्रियों और सभी विकारों पर पूर्ण अधिकार कर लेना है। सभी इन्द्रियों तन, मन और वचन से सब समय और सब क्षेत्रों में संयम करने को ब्रह्मचर्य कहते हैं।"

यद्यपि सब इन्द्रियों और मन का दुर्विषयों की ओर न दौड़ना ही ब्रह्मचर्य है परन्तु व्यवहार में मैथुन-सेवन न करने को ही ब्रह्मचर्य कहते हैं।

ब्रह्मचर्य मन, वचन और शरीर से होता है इसलिए ब्रह्मचर्य के तीन भेद हो जाते हैं —मानसिक ब्रह्मचर्य, वाचिक ब्रह्मचर्य और शारीरिक ब्रह्मचर्य । मन, वचन और काय इन तीनो द्वारा पालन किया गया ब्रह्मचर्य ही पूर्ण ब्रह्मचर्य है । अर्थात् न मन में ही अब्रह्मचर्य की भावना हो, न वचन द्वारा ही अब्रह्मचर्य प्रकट हो और न शरीर द्वारा ही अब्रह्मचर्य की क्रिया की गई हो, इसका नाम पूर्ण ब्रह्मचर्य है। याज्ञवल्क्यस्मृति मे कहा है—

कायेन मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुनत्यागो, ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ॥

-'शरीर, मन और वचन से, सब अवस्थाओं मे, सर्वदा और सर्वत्र मैथुनत्याग को ब्रह्मचर्य कहा है ।'

कायिक ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं, जिसके सद्भाव मे, शरीर द्वारा अब्रह्मचर्य की कोई क्रिया न की गई हो । यानी, शरीर से अब्रह्मचर्य में प्रवृत्ति न हुई हो । मानसिक ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं, जिसके सद्भाव मे दुर्विषयो का चिंतन न किया जाए अर्थात् मन मे अब्रह्मचर्य की भावना भी न हो । वाचिक ब्रह्मचर्य उसे कहते है जिसके सद्भाव मे, अब्रह्मचर्य सम्बन्धी वचन न कहा जाय । इन तीनो प्रकार के ब्रह्मचर्य के सद्भाव को—यानी इन्द्रियो और मन का दुर्विषय की ओर न दौडने को पूर्ण ब्रह्मचर्य कहते है ।

कायिक, मानसिक और वाचिक ब्रह्मचर्य का परस्पर कर्ता, क्रिया और कर्म का-सा सम्बन्ध है । पूर्ण ब्रह्मचर्य वही हो सकता है जहाँ उक्त प्रकार के तीनो ब्रह्मचर्य का सद्भाव हो । एक के अभाव मे, दूसरे और तीसरे का एकदम से नही तो शनैः शनैः अभाव होना स्वाभाविक है ।

सक्षेप मे, इन्द्रियो का दुर्विषयो से निवृत्त होने, मन का दुर्विषयो की भावना न करने, दुर्विषयो से उदासीन रहने, मैथुनांगो सहित सब प्रकार के मैथुन त्यागने और पूर्ण रीति से, वीर्यरक्षा

करने एव कायिक, वाचिक और मानसिक शक्ति को, आत्म चिंतन, आत्म हित-साधन तथा आत्मविद्याध्ययन मे लगा देने ही का नाम ब्रह्मचर्य है।

३—ब्रह्मचर्य के लाभ

'तवेसु वा उत्तम बम्भचेर

(सूत्रकृतागसूत्र)

'ब्रह्मचर्य ही उत्तम तप है'

आत्मा का ध्येय, ससार के जन्म-मरण से छूट कर मोक्ष प्राप्त करना है। आत्मा, इस ध्येय को तभी प्राप्त कर सकता है जब उसे शरीर की सहायता हो— अर्थात् शरीर स्वस्थ हो। विना शरीर के धर्म नहीं हो सकता और धर्म के अभाव मे आत्मा अपने उद्देश्य की पूर्ति में समर्थ नही। उसे इसके लिए शरीर की आवश्यकता है और उसका भी आरोग्य होना आवश्यक है। अस्वस्थ और रोगी शरीर धर्म साधन मे उपयुक्त नहीं होता।

ब्रह्मचर्य-पालन मे शरीर स्वस्थ रहता है और रोग पास भी नही फटकने पाता। जैन शास्त्रों में यह एक आवश्यक व्रत है। इसके लिए प्रश्नव्याकरण सूत्र मे कहा है—

"पउमसरतलागपालिभूय, महासगडअरगभूय, तुम्वभूय, महानगरपागारकवाडफलिहभूय, रज्जुपिणद्धोव्व इन्दकेऊ, विसुद्धणेगगुणसपिणद्ध जम्मि य भग्गम्मि होइ सहसा सव्व सभग्गमट्टियचुणिय कुसल्लियपलट्टपडियखडियपरिसडियविणासिय विणयसीलतवनियमगुणसमूह।"

'ब्रह्मचर्य, धर्मरूप पद्म सरोवर का, पाल के समान रक्षक है। यह दया, क्षमा आदि गुणो का आधार एव धर्म के अगों का आधार स्तम्भ है। ब्रह्मचर्य धर्म रूपी नगरी का कोट और मुख्य रक्षाद्वार है। ब्रह्मचर्य के खण्डित हो जाने पर सभी प्रकार के धर्म

पर्वत से नीचे गिरे मृत्तिका के घट सदृश चकनाचूर हो कर नष्ट हो जाते हैं।

मोक्ष के प्रधान साधनों में ब्रह्मचर्य का स्थान महत्वपूर्ण है। प्रश्नव्याकरण सूत्र मे और भी कहा है—

जम्बू ! एत्तो य बम्भचेरं तव-नियम-नाण—
दसण-चरित्त-सम्मत्त विणय-मूल ॥
यमनियमगुणप्पहाणजुत्त हिमवंतमहत—
तेयमत पसत्थ गम्भीरथिमियमज्झ ॥

हे जम्बू ! ब्रह्मचर्य उत्तम तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सम्यक्त्व और विनय का मूल है। जिस प्रकार अन्य समस्त पहाड़ो में हिमालय सबसे महान् और तेजवान् है उसी प्रकार सब तपों में ब्रह्मचर्य उत्तम है।

अन्य ग्रन्थों में भी ब्रह्मचर्य को बहुत महत्व दिया गया है। इससे परलोक सम्बन्धी लाभ भी प्राप्त होता है। कहा है —

समुद्रतरणे यद्वत् उपायो नौ प्रकीर्तिता।
ससारतरणे तद्वत् ब्रह्मचर्यं प्रकीर्तितम् ॥
—स्मृति

समुद्र तरने का उपाय जिस प्रकार नौका है उसी तरह ससार से पार उतरने के लिए, ब्रह्मचर्य सर्वश्रेष्ठ साधन है।

भवोदधि पार कर मोक्ष में जाने के लिए भगवान् ने जिन पाँच महाव्रतों को बताया है, उनमें ब्रह्मचर्य चौथा है। इसके बिना मनुष्य का चारित्र नही सुधर सकता। मोक्ष प्राप्ति मे सहायक चारित्र धर्म का ब्रह्मचर्य अविभाज्य अग है।

पारलौकिक लाभ में जिन्हें अविश्वास हो, उनके लिए भी ब्रह्मचर्य हेय नहीं। इससे इहलौकिक लाभ भी बहुत होते हैं। सांसारिक जीवन मे शरीर स्वस्थ, पवित्र, निर्मल, बलवान्, तेजस्वी और सुन्दर रहता है। चिरायु रहने की, विद्या की, धन की,

कार्यक्षमता और कर्त्तव्यदृढता की भावना सदैव रहती है। जीवन निराशामय कभी नहीं होता। प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त होती है।

४—अब्रह्म

ब्रह्मचर्य को विधिवत् पालने के लिए मैथुन के समस्त अगों का परित्याग करना आवश्यक है। मैथुन के अंग इस प्रकार बताए गए हैं—

'स्मरण कीर्त्तन केलिः प्रेक्षण गुह्यभाषणम्।
सकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ॥
एतन्मैथुनमष्टाग प्रवदन्ति मनीषिण.।
विपरीत ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ॥'

'स्मरण, कीर्तन, केलि, अवलोकन, गुह्य भाषण, सकल्प, अध्यवसाय और क्रियानिष्पत्ति, ये मैथुन के अग हैं। इन लक्षणो से विपरीत रहने का नाम ब्रह्मचर्य है।

देखे हुए या सुने हुए पुरुषो को याद करना, उनके सौंदर्य को देखकर या प्रशसा सुन कर उसे याद करना 'स्मरण' है। पुरुषों की प्रशसा करना, उनके सम्बन्ध मे वार्तालाप करना उनके सौन्दर्य, यौवन आदि के सम्बन्ध मे बात-चीत करना 'कीर्त्तन' है। पुरुषो के साथ किसी प्रकार के खेल खेलना 'केलि' मैथुन का तीसरा अग है। काम सेवन की दृष्टि से पुरुषो से छिप छिप कर प्रेमालाप करना 'गुह्यभाषण' मैथुन का पचम अङ्ग है। पुरुष सम्बन्धी कामभोग भोगने के विचार करना 'सकल्प' है। पुरुष प्राप्ति की चेष्टा करना 'अध्यवसाय' और मैथुन करना 'क्रियानिष्पत्ति' मैथुन का आठवाँ अङ्ग है।

मैथुन के किसी भी एक अङ्ग के सेवन से सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य

का नाश हो जाना स्वाभाविक है। किसी भी एक इन्द्रिय के विषय-लोलुप हो जाने पर सभी इन्द्रियाँ और मन विषयलोलुप हो सकते है। उदाहरणार्थ—यदि कान किसी पुरुष के शब्द सुनने को आतुर हो तो नेत्र उसके सौन्दर्य को देखने, मुख उससे वार्तालाप करने, नाक उसके शरीर सुगन्ध को सूंघने और त्वचा उसका स्पर्श करने मे ही आनन्द का अनुभव करेगी।

इस प्रकार जब सभी इन्द्रियाँ दुर्विषयो की ओर आकर्षित हो जाती हैं तब बुद्धि भी नष्ट हो जाती है। आत्म सयम की शक्ति नही रहती। इन्द्रियाँ निरकुश होकर मन को कही भी ले जाती हैं। फिर आत्मा दिन प्रतिदिन पतन की ओर अग्रसर होती रहती है। फिर केवल काम-वासना की पूर्ति के लिए अन्याय से अर्थ-सचय किया जाता है। वह पतन के गहरे गर्त मे गिर कर अपने शरीर की सुधबुध तक भूल जाता है। जैन शास्त्रो मे अब्रह्मचर्य को बुरा कहा गया है। इन शास्त्रो के सिवाय अन्य सभी भारतीय और पाश्चात्य धर्म ग्रन्थो मे भी ब्रह्मचर्य को उत्तम तप और अब्रह्मचर्य को महान् पाप कहा है। प्रश्नव्याकरण सूत्र मे अब्रह्मचर्य को चौथा अधर्मद्वार माना है। इस सम्बन्ध मे ग्रन्थकार कहते है—

"जम्बू! अबभ चउत्थ सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स पत्थणिज्ज, पक-पणय पास-जालभूय त्थी।"

हे जम्बू! अब्रह्मचर्य चौथा अधर्मद्वार है। सुर-असुर, नर, लोकपति आदि सभी इस पाप रूपी कीच के दल-दल में फँसे हुए हैं। उनको यह जाल के समान फसाने वाला है।

आगे भी कहा है—

"मेहुणसन्नासंगिद्धा य मोहभरिया सत्थेहि हणति एक्कमेक्क विषय-विसे उदारएहि अवरे परदारेहिंहिमति।"

मैथुन में आसक्त अब्रह्मचर्य के अज्ञानाधकार से पूर्ण लोग परस्पर एक दूसरे की हिंसा करते हैं। जहर देकर घात करते हैं।

यदि परदारा हुई तो उस स्त्री का पति जहर से हिंसा कर देता है। इस प्रकार यह अब्रह्मचर्य का पाप मृत्यु का कारण है। अब्रह्मचर्य से धन राज्य, स्वजन का नाश होता है। कई जगह अपनी सन्तानो की भी हिंसा कर दी जाती है। इससे मित्रों, भाइयो, पिता-पुत्रो और पत्नियो मे स्नेह नष्ट होकर वैरभाव उत्पन्न हो जाता है। अब्रह्मचारी का चरित्र क्षण भर में नष्ट हो जाता है। उसका शरीर अत्यन्त निर्बल और रोगी हो जाता है। सैकडो व्याधियाँ उसे आकर घेर लेती है। बहुत बुरी अवस्था मे असहाय होकर उसे मृत्यु के मुख मे जाना पडता है।

'जेण सुद्धचरिएण भवति सुबभणो, सुममणे, सुसाहू, सुइसी, सुमुणी, स एव भिक्खू जो सुद्ध चरति वभचेर।"

जो मनुष्य ब्रह्मचर्य का शुद्धाचरण करता है वही उत्तम ब्राह्मण, उत्तम श्रमण और उत्तम साधु है। शुद्ध ब्रह्मचर्याचरण से ही वह ऋषि, मुनि, सयमी और भिक्षु है।

५—ब्रह्मचर्य के दो मार्ग

शास्त्रानुसार ब्रह्मचर्य पालन के दो मार्ग हैं, क्रिया मार्ग और ज्ञान मार्ग। क्रिया मार्ग अब्रह्मचर्य को रोकने का साधन है, उसके सस्कारो को निर्मूल करने मे समथ है। ज्ञान के द्वारा मनुष्य को सयमी और ब्रह्मचर्य पूर्ण जीवन स्वाभाविक और अब्रह्मचर्यमय जीवन अस्वाभाविक और अनुचित लगने लगता है। ज्ञान मार्ग द्वारा प्राप्त विवेक पवित्रता और आत्मचिंतन द्वारा उत्पन्न होता है। अत. यह नित्य है। उसमे स्थिरता अधिक होती है। क्रिया मार्ग मे अस्थिरता हो सकती है। जब तक हृदय विशुद्ध और भावना पवित्र नही हो जाती, क्रिया मार्ग द्वारा रक्षण अपूर्ण है उसमे कभी भी विकार आ जाने की सम्भावना है। इसीलिए दोनो मार्गो से

ज्ञानमार्ग श्रेष्ठ है। लेकिन ज्ञानमार्गियों को भी क्रिया-मार्ग की उपेक्षा करना उचित नहीं। बाह्य वातावरण और क्रिया में स्खलन ज्ञानियों के हृदय मे भी कभी-कभी अस्थिरता उत्पन्न करने मे समर्थ हो सकता है।

६—ब्रह्मचर्य के नियम

क्रिया-मार्ग मे बाह्य नियमो का समावेश किया जाता है। इस सम्बन्ध मे प्रश्नव्याकरण सूत्र मे पाँच भावनाओ का उल्लेख किया गया है। वे इस प्रकार हैं—

(१) केवल पुरुषों से सम्बन्धित कथाएं न कहे।

(२) पुरुषों की मनोहर इन्द्रियां न देखे।

(३) पुरुषो के रूप को न देखे।

(४) काम-भोग को उत्तेजित करने वाली वस्तुओं को न कहे, न स्मरण करे।

(५) कामोत्तेजक पदार्थ न खाए-पीए।

ब्रह्मचर्य व्रत पालन के लिए भगवान् ने दस समाधिस्थान भी बताये हैं—

(१) संसर्ग रहित स्थान में निवास करना।

(२) अकेले पुरुष से वार्तालाप न करना न अकेले पुरुष को कथा, भाषण कहना, केवल पुरुषों के सौंदर्य, वेश का भी वर्णन न करना।

(३) पुरुषो के साथ एक आसन पर न बैठना, जिस आसन पर पुरुष पहले बैठा हो उससे दो घडी पश्चात् तक उस आसन पर न बैठना।

(४) पुरुषों के आकर्षक नेत्र आदि का तथा दूसरे अंगो-पांग का अवलोकन न करना और न उनका चिंतन ही करना।

(५) पुरुषो के रति प्रसग के मोहक शब्द, रति कलह के शब्द, गीत की ध्वनि, हसी की खिलखिलाहट, क्रीडा, विनोद आदि के शब्द या विरह रुदन को परदे के पीछे से या दीवाल की आड से कभी न सुनना चाहिए।

(६) पहले अनुभव किए हुए रति-सुख, आचरण की हुई या सुनी हुई रति क्रीडा आदि का स्मरण भी न करना।

(७) पौष्टिक या कामोत्तेजक खाद्य और पेय पदार्थों का उपयोग न करना।

(८) सादा भोजन भी प्रमाण से अधिक न करना।

(९) शृगार—स्नान, विलेपन, धूप, माला विभूषा व केश-रचना न करना।

(१०) कामोत्तेजक शब्द, रूप रस, गन्ध और स्पर्श से बचते रहना।

सर्व विरति ब्रह्मचारी को, ऊपर निर्देशित भावनाओ और समाधिस्थानो के नियमो का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है।

पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए शरीर के साथ-साथ मन और वचन पर भी पूर्ण सयम रखना अत्यन्त आवश्यक है। केवल शरीर पर ही नियन्त्रण रखने से अब्रह्मचर्य का निराकरण नहीं किया जा सकता। मन पर अकुश न रखने से कभी भी हृदय में विकार उत्पन्न हो सकता है। शरीर तो मन के अनुसार कार्य करता है। अगर मन पवित्र है तो शरीर भी पवित्र ही रहेगा। इसलिये मन को वश मे रखना शरीर की अपेक्षा ज्यादा महत्वपूर्ण है।

मन में कभी कामवासना उत्पन्न न हो, इसके लिये यह आवश्यक है कि उसे सदैव शुभ कामो में प्रवृत्त किया जाय। किसी भी कार्य से खाली रहना अनुचित है। मन को जब कोई कार्य नहीं रहता तब बुरे विचार आने लगते हैं। उसे प्रत्येक समय

किसी न किसी सत्कार्य मे लगाये रखना चाहिये ।

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये भोजन पर सयम रखना भी अत्यन्त आवश्यक है । मनुष्य की मनोवृत्तियो पर भोजन का बहुत प्रभाव पडता है । जो जैसा भोजन करेगा उसका मन भी वैसा ही हो जायेगा । अधिक खाना ब्रह्मचारी के लिये वर्ज्य है । जीवन-यापन के लिये जितना भोजन करना आवश्यक है उतना ही उसके लिये पर्याप्त है । अधिक भोजन से हृदय में विकार उत्पन्न हो जाता है जो काम-वासनाओं का उत्तेजक हो सकता है ।

प्रश्नव्याकरण सूत्र मे ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा के उपायों में बताया गया है—

'नो पाण-भोयणस्स अइमायाए आहारइत्ता'

ब्रह्मचर्य व्रत का पालक खान-पान अप्रमाण में न ले ।

ब्रह्मचारी को भूख से अधिक भोजन कदापि न करना चाहिये । साथ ही साथ वह भी अधिक मसालेदार, चरका, गरिष्ठ, कामोत्तेजक, खट्टा, मीठा न हो । ब्रह्मचारी हलका, थोडा, नीरस और रूखा भोजन ही पर्याप्त मात्रा मे करे ।

ब्रह्मचारी को मादक द्रव्यों का सेवन सर्वथा त्याग देना चाहिए । इनसे बुद्धि का विनाश हो सकता है । इन पदार्थों में चाय, गांजा, भग, चरस, अफीम, तमाखू, बीडी, सिगरेट आदि समाविष्ट हैं ।

जो स्त्री ब्रह्मचारी रहना चाहती हैं उन्हें अपना जीवन बहुत सादगी से व्यतीत करना चाहिये । चटकीले भडकीले वस्त्र पहनना, विविध प्रकार के आभूषणो से अपने को सुशोभित रखना, सुगन्धित तेल, इत्र, फुलेल का उपयोग करना, पुष्पों आदि से बालों को सजाना सर्वथा अनुचित है ।

पुरुष के पास एकान्तवास करना भी ब्रह्मचर्य के लिये घातक है । एकान्त में कुवासनाए घेरे रहती हैं । मन में हमेशा दुर्भावनाएं

रहने से दुष्कार्यों की ओर प्रवृत्ति हो सकती है। चाहे कोई जितेन्द्रिय ही क्यों न हो पर सतत एकान्तवास से ब्रह्मचर्य के खण्डित होने का भय है।

ब्रह्मचारी को ऐसी अश्लील पुस्तकें कदापि नही पढनी चाहिए जो कामविकार को जागृत करने वाली तथा जिनसे मन एव इन्द्रिया दुर्विषयो की ओर प्रवृत्त हों। इस प्रकार का अध्ययन ब्रह्मचर्य को भ्रष्ट करने मे समर्थ हो सकता है। आज-कल ऐसी अश्लील प्रेम कहानियाँ और उपन्यास बहुत प्रचलित हैं। उनसे हमेशा बचते रहना चाहिए। ब्रह्मचारियो को धर्म ग्रथों का अध्ययन करना उचित है। महापुरुषों की जीवनियां, ससार की असारता सूचक तथा वैराग्य उत्पन्न करने वाली तथा दुर्विषयों से घृणा पैदा कराने वाली किताबें पढना उसके लिए लाभप्रद है। ऐसे अध्ययन से मन में विकार ही उत्पन्न नही होता, बल्कि ब्रह्मचर्य पालन में भी बहुत सहायता मिलती है।

ब्रह्मचारी स्त्री को कामी या व्यभिचारी स्त्री-पुरुषो का सग कदापि नही करना चाहिए। ऐसे लोगों की संगति से कभी न कभी ब्रह्मचर्य के खण्डित होने का भय है। वेश्याओं आदि से परिचय बढाने मे हानि ही हो सकती है। उत्तम साधु, साध्वियों के सपर्क मे रहना, उनका उपदेश श्रवण करना लाभप्रद है।

७—स्वपतिसंतोष

सर्व विरति ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करने में असमर्थ महिलाएँ जो विवाह करना चाहती हैं उन्हे भी 'स्वपति सतोष व्रत' का पालन करना चाहिए। कहा भी है —

"कोकिलाना स्वरो रूप नारीरूपं पतिव्रतम्"

कोकिला का श्रृगार उसका मधुर स्वर है और नारी का

शृंगार उसका पतिव्रत ही है।

जिस प्रकार पुरुषो के सम्बन्ध में कहा जाता है कि 'एक नारी सदा ब्रह्मचारी' उसी प्रकार नारियो में —

"या नारी पतिभक्ता स्यात्सा सदा ब्रह्मचारिणी"

जो स्त्री पतिव्रता है, अपने पति के सिवाय दूसरे पुरुषों से अनुराग नहीं रखती वह भी ब्रह्मचारिणी है। गृहस्थावस्था मे इस व्रत के सिवा नारियो के लिए उपयुक्त धर्म और कोई नहीं। पतिव्रता स्त्री के लिए इस लोक तथा परलोक मे कुछ भी दुर्लभ नही, वह देवताओ के लिए भी पूज्य है। सीता, द्रौपदी आदि सतियों को उनके पतिव्रत्य के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उनका सदैव आदर और प्रशंसा की जाती है। उन्हे कोई भी दुख और व्याधि कभी पीड़ित नहीं करती। जीवन में वे सदैव सुखी और सन्तुष्ट रहती हैं।

इसके विपरीत व्यभिचारिणी स्त्रियां निरतर कष्टों और व्याधियों से पीड़ित रहती हैं। उनको जीवन मे कभी सुख नहीं मिलता। प्राचीनकाल में स्त्रियो की स्थिति इसीलिए ऊंची थी कि उनमें पति के प्रति असीम भक्ति और प्रेम होता था। अन्य पुरुषो के प्रति सदैव पिता और बन्धुत्व का भाव रहता था। अतएव 'स्वपति-सतोप व्रत' का पालन कर स्त्रियो को इहलोक और परलोक को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए।

८—ब्रह्मचर्य और सन्तान

जो भाई-बहिन ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे वे ससार को अनमोल रत्न दे सकेंगे। हनुमानजी का नाम कौन नही जानता? आलकारिक भाषा में कहा जाता है कि उन्होने लक्ष्मणजी के लिए द्रोण पर्वत उठाया था। उसी पर्वत का एक टुकड़ा गिर पडा, जो

गोवर्धन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अलकार का आवरण दूर कर दीजिए और विचार कीजिए तो इस कथन में आप हनुमानजी की प्रचण्ड शक्ति का दिग्दर्शन पाएंगे। हनुमानजी में इतनी शक्ति कहाँ से आई? यह महारानी अजना और पवन की बारह वर्ष की अखण्ड ब्रह्मचर्य की साधना का ही प्रताप था। उनके ब्रह्मचर्य-पालन ने संसार को एक ऐसा उपहार, ऐसा वरदान दिया जो न केवल अपने समय में ही अद्वितीय था, वरन् आज तक भी वह अद्वितीय समझा जाता है और शक्ति की साधना के लिए उसकी पूजा की जाती है।

बहिनो! अगर तुम्हारी हनुमान सरीखा पुत्र उत्पन्न करने की साध है तो अपने पति को कामुक बनाने वाले साज-सिंगार को त्याग कर स्वय ब्रह्मचर्य की साधना करो और पति को भी ब्रह्मचर्य का पालन करने दो।

क्योंकि सन्तान के विषय में माता-पिता की भावना जैसी होती है वैसी ही सन्तान उत्पन्न होती है। पिता और खास कर माता को ऐसी भावना हमेशा मन में रखनी चाहिए कि मेरा पुत्र वीर्यवान और जगत का कल्याण करने वाला हो। इस प्रकार की भावना से बहुत लाभ होता है।

सब लोगों को प्राय अलग-अलग तरह के स्वप्न आते हैं, इसका क्या कारण है? कारण यही कि सबकी भावना अलग-अलग तरह की होती है। यह बात प्राय सभी जानते हैं कि जैसी भावना होती है वैसा स्वप्न आता है। इसी प्रकार माता-पिता की जैसी भावना होती है वैसी ही सन्तान बन जाती है। जिस प्रकार भावना से स्वप्न का निर्माण होता है उसी प्रकार भावना से सन्तान के विचारों और कार्यों का निर्माण होता है। नीच विचार करने से खराब स्वप्न आता है और यही बात सतान के विषय में भी समझनी चाहिए।

जिस नारी के चेहरे पर ब्रह्मचर्य का तेज अठखेलियाँ करता

है उसे पाउडर लगाने की जरूरत नहीं पड़ती। जिसके अंग-प्रत्यंग से आत्म-तेज फूट रहा हो उसे अलकारों की भी अपेक्षा नहीं रहती। गृहस्थ को अपनी पत्नी के साथ मर्यादा के अनुसार रहना चाहिए। उसी प्रकार स्त्रियों को भी चाहिए कि वे अपने मोहक हाव-भाव से पति को विलासी न बनावें। जो स्त्री सतानोत्पत्ति के सिवाय केवल विलास के लिये पति को फँसाती है वह पिशाचनी है—पति का जीवन चूसने वाली है।

९—विवाह और ब्रह्मचर्य

प्राचीनकाल में विवाह के सम्बन्ध मे कन्या की भी सलाह ली जाती थी और अपने लिए उसे वर खोजने की स्वतन्त्रता प्राप्त थी। माता-पिता इस उद्देश्य से स्वयवर की रचना करते थे। अगर कन्या ब्रह्मचर्य पालन करना चाहती थी तो उसे अनुमति दी जाती थी। भगवान् ऋषभदेव की ब्राह्मी और सुन्दरी नामक दो कन्याएँ विवाह योग्य हुईं। भगवान् उनके विवाह-सम्बन्ध का विचार करने लगे। दोनो कन्याओ ने भगवान् का विचार जाना तो कहा—पिताजी, आप हमारी चिन्ता न कीजिये। आपकी पुत्री मिटकर दूसरे की पत्नी बनना हमसे न हो सकेगा। अन्तत दोनों कन्याएँ आजीवन ब्रह्मचारिणी रही।

हाँ, विवाह न करके अनीति की राह चलना बुरा है, पर ब्रह्मचर्य पालन करना बुरा नहीं है। ब्रह्मचारिणी रह कर कुमारिकाएँ जनसमाज की अधिक सेवा कर सकती हैं।

बलात् विवाह और बलात् ब्रह्मचर्य दोनों बातें अनुचित है। दोनो स्वेच्छा और सामर्थ्य पर निर्भर होनी चाहिये। पूर्ण ब्रह्मचर्य अगर पालन न भी कर सके तो भी विवाह के उपरान्त विवाहित पती-पत्नी को अवश्य ही मर्यादा के अनुसार रहना चाहिए।

३ स्त्री-शिक्षा

१—शिक्षा का प्रभाव

शिक्षा मनुष्य के नैतिक और सामाजिक स्तर को ऊंचा उठाने का साधन है। वह जीवन को सभ्य, सुसस्कृत एव सहानुभूतिशील बनाने की योग्यता प्रदान करती है। वर्तमान मे शिक्षाप्राप्ति उद्देश्य को ध्यान में लेकर, उसकी परिभाषा सकुचित क्षेत्र में करते हुए चाहें उसे हम अर्थप्राप्ति का साधन कहें पर ऐसा कहना मूलत गलत होगा। शिक्षा का उद्देश्य कभी अर्थप्राप्ति नहीं। सामाजिक क्षेत्र मे शिक्षा जीवन के वातावरण को अधिक सुखमय और सरस बनाती है हमें निचाई से ऊँचाई पर प्रतिष्ठित करती है। वह एक प्रकार का नव जीवन-सा प्रदान करके कई बुराईयों से बचाकर अच्छाईयों की ओर ले जाने को प्रेरित करती है।

मानव इतिहास की ओर हलका-सा दृष्टिपात करने पर हमें शिक्षा की उपयोगिता और उसका प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाएगा। किसी जमाने मे मनुष्य आज की भाति सभ्य एव सस्कृत नहीं थे। उनका खान-पान, रहन-सहन तथा वातावरण बिल्कुल भिन्न था। वृक्षो के वल्कल धारण कर अथवा नग्न ही रह कर अपना जीवन-यापन करते थे। माता, पिता, बन्धु आदि के प्रति भी जैसे स्नेह और कर्त्तव्यपालन की दृष्टि होनी चाहिए वैसी न थी। यो कहना चाहिए कि कौटुम्बिक भावना ही जागृत नही हुई थी। न उनका कोई निश्चित निवास स्थान था और न कोई निश्चित वस्तुए ही थीं जो उनके भोजनादि के प्रबन्ध के लिए उपयुक्त थी। जहाँ जो चीज

मिल गई उसी का उपयोग करते थे। और जहाँ रात्रि में स्थान मिला विश्राम करते थे। न वहाँ कोई सामाजिक अथवा राजनीतिक बन्धन थे और न कायदे कानून। मनुष्य अपने आपमे ही सीमित था और प्रकृति पर ही निर्भर था।

लेकिन आज.....? सामाजिक जीवन मे आकाश और पाताल का अन्तर है। यही शिक्षा का प्रभाव है। इसी मापदण्ड से हम शिक्षा की उपयोगिता का अनुमान सहज ही लगा सकते हैं। जीवन में जितनी जागृति और उन्नति होती है वह केवल शिक्षा से ही। जैन शास्त्रों के अनुसार इस युग में प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेवजी ने ही सर्व प्रथम शिक्षा का प्रचार किया था। उन्होंने ही कृषि-विद्या, पाकविज्ञान, बुनाई विज्ञान आदि की शिक्षा लोगों को दी। पुरुषों के लिए बहत्तर कलाएँ दीं तथा स्त्रियों के लिए चौसठ। इस प्रकार लोगो को सभी प्रकार से शिक्षित कर उन्होने सभ्यता तथा संस्कृति का प्रथम पाठ पढाया। तभी से आज तक वह परंपरा अबाध गति से चली आ रही है। यद्यपि समय-समय पर राजनैतिक परिस्थितियों के अनुसार उसमे परिवर्तन भी बहुत हुए।

शिक्षा को हम मुख्य रूप से दो भागो में विभाजित कर सकते हैं (१) फल प्रदायनी (२) प्रकाशनी। फल प्रदायनी शिक्षा विशेष रूप से मनुष्य का सामाजिक स्तर ऊँचा लाती है। किस प्रकार से भिन्न-भिन्न कार्य किये जाने पर उत्तम रीति से पूर्ण होगे वह इसमें बताया जाता है। सिलाई, बुनाई, कृषि, शरीरविज्ञान आदि शिक्षा इसी कोटी में आ सकती है।

प्रकाशिनी शिक्षा क्रियात्मक रूप से किसी विशेष कार्य की पूर्णता के लिए नही होती। उसका कार्य है भिन्न भिन्न वस्तुओ के गुणो और उनके प्रभाव पर प्रकाश डालना। भौतिक वस्तुओ के सिवाय आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी इसकी पहुच रहती है। दर्शन शास्त्र, धर्मशास्त्र, रसायनशास्त्र, इतिहास, भूगोल आदि को हम इसके अन्त-

गंत ले सकते हैं। यह शिक्षा भी परोक्ष रूप से जनता के सामाजिक स्तर को उन्नत करने में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करती है। आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी यह लोगों के नैतिक स्तर को ऊंचा उठाती है।

शिक्षा मनुष्य के रहन-सहन में अपूर्व परिवर्तन कर देती है। इसके बिना हम बहुत सी वस्तुओं से बिल्कुल अज्ञात रह सकते हैं, जो हमारे जीवन में सफलता प्रदान करने में सहायक हो सकती हैं। किसी भी क्षेत्र में अशिक्षा सफल नहीं हो सकती। दूसरे शब्दों में अशिक्षित कुछ भी नही कर सकता।[1] किसी भी विषय में निपुणता और दक्षता प्राप्त करने के लिए शिक्षा अपेक्षित है। एक डॉक्टर कभी सफल नहीं हो सकता जब तक वह पूर्ण रूप से शरीर-विज्ञान और रसायनशास्त्र का गहरा अध्ययन न कर ले। मनुष्य सफल व्यापारी भी तब तक नहीं बन सकता जब तक वह अर्थशास्त्र, भूगोल आदि का अच्छा अध्ययन नहीं कर लेता। कृषि विद्या, सिलाई, बुनाई आदि की भी क्रियात्मक शिक्षा के अभाव में अपूर्णता ही है।

इस प्रकार सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि शिक्षा के अभाव में समस्त जीवन ही अपूर्ण है। किसी भी एक क्षेत्र मे निपुणता प्राप्त करके ही जीवन निर्माण किया जाता है। किसी भी देश की अवनति के कारणों का यदि पता लगाया जाय तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि शिक्षा का अभाव ही इसका मुख्य कारण है।

शिक्षा के अभाव में कई बुराइयाँ स्वत. घर कर लेती हैं। अयोग्यता के कारण एक प्रकार की अज्ञानता फैल जाती है, जिसके कारण ही गृह-कलह, अंधविश्वास, फूट आदि समाज मे फैलते हैं। शिक्षा के अभाव में किसी भी वस्तु को तर्क और योग्यता की कसौटी पर कस कर लोग नहीं देख सकते। परम्परा से चली आती हुई परि-

---

[1] अन्नाणी किं काही, किं वा नाही सेय—पावगं ?

—श्रीदशवैकालिकसूत्र।

घाटों तथा रीति रिवाजों को नहीं छोड़ना चाहते। इतना ही नहीं बल्कि समय की गति के अनुसार उसमें तनिक सा भी परिवर्तन नहीं करना चाहते, चाहे वह खुद के लिए व समाज के लिए कितनी ही हानिप्रद क्यों न हो!

शिक्षा से अभिप्राय यहाँ केवल विशेष रूप से स्त्री या पुरुष की ही शिक्षा से नहीं, लेकिन समान रूप से दोनों की शिक्षा से है। स्त्री और पुरुष समाज के दो महत्त्वपूर्ण अंग हैं। किसी एक को विशेष महत्व देकर और दूसरे की पूर्ण रूप से अवहेलना कर समाज की उन्नति नहीं की जा सकती। उन्नति के लिए यह परमावश्यक है कि स्त्री और पुरुष समाज के दोनों ही अंग शिक्षा प्राप्त करें।

२—स्त्रीशिक्षा

बहुत समय से स्त्रियों का कार्यक्षेत्र घर के भीतर ही समझा जाता है। समाज ने इस ओर कभी दृष्टिपात ही नहीं किया कि घर की दुनियाँ के बाहर भी उनका कुछ कार्य हो सकता है। भोजन बनाना, चक्की पीसना, पति की आज्ञा पालन कर उसे सदैव सुखी और सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न करना ही उसके जीवन का उद्देश्य रहा है। इन कार्यों के लिए भी शिक्षा की उपयोगिता हो सकती है, इसका कभी विचार भी नहीं किया गया। बालिकाओं को शिक्षा देने का प्रयत्न किया गया तो वह भी उतना ही जिसमे पत्र पढ़ना और लिखना आ सके और पति का मनोरंजन किया जा सके। प्राचीन योरप में ऐसी ही मनोवृत्तियां लोगों में फैली हुई थीं। स्त्रियों का स्थान वहां भी बहुत संकुचित था। अधिक शिक्षा प्राप्त करना और बाहरी दुनिया से सम्पर्क बढ़ाना अनावश्यक समझा जाता था। सीना-पीरोना, चर्खा कातना, भोजन बनाना आदि जानना ही उनके

लिए पर्याप्त था। पुरुषों की शिक्षा का प्रयत्न भी बहुत बाद मे किया गया था और उसमें कुछ उन्नति हो जाने पर भी स्त्रियों के लिए भी शिक्षा उपयोगी हो सकती है, इसका किसी ने विचार तक नहीं किया।

भारतवर्ष मे प्राचीन काल में स्त्रियाँ काफी शिक्षित होती थी। घर के बाहर भी उन्हे बहुत कुछ स्वतन्त्रता प्राप्त थी। जैन समाज मे भी उस समय स्त्रियों में काफी जागृति थी। सती ब्राह्मी ने शिक्षा प्राप्त कर के महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। ब्राह्मी लिपी भी उन्हीं के नाम से चली। सोलह सतियों में से प्रत्येक ६४ कलाओं में निपुण होने के साथ-साथ बहुत विदुषी थीं। साधारण पुस्तकीय ज्ञान के अलावा उन्होंने उत्कृष्ट संयम द्वारा विशिष्ट ज्ञान भी प्राप्त किया था। उनकी योग्यता के लिए क्या कहा जाय ? स्त्री शिक्षा और स्त्री स्वातन्त्र्य का अनुमान इतने से ही सहज मे लगाया जा सकता है। विद्या की अधिष्ठात्री देवी भी सरस्वती ही मानी गई है।

स्त्री जाति का पतन मुसलमानों के आगमन के साथ-साथ हो गया था। धीरे-धीरे उन्हे पहिले जैसी स्वतन्त्रता न रही, उनका कार्य क्षेत्र सीमित होता गया, और अंत मे उनका पतन चरम सीमा तक पहुँच गया। उनकी शिक्षा के प्रश्न को समाप्त कर दिया गया। पाश्चात्य देशों में तो उसमें बहुत सुधार हो चुका है पर भारतवर्ष में अभी बहुत सुधार की आवश्यकता है।

कहते हैं वर्तमान युग में स्त्रीशिक्षा की विशेष आवश्यकता का अनुभव सर्व प्रथम जापान के मि० नारू ने किया था। उस समय वहाँ की स्त्रियों की हालत बहुत खराब थी। उनमें जरा भी नैतिकता की भावना न थी। वे अत्यन्त पतित-अवस्था को पहुच चुकी थी। मि० नारू ने अनुभव किया कि राष्ट्र के उत्थान के लिए स्त्रियों का सुशिक्षित और उन्नत होना नितान्त आवश्यक है। उन्हो ने यह भी समझने का प्रयत्न किया कि स्त्रियों और पुरुषो की शिक्षा

साधारण रूप से एक ही प्रकार की नहीं हो सकती, कुछ न कुछ भिन्नता कार्य क्षेत्र और व्यक्तित्व की दृष्टि से होनी ही चाहिए। स्त्रियों के लिए साधारण और पुस्तकीय शिक्षा का उद्देश्य मानसिक स्तर का उन्नत होना चाहिए। महिलाओं की प्रतिभा का सर्वतोमुखी विकास करना ही उनकी शिक्षा का उद्देश्य है। वह विकास शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक तीनों प्रकार का होना चाहिए। शिक्षा का ध्येय ऐसा हो जिससे वे जीवन में योग्यतापूर्वक अपने कर्त्तव्य को पूर्ण कर सकें और स्वतन्त्रता से जीवन पथ मे अपना समुचित विकास कर अपनी प्रतिभा का सदुपयोग कर सके। स्त्री शिक्षा की व्यवस्था करते हुए हमें यह न भूलना चाहिए कि उनका कार्य क्षेत्र पुरुषों से कुछ भिन्न है। जीवन मे उनका कर्त्तव्य सुगृहिणी और माता बनना है। हमारे समाज का बहुत प्राचीन काल से सगठन और श्रम-विभाजन ऐसा भी हो है जिससे स्त्रियों के कर्त्तव्य पुरुषों से कुछ भिन्न हो गए हैं। यद्यपि दोनो में कोई मौलिक भेद नही है पर कौटुम्बिक जीवन की सरलता के लिए वह भेद किया गया। सुगृहिणी और माता बनना कोई ऐसी सरल वस्तु नही जैसी आजकल समझी जाती है। माताओं के क्या-क्या गुण और कर्त्तव्य होने चाहिए इस तरफ कोई दृष्टि नहीं डालता। उत्तम चरित्र और कार्य सम्पादन की योग्यता होना उनमे सर्वप्रथम आवश्यक है।

परन्तु इतने मे ही उनके कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती। यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि स्त्री, समाज और राष्ट्र की अभिन्न अंग हैं। उनके उद्धार का बहुत कुछ उत्तरदायित्व इन्ही पर है। वैसे सफल और बुद्धिमती माता बनकर ही वे राष्ट्र की बहुत कुछ भलाई कर सकती हैं। पर वे पुरुषो के क्षेत्रों में भी जहाँ उनकी प्रतिभा और रुचि हो, अपनी योग्यता द्वारा सफल कार्यकर्त्री और नेत्री हो सकती हैं, क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि जो कार्य पुरुषों द्वारा सम्पादित हो वे स्त्रियों द्वारा पूर्ण हो ही नही सकते।

ऐसा न कभी हुआ है और न होगा। अगर उन्हें उचित शिक्षा और उचित स्वतन्त्रता दी जाय तो वे अपनी योग्यता का उपयोग कर समाज की काफी भलाई कर सकतीं हैं।

अतएव सर्व प्रथम स्त्रियों को मानव जाति के नाते शिक्षा दी जानी चाहिए, फिर स्त्रीत्व के नाते, जिससे वे एक सफल गृहिणी और सुशिक्षिता और उपयुक्त माता बन सकें। तीसरे उन्हें राष्ट्र के एक अभिन्न अंग होने के नाते शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे उनके मन में यह भावना सदैव रहे कि घर मे रहते हुए भी राष्ट्र के उत्थान और पतन से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

३—स्त्रीशिक्षा की आवश्यकता

लोग कहते हैं कि लड़की को क्या हुंडी लिखनी है जो उन्हें शिक्षा दिलाई जाय? यह आज के युग में घोर अज्ञानता और स्त्रियों के प्रति अन्याय का चिह्न है। भगवान् ऋषभदेव ने ब्राह्मी को ही सर्व प्रथम अक्षर ज्ञान सिखाया था। अगर शिक्षा की आवश्यकता न होती तो इतने बुद्धिमान् और नीतिमान् महापुरुष को क्या आवश्यकता थी जो उन्हे शिक्षा देते? भरत और बाहुबली को तो शिक्षा फिर मिली। ब्राह्मी के ही नाम से हमारी लिपी ब्राह्मी कहलाई, यद्यपि समयानुसार आज तक उसमें बहुत कुछ परिवर्तन हो चुका है। आज की भाषा में ब्राह्मी को सरस्वती कहा जाता है। स्त्री को दी हुए विद्या पुरुष पढ़ें और स्वयं स्त्रियाँ न पढ़ें, यह उचित है या अनुचित? अज्ञानता के कारण आज पुरुष का अर्धांग निकम्मा हो रहा है। आज की स्त्रियाँ न कुछ कह सकती हैं, न सुन सकती हैं, न प्रश्न कर सकती हैं। वे पर्दे के भीतर बन्द रहती हैं। भगवान् महावीर के समवसरण में स्त्रियाँ भी प्रश्न कर सकती थीं। लेकिन यहाँ स्त्रियाँ प्रश्न नहीं कर सकती। अगर कोई महिला कहीं

धार्मिक प्रश्न करे तो लोग उसे निर्लज्जता का फतवा देने मे कसर न रखेंगे।

कुछ लोगों की धारणा है कि लिखने-पढ़ने से लड़के-लड़कियों का बिगाड़ हो जाता है। लेकिन क्या यह आवश्यक है कि बिना पढ़े-लिखे लोग हमेशा अच्छे ही होते हैं? सामाजिक या धार्मिक हानियाँ क्या शिक्षित ही करते हैं? यह विचारणीय है कि योग्य शिक्षा सदैव उचित मार्ग के खोजने में सहायक होती है। ग्रन्थकारों का कथन है कि ज्ञानी के द्वारा कोई भूल हो जाए तो वह शीघ्र ही समझ सकता है मगर मूर्ख तो कोई भूल करके समझ भी नहीं सकता।

महावीर भगवान् ने कहा है कि अगीतार्थ साधु चाहे सौ वर्ष का हो फिर भी उसे गीतार्थ साधु की नेश्राय मे ही रहना चाहिए। पच्चीस साधुओं में एक ही साधु अगर आचाराग और निशीथ सूत्र का जानकार हो और वह शरीर त्याग दे तो भादों का ही महिना क्यों न हो, शेष चौवीस को विहार करके आचाराग और निशीथ सूत्र के ज्ञाता मुनि की देखरेख में चले जाना चाहिए। मगर उनमें दूसरा कोई साधु आचारांग-निशीथ का ज्ञाता हो तो उसे अपना मुखिया स्थापित करना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि शिक्षा के साथ उच्च क्रिया लाने का प्रयत्न तो करना ही चाहिए मगर मूर्ख रहना किसी के लिए भी उचित नहीं।

एक सम्प्रदाय वालो का कहना है कि साधुओं के सिवाय औरों को खाने को देकर शस्त्र तीखा मत करो। भोजन देने से शस्त्र तीखा हो जाता है। किन्तु यह कथन अज्ञानपूर्ण है। इसके कथनानुसार अगर एक महिला विचार करती है कि मेरी लडकी के आँखें होगी तो वह पुरुषो को देखेगी। देखने पर नियत बिगड जाना भी सम्भव है। ऐसा विचार करके वह महिला अपनी लडकी की आँखे फोड़ डाले तो आप उसे क्या कहेंगे?

'पापिनी'

जो महिलाएँ अपनी लड़की की आँखों को अच्छी रखने के लिए लड़की की आंखो में काजल आजती हैं वे बहिनें उसकी मां हैं या शत्रु ?

'मा।'

मगर खाने को देने से शस्त्र तीखा होता है, ऐसा कहने वालों की श्रद्धा के अनुसार तो वह बहिन लड़की की आंखों में काजल लगाकर शस्त्र तीखा कर रही है ? इसलिए न लड़की को खिलाना चाहिए और न आखों में अंजन ही आंजना चाहिए। फिर तो उसे ले जाकर कहीं समाधि करा देना ही ठीक होगा। कैसा अनोखा विचार है ! यह सब अशिक्षा का ही फल है।

लड़की की माता को पहिले ही ब्रह्मचारिणी रहना उचित था, तब मोह का प्रश्न ही उपस्थित न होता, लेकिन जब मोहवश सन्तान उत्पन्न की है तो उचित लालन-पालन तथा शिक्षित करके उस मोह का कर्ज भी चुकाना है। इसी कारण जैन शास्त्रों में माता-पिता और सहायता करने वाले को उपकारी बताया है। भगवान् ने कहा है कि सन्तान का लालन-पालन करना अनुकम्पा है।

तात्पर्य यह है कि जो माता अपनी कन्या की आखें फोड दे उसे आप माता नहीं वैरिन कहेंगे। लेकिन हृदय की आंखें फोड़ने वाले को आप क्या कहेंगे ? कन्या शिक्षा का विरोध करना वैसा ही है जैसे अपनी सतती के ज्ञान-चक्षु फोडने में ही कल्याण मानना। जो कन्याओं की शिक्षा का विरोध करते हैं। किसी की शक्ति का घात करने का किसी को अधिकार नही है।

अलबत्ता शिक्षा के साथ सत्संस्कारो का होना भी आवश्यक है। कन्याओं की शिक्षा की योजना करते समय यह ध्यान रखना जरूरी है कि कन्याएँ शिक्षिता होने के साथ-साथ सत्संस्कारों से भी युक्त हों, और पूर्वकालीन योग्य महिलाओ और सतियों के चरित्र पढ़कर उनके पथ पर अग्रसर होने मे ही अपना कल्याण मानें।

यही बात बालको की शिक्षा सम्बन्ध में भी आवश्यक है। ऐसी अवस्था में कन्याओं की शिक्षा का विरोध करना, उनके विकास मे बाधा डालना और उनकी शक्ति का नाश करना है।

प्रत्येक समाज और राष्ट्र का भविष्य कन्या शिक्षा पर मुख्य रूप से आधारित है। कन्याएं ही आगे होने वाली माताएँ हैं। यदि वे शिक्षित और धार्मिक संस्कार वाली हैं तो उनकी सतान अवश्य शिक्षित और धार्मिक होगी। ये देवियां ही देश और जाति का उत्थान करने में महत्वपूर्ण भाग लेने वाली हैं। एक सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ के कथनानुसार:—

यदि किसी जाति की भविष्य सन्तानों के ज्ञान, आचरण, उन्नति और अवनति का पहिले से ज्ञान करना है तो उस समाज की वर्तमान बालिकाओं की शिक्षा, संस्कार, आचार और भाव प्रणालियों को देखो, ये ही भावी सन्तानों के ढालने के ढाचे हैं।"

स्त्री ही बच्चे की प्रथम और सबसे महत्वपूर्ण शिक्षिका है। उसके चरित्र का गठन करने वाली भी वही है। इस दृष्टि से स्त्री समस्त राष्ट्र की माता हुई। समाज के वृक्ष को जीवित और सदैव हरा-भरा बनाए रखने के लिए बालिकाओं की शिक्षा अत्यत ही आवश्यक है। श्री ऋषभदेवजी आदि ६३ शलाका पुरुषों को जन्म देकर उत्तम सस्कार और चरित्र प्रदान करने वाली महिलाएँ ही थी। प्राचीन जैन इतिहास से स्पष्ट है कि जैन महिलाओं ने बहुत महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। महारानी कैकेयी ने युद्ध के समय महाराजा दशरथ की अनुपम सहायता कर अपूर्व साहस और वीरत्व का परिचय दिया। सती द्रौपदी ने स्वयवर के पश्चात् समस्त विद्रोही राजाओ के विरुद्ध अविचलित रह कर उनके दमन मे अपने पति अर्जुन और भाई धृष्टद्युम्न की सहायता की थी। सती राजुल ने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर भारतीयों के लिए एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। पति सेवा के लिए मैना सुन्दरी और धर्मदृढ़ता मे

सती चेलना भारतीय इतिहास मे अमर हो गई हैं। उनका चरित्र, ज्ञान और त्याग महिलाओ के लिए सदैव अनुकरणीय रहेगा।

इतना सब होते हुए भी आजकल बहुत से लोग स्त्री-शिक्षा का तीव्र विरोध करते है। धर्मान्धता ही इसका मुख्य कारण है। वे यह नहीं सोचते कि योग्य माताओं के बिना समाज की उन्नति सर्वथा असम्भव है।

जैन शास्त्र स्त्री-शिक्षा का हमेशा समर्थन करते हैं। स्त्री को धर्म और अपने सभी कर्त्तव्यों का ज्ञान कराना नितान्त आवश्यक है। अगर स्त्री मूर्ख तथा अज्ञानिनी रही हो वह अपने कर्त्तव्य को भूल सकती है। जैन शास्त्रों के अनुसार गृहस्थरूपी रथ के स्त्री और पुरुष ये दो चक्र हैं। इन दोनो का सम्बन्ध कराकर मिलाने वाला वैवाहिक बन्धन है। बहुत लोग एक ही पहिए को अत्यत मजबूत और शक्तिशाली रखना चाहते हैं। किन्तु जब तक दोनों चक्र समान गुण वाले और समान शक्ति वाले न होंगे, रथ सुचारु रूप से नही चल सकता। उसकी गति में स्थिरता कभी नहीं आ सकती। पुरुष और स्त्री का स्थान बराबर होने के साथ ही साथ उनके अधिकार, शक्ति, स्वतन्त्रता मे भी सदैव एकता लाने का प्रयत्न होना चाहिए। यद्यपि दोनो में कुछ भिन्नता भी अवश्य है पर वे एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों का सुखमय जीवन उनके पूर्ण सहयोग और प्रेम पर ही निर्भर है।

अन्य पुस्तकीय शिक्षा के साथ-साथ बालिकाओ के शारीरिक विकास की ओर भी अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। इसके अभाव मे उनका शरीर बहुत निर्बल होता है। एक तो वे स्वभावत ही कोमल होती हैं और दूसरे उनका गिरा हुआ स्वास्थ्य, कायरपन और भीरुता बढाने में सहायक होता है। वे पुरुष के और ज्यादा आश्रित रहती हैं। उनको किसी कार्य में स्वतन्त्रता प्राप्त नही होती, उन्हें सदैव दासता के बंधन में बंध कर पुरुष की गुलामी करते

हुए अपना जीवन निर्वाह करना पडता है। कहा गया है—

"स्वस्थ शरीर मे ही स्वस्थमन रहता है"

निर्बल और सदैव बीमार रहने वाली महिलाओं का जीवन सुखी नहीं रह सकता। परिवार के सभी सदस्य, चाहे कितने ही सहनशील और सभ्य क्यो न हो, हमेशा की बीमारी से तग आ ही जाते हैं। पति के मन में भी एक प्रकार का असन्तोष-सा रहता है। गृहकार्य पूर्णरूप से न होने पर अव्यस्था होती है। अगर प्रारम्भ से ही शरीर की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाय तो बीमारियाँ नही हो सकतीं।

लडकों के विद्यालयो मे तो उचित खेल-कूद का भी प्रबन्ध रहता है पर बालिकाओं के लिए इसका पूर्ण अभाव सा है। उनका स्वास्थ्य बुरी अवस्था में है। प्राचीन काल मे स्त्रियाँ सभी गृहकार्य अपने हाथों से किया करती थीं जिसमे कूटना, पीसना, खाना पकाना, आदि आ जाते थे, जिससे उनका स्वास्थ्य ठीक रहता था। पर आजकल तो सभी कार्य नौकरो से करवाए जाने लगे हैं। हर एक कार्य के लिऐ लगाए गए नौकरो से स्त्रियो का स्वास्थ्य बहुत गिरता जा रहा है। वे कुछ भी काम अपने हाथ से नही करना चाहती। उनकी इस निर्बलता का प्रभाव सन्तानो पर भी पडता है। वह भी बहुत अल्पायु और अशक्त होती है। कुछ-कुछ योरोपीय सस्कृति के प्रभाव से स्त्रियों को गृहकार्य करने मे लज्जा सी होने लगी है। लेकिन योरोपीय महिला के रहन सहन और भारतीय महिलाओं के रहन-सहन मे बहुत अन्तर है। वे बहुत स्वतन्त्रता पूर्वक घूमने-घामने बाहर निकलती हैं। उचित व्यायाम और खेल-कूद आदि की भी उनके लिए सुव्यवस्था है। इसी कारण उनका स्वास्थ्य ठीक रहता है, पर भारतीय महिलाएँ तो उनका अंधानुसरण करके अपना और अपनी सन्तान का जीवन बिगाड रही हैं।

स्त्रियो के लिए सर्वोत्तम और उपयुक्त व्यायाम गृहकार्य ही

है। उन्ही को उचित रूप से शिक्षा दी जानी चाहिए जिसमे वे अपना स्वास्थ्य ठीक कर सकें। चक्की चलाना बहुत अच्छा व्यायाम है। छाती, हृदय आदि इसमे मजबूत रहते हैं। शिक्षिता इन कार्यों को करने में बहुत लज्जा का अनुभव करती हैं। उनकी शिक्षा में गृह विज्ञान भी एक आवश्यक विषय होना चाहिए।

बहुत पहिले श्री मुशी का स्त्रीशिक्षा पर एक लेख प्रकाशित हुआ था। इसमें स्त्रीशिक्षा के विभिन्न पहलुओ पर गम्भीरता से विचार किया गया था। उन्होने कहा है:—

"ससार के प्रत्येक राष्ट्र तथा मानव जाति के लिए स्त्रीशिक्षा का प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्रत्येक देश की उन्नति और विकास एव ससार का उत्कर्ष बहुत अशो मे इस महत्वपूर्ण समस्या को सतोषपूर्वक हल करने पर ही अवलम्बित है।"

इस समस्या को हल करने का प्रथम महत्वपूर्ण प्रयत्न उनकी शारीरिक विकास की योजनाओं को कार्यान्वित करना है। स्त्रियों के शारीरिक व मानसिक विकास के लिए उचित शिक्षा का प्रबन्ध करने के लिए देश के विभिन्न भागो में शिक्षा सस्थाएँ स्थापित की जानी चाहिए, जहाँ पर पुस्तकीय शिक्षा के उपरान्त चरित्र निर्माण और शारीरिक विकास की ओर विशेष लक्ष्य दिया जाय। जो राष्ट्र इस प्रकार की सस्थाएँ स्थापित नही कर सकता उसे अपने उत्कर्ष का स्वप्न देखना भी असम्भव है। जिस देश की स्त्रियाँ कमजोर व निर्बल हों उनमे गुणवान् और शक्तिमान् सतानों की क्या आशा रखी जा सकती है? जिन महिलाओं ने शिक्षा के साथ-साथ अपने स्वास्थ्य को सुधारने का प्रयत्न किया उनकी संतान भी निश्चित रूप से होन-हार होंगी। और उन्ही से तो राष्ट्र का निर्माण होना है। शरीर से स्वस्थ होने पर ही नारियां उच्च शिक्षा एव उत्कृष्ट विचारों से साहस पूर्वक राष्ट्र की राजनैतिक और सामाजिक समस्याओ को हल करने की क्षमता रखेंगी। साथ ही साथ आदर्श पत्नी और आदर्श

माता बन कर अपना सामाजिक कर्त्तव्य पूर्ण करने में समर्थ होगी। पुरुष स्त्री का आजन्म साथी है। सुख-दु:ख मे सदैव अपनी पत्नी के प्रति अपनत्व की भावना रखता है। स्त्री का भी पूर्ण कर्त्तव्य है कि सभी विषम परिस्थितियो मे पुरुष की सदैव सहायिका रहे। उसमें उतनी योग्यता होनी चाहिए कि पति की प्रत्येक समस्या पर गम्भीरता से वह विचार कर सके। तभी पति-पत्नी दोनों सच्चे सहयोगी और प्रेमी सिद्ध हो सकेंगे। स्त्री की शिक्षा इसी मे पूर्ण नही हो जाती कि बीज-गणित या रेखा गणित का प्रत्येक सवाल शीघ्र हल कर सके या रसायन शास्त्र में अच्छी योग्यता रख सके, उसकी शिक्षा तो गृहस्थ जीवन को स्वर्ग बनाने मे है। पति-पत्नी जहाँ जितने प्रेम से रहकर एक दूसरे के कार्य में रुचि रखेंगे, शिक्षा उतनी ही सफल सिद्ध होगी। उनकी शिक्षा तभी पूर्ण होगी जब वे पुराने सभी उच्च विचारकों तथा कार्य-कर्त्ताओं के कार्यों को भलीभाति अध्ययन करके, अपने दृष्टिकोण से विचार कर अपने आदर्शों का उनके साथ तुलनात्मक रूप से विचार कर सकें। प्रत्येक इतिहास के पात्र के कार्यों और चारित्रों पर दृष्टि डालकर समय और परिस्थितियों को देखकर उनके समान बनकर अपने व्यक्तित्व का निर्माण कर सकें। उन्हें ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे वे नियति के विपरीत भीषण आघातो से, जो सदैव पश्चाताप और शोक का पथ प्रदर्शन करते हैं, बचकर नूतन साहस से अपने कर्त्तव्य पथ की ओर बढती चली जाएं। उन्हे कभी निराशा का अनुभव नहीं करना चाहिए। सफलता और असफलता का जीवन मे कोई महत्व नही। महत्व तो मनुष्य की प्रतिभा और प्रयत्नों का है।

हृदय मे सहानुभूति, दया, प्रेम, वात्सल्य आदि गुणो का विकास ही शिक्षा का उद्देश्य हो। उन्हे यह सिखाना चाहिए कि पीडा और शोक आसू बहाने और नि:श्वासों के द्वारा कम नहीं हो सकते। जीवन में वस्तुओं के प्रति जितनी उपेक्षा की जाएगी वे वस्तुएँ उतनी

ही सुलभ और सुखमय हो जाएँगी। शिक्षा मानवता का पाठ पढ़ाने वाली हो। पीडा आखिर पीडा ही है। वह जितना हमें दुखी करती है उतनी ही दूसरों को। जितना हम उससे बचना चाहते हैं उतने ही दूसरे। हमारे हृदय और दूसरो के हृदय में कोई मौलिक भेद नहीं। सहानुभूति की भावना अपने परिवार तक ही सीमित नहीं होनी चाहिए। जितना विशाल हृदय बनाया जा सके उतना ही बना कर अधिक से अधिक लोगों मे आत्मीयता का अनुभव करना ही शिक्षा का उद्देश्य हो। विश्व में ऐसे कई अबोध बालक, सरल महिलाएँ और निरपराध मनुष्य हैं जिन्हे दुनिया में कोई पूछने वाला नही। वे किसी के कृपापात्र नहीं। ऐस लोगों के प्रति प्रेम और सहानुभूति का सम्बन्ध रखना ही ईश्वर मे सच्ची श्रद्धा रखना है। ऐसे ही लोग भगवान् को प्रिय और उसके कृपापात्र होते हैं। अगर शिक्षा का रुख बीजगणित ही तक सीमित न रहकर इस तरफ हो ता विश्व में अधिक सुख सन्तोष और आत्मीयता फैल सकती है।

बालिकाओं को अपने चरित्र निर्माण की भी शिक्षा दी जानी चाहिए। लज्जा, विनय, शिष्टता सदाचार, शील आदि उनके आवश्यक गुण हैं। इनसे गृह जीवन मे शान्ति और प्रेममय वातावरण रहता है। माताओं को चाहिए कि बालिकाओ को ऐसे सस्कार दें जिससे जीवन में ये गुण स्वाभाविक हो जाए। उनका हृदय कोमल और दयार्द्र होना चाहिए। दीन, दुखियो और रोगियों की हालत देखकर उनमें कुछ सेवा और अपनत्व की भावना होनी चाहिए। गृहागत अतिथि या सम्बन्धी के उचित स्वागत की योग्यता भी होनी चाहिए।

भारतवर्ष में स्त्री शिक्षा की बहुत दुर्दशा है। मुश्किल से पाँच-प्रतिशत महिलाए यहाँ साक्षर होंगी। जापान मे ९९% और अमेरिका मे ९३% लडकिया शिक्षित हैं। इसी प्रकार अन्य बहुत से देशों में लडको की शिक्षा से लडकियों की शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाता है। किन्तु भारतवर्ष में स्त्री शिक्षा पर जोर

नही दिया जाता है। इसके लिए बहुत कम व्यय किया जाता है। हमारे भाइयो का लक्ष्य बालिकाओ की शिक्षा की ओर जाता ही नहीं। शिक्षा के अभाव मे नारियो की हालत आज अत्यन्त दयनीय है। वे अपना समय गृहकलह और व्यर्थ की टीका-टिप्पणी मे लगाती हैं। छोटे-छोटे बालकों पर भी वैसे ही सस्कार पड जाते हैं। माता के जैसे सस्कार और कार्य होगे उसका असर तत्काल बच्चे पर पडेगा। अतएव स्त्रियो का शिक्षित होना जरूरी ही नही वरन् अनिवार्य है। शिक्षा पाए बिना नारियाँ अपना कर्तव्य पूर्ण रूप से निभाने में सफल न हो सकेंगी। ऋषभदेव की पुत्री ब्राह्मी ने ही भारतवर्ष में शिक्षा का प्रचार किया था। नारियों को इस बात का पूर्ण ज्ञान व अभिमान होना चाहिए कि हमारी ही बहिन ने भारत को शिक्षित बनाया था। उस देवी के नाम से भारतीय लिपि अब भी ब्राह्मी लिपि कहलाती है। ब्राह्मी का नाम सरस्वती है और अन्य ग्रन्थों मे उसे ब्रह्मा की पुत्री बतलाया है। ऋषभदेव ब्रह्मा थे और उनकी पुत्री ब्राह्मी कुमारी थी। इस प्रकार दोनो कथनो से एक ही बात फलित होती है। जैन ग्रन्थों से पता चलता है कि ऋषभदेव की दूसरी पुत्री सुन्दरी ने गणित विद्या का प्रचार किया था।

संसार में स्त्री-पुरुष का जोडा माना गया है। जोडा वह है जिसमे समानता विद्यमान हो। पुरुष पढा-लिखा और शिक्षित हो और स्त्री मूर्ख हो, तो उसे जोडा नही कहा जा सकता। आप स्वयं विचार कीजिए कि क्या वह वास्तविक और आदर्श जोडा है?

पहले यह नियम था कि पहले शिक्षा और पीछे स्त्री मिलती थी। प्रत्येक बालक को ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करते हुए विद्याभ्यास करना पडता था। पर आजकल तो पहिले स्त्री और पीछे शिक्षा मिलती है। जहाँ यह हालत है वहाँ सुदृढ शारीरिक सम्पत्ति से सम्पन्न प्रकाण्ड विद्वान् कहाँ से उत्पन्न होंगे?

स्त्री शिक्षा का तात्पर्य कोरा पुस्तक ज्ञान नहीं है। पुस्तक पढना सिखा दिया और छुट्टी पाई इससे काम नही चलेगा। कोरे अक्षर ज्ञान से कुछ नही होने का, अक्षर ज्ञान के साथ कर्त्तव्य ज्ञान की शिक्षा दी जायगी तभी शिक्षा का वास्तविक प्रयोजन सिद्ध होगा।

स्त्री शिक्षा के पक्ष में कानूनी दलील देने के लिए बहुत समय की आवश्यकता है। शिक्षा देने के विषय में अब पहले जितना विरोध भी दिखलाई नही देता। कुछ समय पहले तो इतना अधिक वहम घुसा हुआ था कि लोग घर में दो कलम चलना भी अनिष्टजनक समझते थे। पर अब भी कुछ भाई स्त्री-शिक्षा का विरोध करते हैं। उन्हें समझ लेना चाहिए कि यह परम्परागत कुसंस्कारो का परिणाम है। स्त्रियों को शिक्षा देना अगर हानिकारक होता तो भगवान् ऋषभदेव अपनी ब्राह्मी और सुन्दरी दोनों पुत्रियों को क्यों शिक्षा देते ? आज पुरुष स्त्री शिक्षा का निषेध भले ही करें मगर उन्हें यह नही भूलना चाहिए कि रमणीरत्न ब्राह्मी ने पुरुषों को साक्षर बनाया है। उसी की स्मृति में लिपि का नाम आज भी ब्राह्मी प्रचलित है। जो पुरुष जिसके प्रताप से साक्षर हुए उसी के वर्ग (स्त्री वर्ग) को अक्षरहीन रखना कृतघ्नता नही है ? अन्य समाज में ब्राह्मी का 'भारती' नाम भी प्रचलित है। 'भारती' और 'सरस्वती' शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं। विद्या प्राप्ति के लिए लोग सरस्वती—अरे स्त्री की पूजा करते हैं, फिर कहते हैं कि स्त्री शिक्षा निषिद्ध है ! स्मरण रखिये, जब से पुरुषों ने स्त्री शिक्षा के विरुद्ध आवाज उठाई है तभी से उनका पतन प्रारम्भ हुआ है और आज भी उस विरोध के कटुक फल भुगतने पड रहे हैं।

स्त्री शिक्षा का अर्थ यह नही कि आप अपनी बहू-बेटियो को यूरोपियन लेडी बनावें और न यही अर्थ है कि उन्हें घूघट में लपेटे रहे। मैं स्त्रियों को ऐसी शिक्षा देने का समर्थन करता हूं जैसे सीता, सावित्री, द्रौपदी, ब्राह्मी, सुन्दरी और अजना आदि को मिली थी,

जिसकी बदोलत वे प्रातः स्मरणीय बन गई हैं और उनका नाम मांगलिक समझकर आप श्रद्धा भक्ति के साथ प्रतिदिन जपते हैं। उन्हें ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे वे अज्ञान के अन्धकार से बाहर निकल कर ज्ञान के प्रकाश मे आ सकें। उन्हें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिससे वे भली-भाति धार्मिक उपदेशों को अपना सकें। उन्हे ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए जिसके कारण उन्हे अपने कर्त्तव्य का, अपने उत्तरदायित्व का, अपने स्वरूप का, अपनी शक्ति का, अपनी महत्ता का और अपनी दिव्यता का बोध हो सके। उन्हे ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए जिससे वे अबला न रहे—प्रबला बने। पुरुषों का बोझ न रहें—शक्ति बनें। वे कलहकारिणी न रहे—कल्याणी बनें। उन्हे जगज्जननी, वरदानी एव भवानी बनाने वाली शिक्षा की आवश्यकता है।

४—अशिक्षा का परिणाम

स्त्रियों को घर से बाहर निकलने पर प्रतिबन्ध लगाना पूर्ण रूप से दासता का चिह्न है। स्त्री शिक्षा के अभाव में पुरुषो ने महिलाओं की सरलता और अज्ञानता से बहुत लाभ उठाया। उन्हे यह पट्टी अच्छी तरह पढ़ाई गई कि स्त्रियों का सबसे बडा धर्म पति सेवा है, उनका सबसे बडा देवता पतिदेव है, पति को प्रसन्न और सुखी रखना उनके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य है। पति चाहे क्रूर, निर्दय, पापी, दुराचारी चाहे जैसा हो वह देव तुल्य पूज्य होता है। पत्नी को वह चाहे कितनी ही निर्दयता से मारे-पीटे, पर पत्नी को उफ तक न करना चाहिए। पति की प्रत्येक इच्छा की पूर्ति वह जान देकर भी करे। उसकी आज्ञा का उल्लघन करने पर सभी नरक उसके लिए मुंह बाए खडे हैं। जीवन पर्यंत उसके पाव की धूलि अपने मस्तक पर चढ़ाकर अपने को धन्य मानना चाहिए। प्रात. उठते ही पतिदेव का

दर्शन कर नेत्रों को पवित्र करे, उसकी प्रत्येक आज्ञा को ब्रह्मवाक्य समझ कर शिरोधार्य करे। इस प्रकार की एकांकी शिक्षा दे-देकर वास्तव में स्त्री जाति के प्रति बहुत अत्याचार किया गया। पतिव्रत धर्म, तथा धर्म शास्त्र के अनेक पवित्र आदर्शों का गलत अर्थ ले-लेकर उनका अनुचित फायदा उठाया गया और शास्त्रों की बदनामी की गई। शिक्षा के अभाव में ऐसी कार्यवाहियो द्वारा स्त्री समाज को अपार हानि उठानी पडी। बिल्कुल गुलामो सरीखा व्यवहार उनके साथ किया गया। दहेज प्रथा द्वारा उनका क्रय और विक्रय तक करने में बालिकाओ के माता-पिता को लज्जा का अनुभव नहीं होता था।

कई शताब्दियो तक स्त्रियो के ऐसी अवस्था में रहते हुए यही कहा जाने लगा है कि स्त्रियां स्वभावत शारीरिक दृष्टि से कमजोर होती हैं, उन्हें स्वतन्त्रता स्वत पसन्द नही, घर के सिवा बाहर जाना भी नहीं चाहती तथा पुरुषो की गुलामी ही में जीवन की सफलता समझती हैं। लेकिन यह बात पूर्ण रूप मे असत्य है। अशिक्षा एव अज्ञानता के कारण वह पृथक रूप से अपना जीवन निर्वाह नही कर सकती अत उन्हे पति के आधीन रहना पडता है तथा दूसरे की गुलामी करनी पडती है, पर इसका यह तात्पर्य नही की स्त्रियां गुलामी ही पसन्द करती हैं तथा परतन्त्रता उन्हे पसन्द नहीं है। आजीविका की सबमे बडी समस्या उन्हें सदैव दुखी बनाए रहती है। उन्हे ऐसी शिक्षा प्रारम्भ से नही दी जाती जिससे वे अपने जीवन का निर्वाह स्वतन्त्र रूप मे कर सकें। अगर वे इस योग्य हो कि स्वतन्त्रतापूर्वक अपने और अपनी सन्तानो का पालन पोषण कर सकें तो उनकी हालत मे बहुत कुछ सुधार हो सकता है। वह पति की दासी मात्र न रहकर पवित्र प्रेम की अधिकारिणी हो सकती हैं। उनका हृदय स्वभावत कोमल होता है और उसमे प्रेम रहता है और आत्मसमर्पण की भावना पूर्ण रूप से विद्यमान होती है। पूर्ण रूप से शिक्षा प्राप्त करने पर भी वह प्रेममय

दाम्पत्य जीवन व्यतीत कर सकती हैं।

शिक्षा के अभाव में स्त्री के लिए विवाह एक आजीविका का साधन मात्र रह गया है। अभी हिन्दू समाज में कई ऐसे पति हैं जो बहुत क्रूर एवं निर्दय हैं और अपनी स्त्रियो को दिन-रात पाशविकता से मारते-पीटते रहते हैं तथा कई ऐसी साध्वी देविया हैं जिन्हें अपने शराबी और जुआरी पति को देवता से भी बढकर मानते हुए पूजना पडता है और वे लाचारीवश अपने बंधनों को नही तोड सकतीं। अशिक्षा के कारण आजीविका के साधनों का अभाव ही उनकी ऐसी गुलामी का कारण है।

समाज में यह भावना कूट-कूट कर भरी हुई है कि स्त्रियों का स्थान घर के भीतर ही है, बाहर नही और इन्ही विचारों की पुष्टि के लिए यह कहना पडता है कि स्त्रियाँ घर से बाहर के कार्यक्षेत्र के लिए बिल्कुल उपयुक्त नही। कुछ समय के लिए उन्हे शारीरिक दृष्टि से अयोग्य मान भी लिया जाय तो भी इस विज्ञान के युग मे मस्तिष्क की शक्ति के सामने शारीरिक शक्ति कोई महत्व नहीं रखती। सभी महत्वपूर्ण कार्य मस्तिष्क से ही किए जाते हैं। मानसिक दृष्टि से तो कम से कम स्त्री और पुरुष की शक्ति में भेद नहीं किया जा सकता। अभी तक शिक्षा के क्षेत्र मे स्त्रियाँ-पुरुषों के समान कार्य नहीं कर सकीं। वह तो उनकी लाचारी थी। उन्हें पूर्ण रूप से अशिक्षित रख कर समाज क्या आशाए रख सकता था कि वे अपनी शक्तियों का उचित उपयोग कर सकें?

अगर अच्छी तरह से विचार किया जाय तो यह भी स्पष्ट हो जायगा कि स्त्री और पुरुष की शारीरिक शक्ति में कोई खास भेद नही हैं। कुछ तो स्त्रियों का रहन सहन ही सदियो से वैसा चला आ रहा है, तथा खान पान और वातावरण से उनमें कमजोरी आ जाती है जो कि पीढी दर पीढ़ी से चली आ रही है। स्त्री और पुरुष की शरीर रचना मे कुछ भेद है पर उसका यह तात्पर्य

नहीं कि स्त्री का किसी क्षेत्र से बहिष्कार ही किया जाय। कई ऐसी स्त्रियां हैं और थी जो प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के समान ही सफल कार्यकर्त्री साबित हुई। शिक्षा के क्षेत्र में ब्राह्मी, धार्मिक क्षेत्र मे चन्दनबाला, द्रौपदी, मृगावती आदि सतियां थी, जिनका पुरुषार्थ अनेक पुरुषों से भी बढा चढ़ा था। भारतवर्ष प्रारम्भ से ही आध्यात्मप्रधान देश रहा, और विशेष कर स्त्रियां तो स्वभावतः धार्मिक हृदय होती हैं। अत उसी क्षेत्र मे वे पुरुषों के समान महत्त्वपूर्ण स्थान लेती रहीं यद्यपि राजनीतिक क्षेत्र में भी आजकल महिलाएं बराबर भाग लेती हैं। रानी लक्ष्मीबाई, अहिल्याबाई, दुर्गावती, चादबीबी, नूरजहां आदि का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। वे अन्य राजाओं के समान ही नहीं लेकिन कुछ राजाओ से अधिक योग्यता और साहसपूर्वक राज्य सचालन करती रहीं और युद्धादि के समय वीर अभिनेत्री बनती थीं। वीरता में भी स्त्रिया पुरुषों से कम नहीं। यद्यपि वे स्वभावत कोमल हृदय होती हैं पर समय पड़ने पर वे मृत्यु के समान भयकर भी हो सकती हैं। रानी दुर्गावती और लक्ष्मीबाई के उदाहरण भारतवर्ष में अमर रहेंगे। त्याग और बलिदान की भावना उनमे पुरुषों से अधिक ही होती है। वे प्रथम तो अपना सर्वस्व ही पतिदेव को समर्पण कर विवाह करती हैं तथा साथ ही साथ अपनी इज्जत बचाने के लिए वे प्राण तक बलिदान कर सकती हैं। पद्मिनी आदि चौदह हजार रानियो का हसते-हंसते आकाश को छूती हुई आग की लपटो में समाकर सती होना क्या विश्व के समक्ष भारतीय नारी के त्याग और बलिदान का ज्वलत उदाहरण नही ?

महारानी एलिजाबेथ और महारानी विक्टोरिया ने भी अपनी सुयोग्यता द्वारा सफलतापूर्वक इतने बड़े राज्य का सचालन किया। अगर शारीरिक दृष्टि से स्त्रियां शक्तिहीन होतीं तो किस प्रकार वे इतना बड़ा कार्य कर सकती थीं ? वास्तव में स्त्रियो का उचित

पालन-पोषण तथा शिक्षा होनी चाहिए। राजघराने की महिलाओं को ये सब वस्तुएं सुलभ होती हैं। वातावरण भी उन्हें पुरुषों जैसा प्राप्त होता है, फलतः वे भी पुरुषों के समान योग्य होती हैं। साधारण नारी को चूल्हे और चक्की के सिवाय घर में और कुछ प्राप्त नहीं होता अतः उनकी योग्यता और शक्ति वहीं तक सीमित रह जाती है।

शारीरिक और मानसिक दोनों दृष्टियों से स्त्रियों और पुरुषों की शक्ति बराबर ही होती है। हर एक कार्य को स्त्रियां भी उतनी ही योग्यता से कर सकती हैं जितना कि पुरुष। यह नहीं कह सकते कि जो कार्य पुरुष कर सकते हैं उन्हें स्त्रियां कर ही नहीं सकतीं। अभ्यास प्रत्येक कार्य को सरल बना देता है। यद्यपि समाज की सुव्यवस्था के लिए दोनों के कार्य सुचारु रूप से विभाजित कर दिए गये हैं पर इसका अभिप्राय यह नहीं कि स्त्री किसी अपेक्षा से पुरुषों से कम है या जो कार्य पुरुष कर सकते हैं वे कार्य स्त्रियों द्वारा किए ही नहीं जा सकते।

शरीर-रचना-शास्त्र के अनुसार बहुत से लोग यहां तक भी सिद्ध करने का साहस करते हैं कि स्त्री तथा पुरुषों के मस्तिष्क में विभिन्नता है। स्त्री की अपेक्षा पुरुष का मस्तिष्क विशाल होता है। पर यह कथन सर्वथा उपयुक्त नहीं। इस कथन के अनुसार तो मोटे आदमियों का मस्तिष्क हमेशा भारी ही होना चाहिए। पर यह तो बहुत हास्यास्पद और असत्य है। हम निजी अनुभव से भी देख सकते हैं कि मोटे आदमी भी बहुत बुद्धू और मूर्ख होते हैं। तथा दुबले-पतले दिखने वाले भी अधिक बुद्धिमान् और बड़े मस्तिष्क वाले होते हैं।

स्त्रियों का कार्यक्षेत्र घर तक ही सीमित रखने के लिए जिस प्रकार उनकी शारीरिक कमजोरी बताई जाती है उसी प्रकार उनकी मानसिक कमजोरी को भी उनकी अज्ञानता का कारण बताया

जाता है। उनको पुरुष समाज सदियों तक घर में, परदे में और घूंघट में रखता रहा और आज यह तर्क दिया जाता है कि उनमें से कोई भी बड़ी राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, वैज्ञानिक नहीं हुई अत उनमे कोई मानसिक न्यूनता है। उनसे यह आशा रखी जाती है कि वे चक्की पीसते-पीसते वैज्ञानिक बन जाए, खाना बनाते-बनाते दार्शनिक हो जाए और पति की ताड़ना सहते-सहते राजनीतिज्ञ हो जाएं। जहां बिल्कुल शिक्षा का प्रचार ही नहीं और स्त्रियों को घर से बाहर नहीं निकाला जाता वहां ये सब बातें कैसे सम्भव हैं?

मानसिक कमजोरी का तर्क तब युक्तिपूर्ण हो सकता है जब एक स्त्री प्रयत्न करने पर भी उस क्षेत्र में कुछ भी कार्य करने के योग्य न हो सके। पर ऐसा कहीं भी देखने मे नहीं आता। स्त्रियां शिक्षित होने पर हर एक कार्य बड़ी सफलता पूर्वक कर सकती हैं। जिस गति से भारत मे स्त्री शिक्षा बढ़ रही है उसी गति से महिलाए प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ती जा रही हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि सुशिक्षिता स्त्रियां भी किसी मानसिक कमजोरी के कारण कोई कार्य करने मे असमर्थ रही हो। भारतवर्ष में और अन्य देशो मे, महत्वपूर्ण कार्यों में स्त्रियो के आगे न आने का कारण उनको अवसर न मिलना ही है।

अभी स्त्री शिक्षा की नीव डाली ही गई है, धीरे-धीरे निरन्तर प्रगति होते-होते निश्चित रूप से महिलाए अपने को पुरुषों के बराबर सिद्ध कर देंगी। कदम नव शिक्षिताओ को पुरानी सभी विचारधाराओं का पूर्ण रूप मे अध्यायन कर लेना कष्टसाध्य भी तो होता है।

इस प्रकार यह निश्चित है कि शारीरिक और मानसिक दृष्टि से स्त्री व पुरुष दोनों बराबर होने है। पति को ऐसी अवस्था मे पत्नी को दासी बना कर रखना उसके प्रति अन्याय होगा। स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि स्त्री और पुरुष की शिक्षा

मे भिन्नता होनी चाहिए अथवा नहीं ?

५—शिक्षा की रूपरेखा

यह निश्चित है कि पति चाहे जितना ही धन अर्जित करता हो, अगर उस पैसे का उचित उपयोग न किया जाय तो बहुत हानि होने की सभावना है । अगर घर की व्यवस्था उपयुक्त नहीं, स्वच्छता की ओर कोई लक्ष्य नहीं, उचित सन्तानपोषण की व्यवस्था नही तथा खान-पान की सामग्री का इतजाम नहीं तो कौटुम्बिक जीवन कभी सफल और सुखी नही रह सकता । अगर गृहिणी शिक्षिता होकर आफिस मे पतिदेव की तरह क्लर्की करे और उनकी सन्तान सदैव दुखी रहे, तथा सभी प्रकार की अव्यवस्था हो तो क्या वह दाम्पत्य जीवन सुखी होगा ! एक सफल गृहिणी होना ही स्त्री का कर्त्तव्य है । पति-पत्नी दोनों ही अगर भिन्न-भिन्न क्षेत्र मे अपना-अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह पूरा करते रहें तभी गृहजीवन सुखी हो सकता है। पति का आफिस में कार्य उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना स्त्री का भोजन बनाना । किसी का भी कार्य एक दूसरे से हीन नहीं । स्त्रियों को सुशिक्षित होकर अपनी गृहस्थी को स्वर्ग बनाने और अपनी सन्तान को गुणवान् बनाकर सत्सस्कारी करने का उपक्रम करना चाहिए । स्त्रियों की शिक्षा निश्चित रूप से पुरुषों से भिन्न प्रकार की होनी चाहिए । साधारण रूप से सभी शिक्षिता स्त्रियों को सफल गृहिणी बनने में सीता-सावित्री का आदर्श अपनाना चाहिए । किन्हीं विशेष परिस्थितियों मे कोई स्त्री अर्थप्राप्ति में भी पति का हाथ बटा सकती है अपनी सुविधा और योग्यता के अनुसार । पर स्त्रियों के बिना गृहस्थी सुव्यवस्थित नहीं रह सकती और उन्हें इस ओर सुशिक्षिता होकर उपेक्षा कदापि नहीं करना चाहिए ।

आजकल स्त्रियों को धर्म, शिल्प, विज्ञान, गृहकार्य, रन्धन, सीना, सन्तान पोषण और स्वच्छता आदि की शिक्षा दी जानी चाहिए।

अश्लील नाटकों, उपन्यासों, सिनेमा आदि में व्यर्थ समय नष्ट न किया जाय तो अच्छा है। मनोरजन के लिए चित्रकला, सगीत आदि की शिक्षा देना उपयुक्त है। प्राचीनकाल मे बालिकाओं को अन्य शिक्षाओं के साथ-साथ सगीत आदि का भी अभ्यास कराया जाता था। नृत्य भी एक सुन्दर कला है। नृत्य और सगीत शिक्षा मनोरजन के साथ-साथ स्वास्थ्यलाभ की दृष्टि से भी अच्छी है। इन बातों से दाम्पत्य जीवन और भी सुखमय, आकर्षक तथा मनोरन्जक बन जाता है। परस्पर पति-पत्नी में प्रेम भी बढता है। कला के क्षेत्र में वे उन्नती करेंगी और बहुत से आदर्श कलाकार पैदा होंगे।

शिक्षा के प्रति प्रेम होने से आदर्श नारी चरित्र की ओर अग्रसर होने का वे प्रयत्न करेंगी। सीता, सावित्री, दमयन्ती, मीराँबाई आदि के जीवन चरित्र को समझकर अपने जीवन को उन्हीं के अनुरूप बनाने का वे प्रयत्न करेंगी। स्त्रियों के लिए सबसे महत्वपूर्ण शिक्षा तो मातृत्व की है। जितनी योग्यता से वे बच्चों का पालन पोषण करेंगी राष्ट्र का उतना ही भला होगा।

बालकों के स्वभाव का मनोवैज्ञानिक अध्ययन होना सतान के हृदय मे उच्च सस्कार डालने में विशेष उपयोगी सिद्ध हो सकता है। प्रत्येक बालक की प्रारम्भ से ही भिन्न-भिन्न प्रकार की स्वाभाविक रुचि होती है। कोई स्वभाव से ही गम्भीर और शान्त होते हैं, कोई चचल और कोई बुद्धिहीन और मूर्ख होते हैं। कइयों की रुचि खेल-कूद की ओर ही होती है, कोई सगीत का प्रेमी होता है तो कोई अध्ययनशील, किसी को दुकान की गद्दी पर बैठकर सामान तोलने मे ही प्रसन्नता होती है तो किसी को मन्दिर में जाकर ईश्वर के भजन मे ही आत्मसतोष प्राप्त होता है। अगर ऐसी ही स्वा-

भाविक रुचि के अनुसार बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय तो वे उसमे बहुत सफल और प्रवीण हो सकते हैं। स्त्रियो के लिए ऐसी ही मनोवैज्ञानिक शिक्षा उपयोगी है, जिसके द्वारा वे बालको को समझ सकें। उनके मस्तिष्क की गतिविधि को पहचानने मे ही उनके जीवन की सफलता निर्भर रहती है।

जैसा व्यवहार करना बचपन मे बालकों को सिखाया जायगा वैसा ही वे जीवन भर करते रहेंगे। वे प्रत्येक बात में माता पिता और कुटुम्ब के वातावरण का अनुकरण करते हैं। अगर माता स्वभाव से योग्य, कर्त्तव्यनिष्ठ; सुसस्कृत और सभ्य है तो कोई वजह नहीं कि पुत्र अयोग्य हो। पुत्रो को सुधारने के लिए माताओ को अपने आचरण और व्यवहार को सुधारना चाहिए। स्त्रियों को इसी प्रकार की शिक्षा देना उपयुक्त है जिससे वे सतान के प्रति अपना उत्तरदायित्व समझे और अपना व्यवहार सुधारे। झूठे ममत्ववश बालको को जिद्दी और हठी बना देना उनका जीवन बिगाडने के समान है।

मातृत्व मे ही स्त्रियो पर सबसे बड़े उत्तरदायित्व का भार रहता है अत. उसी से सम्बन्धित शिक्षा भी उनके लिए उपयुक्त है। इसका यह तात्पर्य नही कि और किसी प्रकार की शिक्षा की उनको आवश्यकता ही नहीं। महिलाओ के लिए भी शिक्षा का बहुत सा क्षेत्र रिक्त है। घर के आय व्यय का पूर्ण हिसाब रखना गृहिणी का ही कर्त्तव्य है। कितना रुपया किस वस्तु मे खर्च किया जाना चाहिए, इसका अनुमान लगना चाहिए। धन की प्रत्येक इकाई को कहा-कहा खर्च किए जाने पर अधिक से अधिक सन्तोष प्राप्त किया जा सकता है, यह स्त्री ही सोच सकती है। बच्चो को चोट लग जाने पर, जल जाने पर, गर्मी-सर्दी हो जाने पर, साधारण बुखार मे कौनसी औषधि का प्रयोग किया जाना चाहिए, इसका साधारण ज्ञान होना चाहिए। इसका साधारण ज्ञान होना अत्यावश्यक है।

घर की प्रत्येक वस्तु को किस प्रकार रखा जाय कि किसी को भी नुकसान न पहुचे, यह सोचना गृहिणी का कार्य है। घर को स्वच्छ और आकर्षक बनाए रखने में ही गृहिणी की कुशलता आंकी जाती है। घर की स्वच्छता और सुन्दरता भी वातावरण की तरह मनुष्य के मस्तिष्क पर प्रभाव डालने वाली होती है। चतुर गृहिणी अपनी योग्यता से घर को स्वर्ग बना सकती है और मूर्ख स्त्रियां उसी को नरक। यद्यपि अकेली शिक्षा ही पर्याप्त नही होती, उसके साथ-साथ कोमलता, विनय और सरलता आदि स्वाभाविक गुण भी महिलाओं मे होने चाहिए, पर शिक्षा का महत्व जीवन में कभी कम नही हो सकता। जितना अधिक महिलोचित शिक्षा का प्रचार होगा, गृहस्थी की व्यवस्था उत्तम प्रकार से होगी, बालको की शिक्षा उचित रूप से होगी और कौटुंबिक जीवन सुखी होगा।

कुछ लोगों की धारणा है कि स्त्रियों का कार्य घर में चूल्हा-चक्की ही है अत उनको पढ़ाने-लिखाने की आवश्यकता नहीं तथा कई लोग प्रत्येक स्त्री को M A कराकर पुरुषों के समान ही नौकरी करने के पक्षपाती हैं। ये दानों बातें उपयुक्त नही। यह कथन अत्यत निराधार है कि एक सफल गृहिणी को शिक्षा की आवश्यकता नही। कुछ प्रारंभिक शिक्षा के उपरांत उच्च गृहस्थ शास्त्र का अध्ययन करना प्रत्येक स्त्री के लिए आवश्यक है। हर एक कार्य को सफलता से पूर्ण करने के लिए शिक्षा होनी चाहिए। प्रत्येक वस्तु का गहरा अध्ययन होने से ही उसकी उपयोगिता और अनुपयोगिता का पता चलता है। सुशिक्षित स्त्रिया सफल गृहिणी और सफल माता बन कर गृहस्थजीवन को स्वर्ग बना सकती हैं।

वास्तव में स्त्री-पुरुष का श्रम विभाजन ही सर्वथा उचित और अनुकूल है। दोनो के क्षेत्र भिन्न-भिन्न होते हुए बराबर महत्वपूर्ण हैं। पुरुष पैसा कमा कर लाता है और स्त्री उसका भिन्न-भिन्न कार्यों में उचित विभाजन करती है। न स्त्री ही पुरुष की

दासी है और न पुरुष ही स्त्री का मालिक है। दोनो प्रेम पूर्वक अगर मैत्री सम्बन्ध रखेंगे तभी गृहस्थी सुखमय होगी। स्त्री को गुलाम न समझकर घर मे उसका कार्य क्षेत्र भी उतना ही महत्वपूर्ण समझा जाना चाहिए। पर पुरुष-समाज में ऐसे बहुत ही कम लोग होंगे जो ऐसी मनोवृत्ति के हो। ऐसी विषम परिस्थितियों मे कम से कम स्त्री में इतनी योग्यता तो होनी ही चाहिए कि स्वतन्त्र रूप से वह अपना जीवन-निर्वाह कर सके। विशेष प्रतिभावान् स्त्री अगर अपनी प्रखर प्रतिभा से समाज को विशेष लाभ पहुचा सकती है तो उससे उसे वंचित न रखा जाना चाहिए। पर साधारण स्त्रियों को अपनी गृहस्थी की अवहेलना न करना ही उचित है। शिक्षा के क्षेत्र में उन्हे प्रतिबन्ध तो कुछ होने ही नहीं चाहिए।

शिक्षा के अभाव मे भारतीय विधवा समाज को बहुत हानि उठानी पड़ी। उनका जीवन बहुत कष्टमय और दुखी रहा। कुटुम्ब मे उनको कुछ महत्व नही दिया जाता है और बहुत बन्धन मे रह कर जीवन व्यतीत करना पड़ता है अगर प्रारम्भ से ही इनकी शिक्षा का पूर्ण प्रबन्ध किया जाता और अपनी आजीविका चलाने लायक योग्यता इनमें होती तो इनका जीवन सुधर सकता था। समाज को इनकी प्रतिभा से बहुत कुछ लाभ भी मिल सकता था।

एक कुटुम्ब में यह आवश्यक है कि पति अवश्य ही पर्याप्त रुपया कमाए जिससे कि जीवन निर्वाह हो सके। अगर कोई पति इतना नही कर सकता हो तो समस्त कुटुम्ब पर आफत आ जाती है। कई परिवार ऐसे हैं जिनमे गृहपति के बन्धुगण या बच्चे नहीं कमा पाते और फलस्वरूप वह कुटुम्ब बरबाद हो जाता है। अगर स्त्रियां सुशिक्षिता हो तो वे ऐसी परिस्थितियों मे पति का हाथ बटाकर उसकी सहायता कर सकती हैं। श्रमविभाजन का यह तात्पर्य तो कदापि नही कि स्त्रियां पैसा कमाने का कार्य करें ही नहीं, अगर उनमे इतनी योग्यता है तो उनका कर्त्तव्य है कि

वे आपत्ति के समय पति की यथाशक्ति मदद करें। आखिर जिसे जीवन-साथी बनाया है उसके दुख में दुख और सुख मे सुख मानना ही तो स्त्रियो का कर्त्तव्य है।

हर एक स्त्री को खूब पढ़-लिख कर बिल्कुल पुरुषों के समान स्वतन्त्र होकर नौकरी आदि करना चाहिए, यह विचार भी युक्तिसगत नही। हर एक स्त्री यदि ऐसा करने लगे तो घर की व्यवस्था कैसे हो ? सतान का पालन पोषण कौन करे ? घर की प्रत्येक वस्तु को हिफाजत से यथास्थान कौन रखे ? और खानपान का उचित बन्दोबस्त कैसे हो ? नौकरी भी करते रहना और साथ मे इन सब बातों का इतजाम भी पूर्ण रूप से करना तो बहुत ही कष्टसाध्य होगा। अगर कोई ऐसी असाधारण योग्यता वाली महिला हो तो वह जैसा चाहे वैसा कर सकती है।

चाहे ऐसी परिस्थितिया कभी उत्पन्न न हों पर प्रत्येक अवस्था में स्त्री को अपनी स्वतन्त्र आजीविका चलाने लायक योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। स्त्री का पुरुष पर किसी बात पर निर्भर न होना और पुरुष का स्त्री पर किसी बात पर निर्भर न रहना कोई अनुचित बात नहीं। जो स्त्री घर के कार्य क्षेत्र मे रुचि न रखकर किसी अन्य क्षेत्र के लिए योग्य होकर अपनी शक्तियों के विकास का दूसरा मार्ग ग्रहण करना चाहती है उसे पूरी स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। पुरुषों का क्षेत्र स्त्रियों के पहुच जाने से कोई अपवित्र नही हो जायगा और न वे किसी कार्य के लिए सर्वथा अनुपयुक्त ही हैं। क्योंकि पुरुष समाज अब तक स्त्रियो को दासता में रखने का ही अभ्यस्त था इसलिए उन्हें शिक्षा से पूर्ण रूप से वंचित रखा गया। इसी दासता को और मजबूत बनाए रखने के लिए बहुत प्रयत्न किए गए थे। उनकी शारीरिक और मानसिक शक्तियों की कमजोरी का तर्क दिया जाता रहा। इन सब के परिणाम स्वरूप स्त्री की परवशता बढ़ती गई और जैसे-जैसे स्त्री

परतन्त्र होती गई पुरुष को स्वामित्व के अधिकार भी ज्यादा मिलते गए। सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में उसका प्रभुत्व बढ़ता गया। परिस्थिति ऐसी हो गई कि पुरुष, स्त्री को चाहे कितनी ही निर्दयता से मारे-पीटे या घर से निकाल दे, पर स्त्री चू तक नहीं कर सकती।

अगर प्रारम्भ से स्त्रियों को अपने जीवन निर्वाह करने योग्य शिक्षा दी जाती तो समाज की बहुत-सी अबलाओं और विधवाओं के नैतिक पतन के एक मुख्य कारण का लोप हो जाता।

आज स्त्रियों में जागृति की भावना बढ़ती जा रही है। वह खुले रूप से राजनैतिक, सामाजिक या धार्मिक क्षेत्र में पुरुषों से मुकाबला करने के लिए तैयार हैं। यूनिवर्सिटियों में लड़कियां बड़ी से बड़ी डिग्रियां प्राप्त करने में तल्लीन हैं। पर हमारा देश अभी पतन के गहरे गड्ढे में गिर रहा है या उन्नति की ओर अग्रसर है? इस प्रश्न का उत्तर देना जितना सरल है उससे ज्यादा कठिन। किसी देश की उन्नति की कोई निश्चित सीमारेखा अभी तक किसी के द्वारा निर्धारित नहीं की गई है। प्रत्येक देश की सभ्यता और संस्कृति की भिन्नता के साथ-साथ लोगों की मनोवृत्तियों और विचारधाराओं में भी विभिन्नता आ जाती है। उन्नति की एक परिभाषा एक देश में बहुत उपयुक्त भी हो सकती है और वही दूसरे देश में उसके ही विपरीत हो सकती है। सभी के दृष्टिकोण भिन्न भिन्न हो सकते हैं।

कुछ समय पहिले भारत में शिक्षिता स्त्रियां बहुत कम थीं, पर अब तो उनकी सख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। अपने अधिकारों और स्वतंत्रता की मांगों की प्रतिध्वनि भी स्पष्ट रूप से सुनाई देने लगी है। पर मुख्य प्रश्न है कि क्या यह वर्तमान शिक्षा प्रणाली भारतीयों के सुख, सन्तोष व समृद्धि को बढ़ा सकेगी? क्या केवल शिक्षित होने से पति-पत्नी के सम्बन्ध अच्छे रहकर गृहस्थ

जीवन स्वर्ग बन सकेगा ? अगर नहीं तो शिक्षित स्त्रियाँ क्या करेंगी और उनका भविष्य क्या होगा ?

६—वर्तमान शिक्षा का बुरा प्रभाव

शिक्षा के अभाव में बहुत समय तक हमारे स्त्री समाज की हालत बहुत दयनीय, परतन्त्र और दासतापूर्ण रही। उनकी अज्ञानता के कारण बहुत-सी बुराइयाँ उत्पन्न हो गई। फलतः स्त्री शिक्षा को प्रधानता दी जाने लगी। अशिक्षा को ही सब बुराइयों का मुख्य कारण समझ कर उसे ही दूर करने पर बहुत जोर दिया जाने लगा पर अब धीरे-धीरे शिक्षित स्त्रियों की संख्या बढ़ती जा रही है। अब तक यह आशा की जाती थी कि पढ़-लिख कर स्त्रियाँ सफल एवं चतुर गृहिणी बनेंगी। वे आदर्श पत्नी होकर पतिव्रत धर्म का आदर्श विश्व के समक्ष रखेंगी। वीर, गुणवान् संतान उत्पन्न कर राष्ट्र का भला करेंगी। शिक्षा की ओर महिलाओं की रुचि देखकर हम शकुन्तला, सीता के स्वप्न देखने लगे। हम सोचते थे कि बहुत समय पश्चात् अब भारतवर्ष में फिर लव, कुश, भरत और हनुमान जैसे तेजस्वी, शक्तिवान् और गुणवान् पुत्र उत्पन्न होने लगेंगे। हमें पूर्ण विश्वास था कि महावीर, बुद्ध, गौतम सरीखे महापुरुष उत्पन्न होकर भारत की कीर्तिपताका एक बार फिर विश्व मे लहराने लगेगी। ऐसी ही मनोहर आशाओ और आकांक्षाओं के साथ-साथ अविद्यारूपी अन्धकार को दूर करने के लिए ज्ञान-सूर्य का उदय हुआ। पर अब उस प्रकाश में अपने आपको, भारत के वर्तमान नवयुवक और नवयुवतियो को और उनकी शिक्षा को परखने का अवसर आ गया है। क्या भारत की वर्तमान शिक्षिता स्त्रियाँ अपने उसी कर्तव्य को समझने का प्रयत्न कर रही हैं ? क्या उनसे जो आशाएँ थीं उन्हें पूर्ण करने की क्षमता उनमें है ? आदि बहुत से प्रश्न अभी विचारणीय हैं।

हमारी वे सब आशाएं मुरझाई-सी जा रही हैं। हमारे सुख-स्वप्न अधूरे ही समाप्त हो रहे हैं। दहेज की प्रथा बहुत ही घातक है। इससे प्राय. अनमेल विवाह होते हैं। शिक्षिता लड़कियों को शिक्षित पति नहीं मिलते और शिक्षित पतियों को सुशिक्षिता पत्निया नही मिलती। इस प्रकार सामाजिक जीवन बहुत खराब हो रहा है। दाम्पत्य सुख भी प्राप्त नही होता। विवाह के बाद से ही एक प्रकार का असतोष-सा घेरे रहता है जिससे जीवन दुखमय हो जाता है।

शिक्षिता होकर स्त्रियां नौकरी का साधन तो ढूढ सकती हैं पर आदर्श गृहिणी और सफल माता नही बनना चाहती। गृहिणी बनने के स्थान पर शिक्षिता होकर पति को तलाक देकर ऑफिस में क्लर्की करना चाहती हैं और सफल माता बनने के स्थान पर सतान के पालन-पोषण की जिम्मेवारी से बचने के लिए कृत्रिम गर्भनिरोध के साधन ढूढती फिरती हैं। ऐसी अवस्था में कौटुंबिक जीवन कहा तक सुखी हो सकता है? पति के प्रति भी प्रेम रखना, उसकी आज्ञाओं का पालन करना, विशेष अवसरों पर सेवा आदि करना वे दासता का चिह्न समझती हैं।

किसी भी गृहकार्य को करना उनकी शान के खिलाफ है। अगर सीता-सावित्री बनना उचित नही समझती तो कम से कम साधारण रूप से गृहस्थी की सुव्यवस्था करना तो उनका धर्म है। पूर्णरूप से पतिव्रता बनकर न रह सकती हो तो कम से कम ऑफिस से थके-मांदे आए हुए पति के साथ दो मीठी बातें तो कर सकती हैं! लव, कुश, भरत सरीखे पुत्रों का पोषण नहीं कर सकतीं तो उन्हें साधारण रूप से नैतिक शिक्षा तो दी जा सकती है। पर जिनमें खुद जरा भी नैतिकता नहीं, चारित्र नहीं, वे क्या खाक संतानो पर अच्छे सस्कार डालेंगी? जो हमेशा प्रेम विवाह कर रोज पतियों को तलाक देने की सोचती हैं उनसे क्या आशा की

जाए कि वे संतानो का मानसिक स्तर ऊँचा उठाकर उन्हे गुणवान् बनाएंगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा का उद्देश्य ही भारतीय संस्कृति के ठीक विपरित है। योरप मे चाहे इसे सभ्यता की अंतिम सीढ़ी कहा जाए पर कम से कम भारतवर्ष में ये बातें उपयुक्त नहीं हो सकती।

हमारी शिक्षा तो शारीरिक और मानसिक विकास के लिए होनी चाहिए। चरित्र-निर्माण का ध्येय ही यहाँ मुख्य हो तभी संतानों के लिए यह आशा की जा सकती है कि वे भी ऊँचे विचारों वाले होंगे। केवल पुस्तकीय शिक्षा तो भारतवर्ष के लिए भार स्वरूप ही होगी। भारत की उन्नति केवल चरित्रबल से ही हो सकती है, जो सदियो तक हमारी सभ्यता और संस्कृति का वरदान रही है।

७—चार प्रकार की स्त्री-शिक्षा

स्त्री-शिक्षा से तात्पर्य कोरा पुस्तक ज्ञान ही नहीं है पुस्तक पढना सिखा दिया और छुट्टी पाई इससे काम नहीं चलेगा। याद रखना कोरे अक्षर ज्ञान से कुछ भी नही होने का। अक्षर ज्ञान के साथ व्यावहारिक ज्ञान कर्त्तव्यज्ञान की शिक्षा दी जायगी तभी शिक्षा का वास्तविक प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा।

मैंने एक दिन आपके सामने द्रौपदी का जिक्र किया था। मैंने बतलाया था कि द्रौपदी को चार प्रकार की शिक्षा मिली थी। एक बालिका शिक्षा, दूसरी वधू शिक्षा, तीसरी मातृ-शिक्षा और चौथी कदाचित कर्मयोग से वैधव्य भोगना पड़े तो विधवा-शिक्षा। तात्पर्य यह है कि स्त्री को जिन अवस्थाओं में से गुजरना पड़ता है, उन अवस्थाओं में सफलता के साथ निर्वाह करने की उसे शिक्षा मिली थी। यही शिक्षा समूची शिक्षा कही जा सकती है। स्त्रियों

को जीवन की सर्वाङ्ग उपयोगी शिक्षा मिलनी चाहिए।

स्त्रियो की सब प्रकार की शिक्षा पर ही तो संतान का भी भविष्य निर्भर है। आज भारत के बालक आपको देखने मे, ऊपर से भले ही खूबसूरत दिखलाई देते हो, पर उनके भीतर कटुकता भरी पड़ी है। प्रश्न होता है बालकों मे यह कटुकता कहाँ से आई? परीक्षा करके देखेंगे तो ज्ञात होगा कि बालक रूपी फलों में माता रूपी मूल मे से कटुकता आती है। अतएव मूल को सुधारने की आवश्कता है। जब आप मूल को सुधार लेंगे तो फल आप ही सुधर जाएँगे।

माता रूपी मूल को सुधारने का एक मात्र उपाय है उन्हे शिक्षित बनाना। यह काम, मेरा खयाल है पुरुषों की बनिस्पत स्त्रियों से बहुत शीघ्र हो सकता है। उपदेश का असर स्त्रियों पर जितना जल्दी होता है, उतना पुरुषों पर नहीं होता।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियो मे त्याग की मात्रा अधिक दिखाई देती है। पुरुष चालीस वर्ष की अवस्था मे विधुर हो जाय तो समाज के हित-चिन्तको के मना करने पर भी, जाति मे तड डालने की परवाह न करके दूसरा विवाह करने से नही चूकता। दूसरी तरफ उन विधवा बहिनो की ओर देखिये जो बारह-पन्द्रह वर्ष की उम्र में ही विधवा हो गई हैं। वे कितना त्याग करके आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करती है? क्या यह त्याग पुरुषो के त्याग से बढकर नहीं है?

४—विवाह और उसका आदर्श

१—जीवन का आदर्श

वर्तमान शताब्दी को चाहे हम मशीन-सदी कहें अथवा सभ्यता की ऊँची सीढी, फिर भी यह भौतिकता के कठोर धरातल पर अपने जीवन का आदर्श व उद्देश्य सीमित रखते हुए जीवन को अधिक सरल, सन्तुष्ट, सुखी व शान्त नहीं बना सकती, कम से कम इस शान्ति प्रधान देश भारतवर्ष मे। प्राचीन भारतीय सस्कृति अध्यात्म-प्रधान थी। लोगों की सामाजिक, राष्ट्रीय व नैतिक अवस्था में समय की विभिन्नता व परिस्थितियों के फेर से काफी परिवर्तन हो गया है। इस समय मनुष्य आध्यात्मिकता से मुह मोड भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति मे ही अपने जीवन का उद्देश्य समझने लगा है। पहिले के मनुष्य अर्थसचय की ओर से उदास थे। वे जीवन मे अर्थ की अपेक्षा अन्य मानवोचित गुणों मे, जैसे—प्रेम, दया, क्षमा, धैर्य आदि में अधिक विश्वास रखते थे। मानव हृदयो को पवित्र प्रेम के उज्ज्वल धागो में बाँध लेना ही उनकी सबसे बडी साधना थी। ससार के प्रत्येक अणु-अणु में अपने समान एक ही अज्ञात सप्राण छाया की झाँकी पाना उनका आदर्श था। वे जीवन की ओर से जितने उदासीन थे, अपने मानवोचित गुणों की ओर उतने ही सजग। प्रत्येक मनुष्य के हृदय में वे भौतिक विभिन्नता को भूल कर आध्यात्मिक एकता स्थापित करना चाहते थे। उनके सामाजिक, धार्मिक व दार्शनिक सिद्धान्त भी इसी दृष्टिकोण पर आधारित थे। वे मानव-जीवन को अत्यन्त दुर्लभ

मानते थे, और उनके पीछे एक आदर्श था जो हमारी भारतीय संस्कृति का प्राण रहा है। वह आदर्श प्रेम व सौन्दर्य की कोमल भावनाओ से युक्त था, धैर्य व सन्तोष की मृदुल कल्पनाओ से विशाल तथा त्याग व बलिदान के कठोर मत्रो से गतिशील था। हृदयों में एकता का अनुभव कर समस्त मानवता के कल्याण की कामना करना ही उसका उद्देश्य था। यही विशालता उन्नति-पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा करती थी। अपनी आत्मा तथा अपनी शक्ति को अपने तक ही सीमित न रखकर वे अपना कार्यक्षेत्र विस्तृत बनाने का प्रयत्न करते थे। अपने को अपने तक ही सीमित समझने वाले मनुष्यों की सख्या अगणित है। पर मानवता की दृष्टि से उनका कोई महत्व नहीं। भौतिक क्षेत्र मे केवल अपनी ही स्वार्थपूर्ति करना कोई मानवोचित गुण नहीं। महानताप्राप्ति का सर्व प्रथम आदर्श है विशालता। जो मनुष्य जितना ही विशाल हृदय होगा, उसका कार्यक्षेत्र भी उतना ही विस्तृत होगा। कार्यक्षमता भी उसमे रहेगी व जीवन में वह निश्चित रूप से एक सफल कार्यकर्त्ता होगा। ऐसे ही मनुष्यो का जीवन इतिहास मे स्वर्णाक्षरो से अकित करने योग्य होता है, जिन्होंने अपने असीम प्रेम व त्याग द्वारा मानवता को कुछ नूतन सदेश देने का प्रयत्न किया। महानता को नापने का सब से उपयुक्त अस्त्र है हृदय की विशालता।

सभी सामाजिक व राष्ट्रीय प्रवृत्तिया इसी की अपेक्षा रखती हैं। बिना प्रेम के तो मानव जीवन रह ही नही सकता। विश्व के प्रत्येक अणु अणु मे प्रेम की उज्ज्वल रश्मिया प्रकाशमान है। उसकी ज्योति से मनुष्य अपनी आत्मा के साथ अन्य आत्माओं का पवित्र सम्बन्ध स्थापित करता है। सकीर्णता व द्वेष मनुष्य के जन्मजात शत्रु हैं। प्रेम के द्वारा हृदय जीतने मे ही प्राचीन भारतीय सस्कृति विश्वास रखती थी। कानून व तर्क के आधार पर

प्रेममय दाम्पत्य जीवन की आशा रखना स्वप्न मात्र होगा । प्रेम ही ऐसा सम्मोहन मन्त्र है जो हृदय को वशीभूत करने की आलौकिक क्षमता रखता है ।

यही हमारी प्राचीन सस्कृति का आदर्श था । हमारे सामाजिक रीति-रिवाज, राष्ट्रीय कर्त्तव्य, धार्मिक उद्देश्य इन्ही सिद्धान्तो के अनुसार निर्धारित किए गए थे । अर्थ समस्या इन सब से बिल्कुल पृथक रही । वे अर्थ-प्राप्ति की अपेक्षा त्याग, प्रेम व सन्तोष को अधिक महत्व देते थे । अथ को तो वे असन्तोप व सामाजिक विद्वेप का कारण समझते थे । जीवन की महानता मे अर्थ अपेक्षणीय नही था ।

अपने आदर्श को क्रियात्मक रूप देने के लिए भी हमारे ऋषि मुनियो ने बहुत प्रयत्न किया ।

२—जीवन का विभाजन

मनुष्य जीवन को आयु के चार भागों में विभक्त कर दिया गया था । यह विभाजन बहुत उपयुक्त तरीके से किया गया । सर्व प्रथम मनुष्य ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता हुआ अपने जीवन का सुन्दर निर्माण करे और फिर आदर्श गृहस्थ बने । अन्त में त्यागमय जीवन में प्रवेश कर मानवता के सिद्धान्तों का जगत् में विचार कर लोगों में नैतिक व धार्मिक जागृति कायम रखे । आत्मा को आदर्श से पूर्ण रूप से परिचित कराने के लिए यही मार्ग उपयुक्त समझा गया । सब आश्रमों का भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से अलग-अलग महत्व था ।

जीवन के आदर्श को अधिक पवित्र व मधुर बनाने के लिए यह आवश्यक था कि पहले पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन किया जाय और उसके बाद ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश हो । आत्मा को

विकसित, निर्मल व पवित्र बनाने का यही एक उपाय था। क्योंकि वही पवित्र आत्मा के भाव ही तो भावी विकास का आधार था। इसी अवस्था मे शरीर व मन को भावी कार्यक्षेत्र के लिए तैयार किया जाता था। यही वह दृढ नींव थी जिस पर गृहस्थी जीवन-रूपी महा प्रासाद की रचना होने वाली थी। अगर वही कमजोर रहे तो प्रासाद की मजबूती की कामना विफल ही रहेगी। जब शरीर व मन कर्त्तव्यपथ पर अग्रसर होने के उपयुक्त हो जाते थे, गृहस्थाश्रम के प्रवेश की तैयारी होती थी।

ब्रह्मचर्यावस्था में मनुष्य की दृष्टि कुछ सीमित, 'स्व' तक ही रहती थी, पर गृहस्थावस्था में अपनी दृष्टि को दूर तक फैलानी पड़ती थी, हृदय को विशाल बनाना पडता था व कार्यक्षेत्र विस्तृत हो जाता था। प्रथम अवस्था में मनुष्य की दृष्टि अपने से उठकर पत्नी तक तथा सतानो तक तो पहुच ही जाती थी। यद्यपि हृदय की विशालता की कोई सीमा नहीं, फिर भी साधारणतया कुछ सीमित क्षेत्र में मनुष्य अपने कर्त्तव्य का ज्ञान करता था। अपने ऊपर आए हुए कष्टो को बड़े धैर्य से सहन करने की क्षमता रखते थे पर सतानो का तनिक-सा कष्ट भी असह्य होता था। क्षुधा या पिपासा उन्हे व्याकुल नहीं कर सकती पर सतानों के पैर में एक साधारण-सा कांटा भी उनके हृदय के समस्त तारों को एक बार झकृत कर सकता था।

परन्तु भारतीय आदर्श गृहस्थ जीवन मे ही समाप्त नहीं होते। उनका सिद्धान्त विश्वमैत्री का था। गृहस्थ जीवन तो 'सर्वं भूतहिते रतः' तक पहुंचने को प्रथम डग था। जीवन का वास्तविक आदर्श तो प्राणिमात्र की हार्दिक मगलकामना मे है। पूर्णरूप से दूसरे की आत्मा में अपनी आत्मा को लय करना है। आत्मा के विकास को किसी भी एक दायरे पर रोक देना भारतीय आदर्श के विपरीत है। निरन्तर प्रगति करते रहना ही जीवन का

उद्देश्य होना चाहिए। गृहस्थाश्रम में हृदय की विशालता परिवार के कुछ सदस्यों तक ही सीमित रहती है। किन्तु जीवन का उद्देश्य तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक प्राणिमात्र के लिए हृदय में एकात्मकता का आभास नही हो जाता।

कुछ समय तक गृहस्थाश्रम मे आत्मा का विकास करके और अधिक विशालता प्राप्त करने के लिए इस आश्रम का त्याग कर देना ही भारतीय आदर्श के अनुरूप है। क्षणिक भोगो में लिप्त रह कर समस्त जीवन इसी के कीडे बनकर व्यतीत करना पशुता से भी बदतर है। प्रत्येक वस्तु किसी विशिष्ट सीमा तक ही उचित होती है, सीमोल्लघन करने पर साधारण वस्तु भी सर्वनाश का कारण बन सकती है।

गृहस्थाश्रम के पश्चात् उस सीमित परिवार को त्याग कर वनवास करने का विधान था। उदारता की जो शिक्षा उसे गृहस्थ जीवन में मिली उसे और विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त करने का अवसर दिया जाता था। प्राणिमात्र में अपनी ही आत्मा का प्रतिबिम्ब देखा गया। प्राणिमात्र में अपनापन अनुभव किया जाता था। यही जीवन का सर्वोत्तम आदर्श है।

इस प्रकार क्रमश मनुष्य की दृष्टि विशाल से विशालतर होती जाती थी। अन्त में आत्मा परमात्मस्वरूप बन जाती है। यही पर जीवन के आदर्श की पूर्णता थी।

३—विवाह

जन्म से लेकर मृत्यु तक जितने भी सस्कार किए जाते हैं, उनमें वबाह सस्कार सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि इसके बाद जीवन में बहुत कुछ परिवर्तन हो जाता है। एक नई भावना, नई उमंग-सी हृदय में उठती है। मनुष्य एक नए अनजान पथ पर

अग्रसर होने की तैयारी करता है। नए उत्तरदायित्व के भार से अपने कर्त्तव्य का ज्ञान होता है। ऐन्द्रिक सुख जीवन को आध्यात्मिक पृष्ठ भूमि से हटाकर मतवाले नयनों मे एक नया राग-सा भर देते हैं। यह अवस्था जीवन में बहुत खतरनाक होती है। अपने कर्त्तव्य पथ के विस्मरण की सम्भावना जितनी इस समय रहती है उतनी और कभी भी नहीं। ऋषि-मुनि जीवन को विषयभोग के पागलपन से दूर करने में सजग थे। जीवन को आदर्शमय बनाने के प्रथम अवसर को अधिक से अधिक पवित्र एव निर्मल रखने का उन्होने उद्योग किया। विवाह-सस्कार मे आध्यात्मिकता का पुट दिया गया। यही आध्यात्मिकता भारतीय सस्कृति की एक मात्र विशेषता रही। विवाह में भोग व रति को गौण स्थान देकर पवित्रता को प्रथम स्थान दिदा गया। वैषयिक सुख मनुष्य को सच्चे कर्त्तव्य पथ से हटाकर गन्दे कीचड़ मे फसा देते हैं। जो जितना ही अधिक मन को वशीभूत कर हृदय को पवित्र रखेगा, उसे अपने जीवन में उतनी ही अधिक सफलता प्राप्त होगी। इसी दृष्टिकोण से विवाह एक पवित्र सम्बन्ध कहा गया, जिसमे स्त्री व पुरुष एक सच्चे जीवन साथी के रूप में एक दूसरे की सहायता से सफलतापूर्वक अपने कर्त्तव्य को पूरा कर सकें।

विवाह-सस्कार में पूर्ण रूप से पवित्रता रखी गई। ईश्वर को साक्षी बनाकर वर और वधू आजन्म जीवन साथी बने रहने की प्रतिज्ञा करते हैं। देवताओं के समक्ष, पवित्र वातावरण मे पिता ने कन्यादान कर दिया व वर-वधू को सदा के लिए प्रेम बन्धन में बाध दिया गया। इस प्रकार की आध्यात्मिकता जीवन में निर्मलता व प्रेम का सचार करती रहती थी।

सम्बन्ध किस प्रकार निश्चित किया जाय? यह समस्या जितनी महत्त्वपूर्ण व टेढ़ी उस समय थी उतनी ही आज भी है। कोई निश्चित सिद्धान्त इसका पूर्ण रूप मे हल करने मे असमर्थ

है। साथियो का चुनाव समान गुणो, समान लक्ष्यों व समान धर्मों के अनुसार होना चाहिए, तभी दाम्पतय जीवन सुखी रह सकता है पर पूर्ण रूप से समान गुण व समान मनोवृत्तियों का मिलना सर्वथा असम्भव है। मानवोचित गुणों को निश्चित सीमा-रेखा मे नही बांधा जा सकता और न उन्हें मापने का कोई यन्त्र ही उपयुक्त हो सकता है। लेकिन जहाँ हृदय की विशालता व प्रेम ही वहां परस्पर असमान गुणो का सम्मिलन भी अपने-अपने लक्ष्य तक पहुंचने मे बाधक नही हो सकता।

४—चुनाव

ऋग्वेद में एक स्थान पर आया है कि वह सुन्दरी वधू अच्छी है जो अनेक पुरुषो में से अपने पति का चुनाव स्वय करती है। यहा कन्या की स्वेच्छा से पति को वरण करने की ओर सकेत है। प्राचीनकाल में राजकुमारियों के स्वयवर हुआ करते थे। दमयन्ती, सीता, द्रौपदी आदि के स्वयवर तो भारतीय इतिहास में अमर हैं ही। जयचद की पुत्री सयोगिया का स्वयंवर इस प्रथा का शायद सबसे अतिम उदाहरण है। कन्या चुनाव मे कही धोखा न खा जाय या किसी अयोग्य पुरुष के गले में वरमाला न डाल दे, इसकी भी व्यवस्था की जाती थी। प्राय. विशिष्ट वीरतामय कार्य करने के लिए एक आयोजन होता था। जो पुरुष वह कार्य सफलतापूर्वक करता वही वीर राजकुमारी के साथ विवाह के योग्य समझा जाता था। सीता के स्वयवर मे शिव-धनुष को उठाना तथा द्रौपदी के स्वयवर मे मत्स्य-वेध इसी दृष्टि से किए गए थे कि वीरत्व की परीक्षा सफलता से हो। इस प्रकार कन्या स्वयं अपनी इच्छा से किसी वीर तेजस्वी पुरुष को विवाह के लिए चुन लेती थी।

वर्तमान समय मे यह स्वयवर प्रथा समाप्त हो गई, पर ऐसे चुनाव प्रथा का स्वरूप ही बदल गया। कन्याओं को पतियो के चुनाव करने की स्वतन्त्रता नहीं रही पर पुरुषो को ही पत्नी के चुनाव का अधिकार मिल गया जो प्राचीन रीति से सर्वथा प्रतिकूल है। ज्यादा से ज्यादा आजकल के सुधरे हुए शिक्षित परिवारों में भी पुत्रियों को पूर्ण रूप से पति के चुनाव की स्वतन्त्रता नहीं है, यह अधिकार पुत्रों को ही है। कहीं-कहीं कन्याओ से सम्मति मात्र ले ली जाती है पर प्राचीन काल मे तो चुनाव का सपूर्ण अधिकार कन्याओ को ही था। आजकल विवाह करने वर, वधू के स्थान पर जाता है। उसे इसी स्वयवर प्रथा का बिगडा हुआ रूप कहा जा सकता है।

स्त्रियो को उस समय के सामाजिक क्षेत्र मे यह बहुत बडा अधिकार प्राप्त था। स्त्री को यह अधिकार प्राप्त था कि किसे वह अपने हृदय का ईश्वर बनाती है? किस वीर पुरुष के गुणो से आकर्षित होकर अपना सर्वस्व समर्पण करने के लिए उद्यत होती है। आत्मार्पण करना कोई साधारण वस्तु नहीं जिसे डण्डे के जोर से जबर्दस्ती किसी के प्रति भी कराया जा सके। प्रेममय जीवन व्यतीत करने के लिए आत्मसमर्पण आवश्यक था तथा आत्मसमर्पण के लिए स्वेच्छा से चुनाव होना भी आवश्यक है। इसी अधिकार को पाकर स्त्री पति की आज्ञाकारिणी हो सकती है। आज कई माता-पिता कन्या को किसी भी पुरुष के साथ बाध देते हैं तथा जिन्हें जीवन के लिए अपना साथी चुनना है उनसे सम्मति लेना भी आवश्यक नहीं समझते। यह अज्ञानता दाम्पत्य जीवन की सफलता के लिए उचित नही हो सकती। क्या इस प्रकार का चुनाव पति-पत्नी मे समानता का सूत्र पिरोकर उसका विस्तार कर सकता है?

सफल विवाह के लिए सुन्दर चुनाव बहुत महत्वपूर्ण है।

जब चुनाव स्वेच्छा से किया गया है तो पति-पत्नी के बीच का सम्बन्ध मित्रता के सम्बन्ध के अतिरिक्त अन्य कोई उपयुक्त नहीं हो सकता। दास-दासी का सम्बन्ध तो सर्वथा अनुपयुक्त है। दोनों एक दूसरे के सुख-दुख के सम्पूर्ण जीवन भर के साथी हैं। गृह्य सूत्र में लिखा है—

"यदेतद् हृदय तव तदस्तु हृदय मम, यदिदं हृदय मम तदस्तु हृदय तव।"

अर्थात् जो तेरा हृदय है वह मेरा हृदय हो जाय और जो मेरा हृदय है वह तेरा हृदय हो जाए। हम एक दूसरे मे इतनें घुलमिल जाएँ कि हम दोनों की पृथक सत्ता न रहे।

विवाह तो जीवन का अंतिम लक्ष्य नहीं यह तो आदर्श की पूर्णता का साधन मात्र है। परस्पर का सख्य भाव ही इस उद्देश्य की पूर्णता की प्राप्ति मे सहायक हो सकता है। नहीं तो विवाहित जीवन का मुख्य उद्देश्य कभी पूरा नही हो सकता। हम दैनिक जीवन की साधारण घटनाओ से भी इसकी पुष्टि कर सकते हैं। दो मित्र परस्पर के सहयोग से प्रत्येक कार्य अत्यंत सफलता से व प्रसन्नता से पूर्ण कर सकते हैं। हंसी-खुशी मे जीवन की कठिनाइयां भी मनुष्य को हताश नहीं कर सकतीं। जटिल से जटिल समस्याएँ भी पारस्परिक सहयोग से क्षणभर में हल हो जाती हैं। एकाकीपन का विचार ही कठिनाइयों को बढ़ाने, तथा असन्तोष का कारण होता है।

५—आदर्शों का पतन

विवाह से सम्बन्धित भारतीय आदर्श उस समय बहुत महत्त्वपूर्ण रहे। उनके फलस्वरूप गृहस्थ-जीवन बहुत सुखमय तथा आह्लादकर था। सामाजिक अवस्था के साथ-साथ नैतिक तथा धार्मिक

आदर्श भी ऊँचे रहे। पति-पत्नी विषयभोग को ही जीवन का आदर्श न मानकर अपने कर्त्तव्यपथ से च्युत न होते थे। अपने पवित्र उद्देश्य की ओर से सर्वदा जागरूक रहना ही उनकी विशेषता रही। सन्तानोत्पत्ति के लिए ही विषयभोग की मर्यादा सीमित रखी गई। सन्तान भी अनुपम तेजस्वी, बलवान व गम्भीर होती थी। इस प्रकार प्राचीन भारत का सामाजिक व नैतिक स्तर सर्वदा ऊँचा ही रहा। पर दुर्भाग्य से ये आदर्श स्थायी नही रहे। राजनैतिक परिस्थितियों के अनुसार उनमे सतत परिवर्तन होते रहे। कुछ इस्लाम सस्कृति के प्रभाव ने तथा विशेष रूप मे पाश्चात्य सस्कृति की चमक ने हमारे नेत्रो की ज्योति को एकाएक चकाचौंध-सा कर दिया। हमारे नेत्र खुद को देखने में असमर्थ-से हो गए। हम उस रग मे इतने अधिक रग गए कि सदियों से चले आए हुए हमारे उस रग का कुछ अस्तित्व ही न रह गया। कुछ स्वाभाविक रूप से नवीनता की भडकीली लहर रुचिकर ही आभासित होती है और कुछ राजनैतिक परिस्थितियो के बन्धन मे हम बँध गए। लेकिन जनता की रुचि में राजनैतिक परिस्थिति की अपेक्षा मनोवृत्तियों का ज्यादा असर रहा। पाश्चात्य कला, पाश्चात्य शिक्षा, पाश्चात्य वातावरण रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान ने भारतवर्ष मे आश्चर्यजनक प्रभाव डाला। पुराने रीति-रिवाज, चाहे उनके पीछे नैतिक उन्नति के कितने ही बहुमूल्य सिद्धान्त क्यों न छिपे हो, हम अपनी शान के विरुद्ध समझने लगे। इस प्रकार इस पाश्चात्य लहर के साथ-साथ हम बह गए। प्राचीन आदर्शों को सदैव के लिए नियति के गर्भ मे छोड़कर हम नवीनता के नूतन पथ की ओर अग्रसर हो गए।

यो तो आजकल भी विवाह के वैसे ही रीतिरिवाज चल रहे हैं पर उनके मूलभूत आदर्शों को भूल जाने से उनमें कुछ जान नहीं रही। वे सौन्दर्य व सुगन्ध से रहित पुष्प की तरह मलिन,

स्वाद तथा पोषक तत्त्व के अभाव में भोजन की तरह नीरस तथा आत्मा के बिना निर्जीव शरीर के समान निकम्मे हैं।

विषय-भोगों में ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य समझ कर हम पथ-भ्रष्ट होकर विपरीत दिशा की ओर अबाध गति से गमन कर रहे हैं। कहा नहीं जा सकता कि पाश्चात्य संस्कृति कहाँ तक भारतीयता को कायम रखकर लोगों के नैतिक स्तर को उन्नत कर सकती है। अभी तक के प्रयोग के अनुसार नैतिकता की दृष्टि से भारतीय नवयुवक अपनी मर्यादा को सीमित रखने में सर्वथा असमर्थ रहे पर निश्चित रूप से विवाह सम्बन्धी पाश्चात्य कायदे—कानून भारत में कभी सफल नहीं हो सकते।

अभी अधिकांश नवयुवक विवाह के महत्त्व को समझते भी नहीं। वे तो इसे दुर्विषयभोग का साधन मानते हैं। अगर कुछ समय के लिए मान भी लिया जाय कि विवाह का उद्देश्य विषय-भोग ही है तो क्या हम सोच सकते हैं कि विवाह प्रथा के अभाव में हमारा सामाजिक जीवन अधिक सुखी रह सकता है? यह कल्पना तो स्वप्न में भी सर्वथा असंभव है। ऐसी परिस्थिति में तो सर्वत्र अशान्ति तथा असन्तोष का साम्राज्य हो जायगा। मनुष्य स्वभावत अपने प्रेमी के प्रेम में अन्य पुरुषों का साझीदार होना सहन नहीं कर सकता। आज भी एक स्त्री के अनेक चाहने वाले तथा एक पुरुष को अनेक चाहने वाली स्त्रियों के मध्य में निरन्तर विद्वेषाग्नि प्रज्वलित रहती है। इस प्रकार विवाह प्रथा न होने पर मनुष्य उस दाम्पत्य प्रेम से सर्वथा वंचित रह जाता, जो विवाहित पति पत्नी में हुआ करता है। विवाह की प्रथा का स्थान यदि नैमित्तिक सम्बन्ध को ही प्राप्त होता, तो स्त्री-पुरुष एक दूसरे से उतने ही समय तक प्रेम करते जब तक कि विषयभोग नहीं भोगा जा चुका है या जब तक वे विषयभोग भोगने के लिए लालायित रहते हैं। उसके बाद उस प्रेम सम्बन्ध की समाप्ति हो जायगी।

ऐसी अवस्था में तो सामाजिक स्थिति के और भी बिगड़ने की सम्भावना है। स्त्रियों की परिस्थिति तो और भी विषम होगी। मनुष्य मात्र के स्वच्छन्द हो जाने पर सहानुभूति, दया व प्रेम का भी सद्भाव न होगा। मनुष्य का सुख कुछ निश्चित समय तक ही सीमित रहेगा और बाद का जीवन अत्यन्त पश्चात्तापपूर्ण, नीरस तथा दुखमय होगा। अपने उत्तरदायित्व से दोनों स्त्री-पुरुष बचने का प्रयत्न करते रहेंगे तो सन्तानो के पालन-पोषण की समस्या भी बहुत जटिल होगी। आज की सन्तानो पर ही तो कल का भविष्य निर्भर है। अत. सामाजिक अवस्था और भी खराब हो जायगी। कृत्रिम उपायों द्वारा संतति निरोध हुआ, भ्रूण हत्या या बाल-हत्या जैसी भयकर चेष्टाओं द्वारा समाज पशुता पर उतरने में भी सकोच नहीं करेगी। धीरे-धीरे प्रेम, अहिंसा, सहानुभूति, वात्सल्य आदि मानवोचित गुणों के लुप्त होने के साथ मानवता दानवता के रूप में परिवर्तित होने लग जाएगी।

६—विवाह का उद्देश्य

वास्तव में विवाह का उद्देश्य दुर्विषय भोग नही है किन्तु ब्रह्मचर्य पालन की कमजोरी को धीरे-धीरे मिटा कर ब्रह्मचर्य पालन की पूर्ण शक्ति प्राप्त करना तथा आदर्श गृहस्थी जीवन व्यतीत करना है। यदि कामवासना को शान्त करने की पूर्ण क्षमता विद्यमान हो तो विवाह करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं। जिस प्रकार यदि आग न लगने दी गई या लगने पर तत्क्षण बुझा दी गई तब तो दूसरा उपाय नहीं किया जाता और तत्क्षण न बुझा सकने पर और बढ़ जाने पर उसकी सीमा करके उसे बुझाने का प्रयत्न किया जाता है। इसके लिए जिस मकान मे आग लगी होती है, उस मकान से दूसरे मकानों का सम्बन्ध तोड़ दिया जाता है, ताकि उनमें

वह फैल न सके और इस प्रकार उसे सीमित करके फिर बुझाने का प्रयत्न किया जाता है। वह आग, जो लगने के समय ही न बुझाई जा सकी थी, इस उपाय से बुझा दी जाती है, बढने नहीं दी जाती। यदि आग को, सीमित न कर दिया जाय, तो उसके द्वारा अनेक मकान भस्म हो जाएँ। यही दृष्टान्त विवाह के सम्बन्ध में भी है। यदि मनुष्य मन पर नियन्त्रण रख कर उद्दीप्त काम-वासना पर नियन्त्रण रख सकता हो या उद्दीप्त होने ही न दे सकता हो तो उसे विवाह की कोई आवश्यकता नहीं। लेकिन उपयुक्त नियन्त्रण न रख सकने के कारण उस अग्नि को विवाह द्वारा सीमित कर दिया जाता है। इस प्रकार वासना की अग्नि बढने नहीं पाती तथा मनुष्य की शारीरिक व मानसिक शक्तियों का ह्रास होने से बच जाता है। यदि नियन्त्रण की क्षमता न हो और विषयेच्छा की पूर्ति में पूर्ण स्वतन्त्रता हो तो भयकर हानि की सम्भावना है। तात्पर्य यह है कि विवाह करने के पश्चात् भी विषयेच्छा को सीमित करने का प्रयत्न करना चाहिए तथा आदर्श गृहस्थ-जीवन व्यतीत कर हृदय की विशालता द्वारा अपने कर्त्तव्यपथ की ओर अग्रसर होते रहना चाहिए।

आदर्श-विवाहित जीवन व्यतीत करने में वात्सल्य अनुकम्पा, सहानुभूति, विश्वमैत्री आदि सद्गुणों का भी समुचित निर्वाह किया जा-सकता है। जिसका लाभ स्वच्छन्दता में नहीं होता। सतान के पालन-पोषण तथा उनके प्रति वात्सल्य गृहस्थ-जीवन मे ही हो सकता है जो कि विश्वमैत्री की ओर अग्रसर होने का प्रथम प्रयास होता है। अगर मनुष्य इतने सीमित क्षेत्र मे भी सफलता प्राप्त न कर सके तो उससे क्या आशा की जा सकती है कि वह और विस्तृत क्षेत्र में प्रवेश कर प्राणीमात्र के कल्याण-का प्रयत्न करेगा?

ब्रह्मचर्य न पाल सकने पर दुराचारपूर्ण जीवन श्लाघ्य नहीं हो सकता। इस विषय में गांधीजी लिखते हैं—

"यद्यपि महाशय ब्यूरो अखंड ब्रह्मचर्य को ही सर्वोत्तम मानते हैं लेकिन सबके लिए यह शक्य नही है, इसलिए वैसे लोगों के लिए विवाहबंधन केवल आवश्यक ही नही वरन् कर्तव्य के बराबर है।" गांधीजी आगे लिखते हैं —

"मनुष्य के सामाजिक जीवन का केन्द्र एक पत्नी व्रत तथा एक पतिव्रत ही हैं" यह तभी संभव है, जब स्वच्छन्दता निंद्य समझी जाए और उसे विवाह बंधन द्वारा त्यागा जाए।

विवाह, पुरुष व स्त्री के आजीवन सहचर्य का नाम है। यह सहचर्य कामवासना को सीमित कर आदर्श गृहस्थ-जीवन के निर्माण का साधन है। एक पाश्चात्य विद्वान् लिखता है: —

'विवाह करके भी, विषय-विलासमय असयमपूर्ण जीवन व्यतीत करना धार्मिक और नैतिक दोनो दृष्टियों से अक्षम्य अपराध है। असयम से वैवाहिक जीवन को ठेस पहुचती है। सतानोत्पत्ति के सिवाय और सभी प्रकार की कामवासना-तृप्ति दाम्पत्य प्रेम के लिए बाधक और समाज तथा व्यक्ति के लिए हानिकारक है।'

इस कथन द्वारा जैन शास्त्र तथा वैदिक सिद्धान्तो के कथन की पुष्टि की गई है। जैन शास्त्र तो इसके आद्य प्रेरक ही हैं।

विवाह तो तुम्हारा हुआ, पर देखना चाहिए कि तुम विवाह करके चतुर्भुज बने हो या चतुष्पद ? विवाह करके अगर बुरे काम में पड गए तो समझो कि चतुष्पद बने हो। अगर विवाह को भी तुमने धर्मसाधना का निमित्त बना लिया हो तो निस्सदेह तुम चतुर्भुज-जो ईश्वर का रूप माना जाता है, बने हो। इस बात के लिए सतत् प्रयत्न करना चाहिए कि मनुष्य चतुष्पद न बन कर चतुर्भुज-ईश्वररूप-बने और अन्तत उसमें एव ईश्वर में किंचित् भी भेद न रह जाय।

विवाह में जहां धन की प्रधानता होगी, वहा अनमेल विवाह हों, यह स्वाभाविक है। अनमेल विवाह करके दाम्पत्य जीवन मे

सुखशान्ति की आशा करना। ऐसा ही है, जैसे नीम बोकर आम के फल की आशा करना। ऐसे जीवन में प्रेम कहाँ? प्रेम को तो वहाँ पहले ही आग लगा दी जाती है।

प्राचीन काल मे, विवाह के सम्बन्ध में कन्या की भी सलाह ली जाती थी और अपने लिए वर खोजने की स्वतन्त्रता उसे प्राप्त थी। माता-पिता इस उद्देश्य से स्वयवर की रचना करते थे। अगर कन्या ब्रह्मचर्य पालन करना चाहती थी तो भी उसे अनुमति दी जाती थी। भगवान् ऋषभदेव की ब्राह्मी और सुन्दरी नामक दोनो कन्याएँ विवाह के योग्य हुईं। भगवान् उनके विवाह-सम्बन्ध का विचार करने लगे। दोनों कन्याओं ने भगवान् का विचार जाना तो कहा—'पिताजी, आप हमारी चिन्ता न कीजिए। आपकी पुत्री मिटकर दूसरे की पत्नी बनकर रहना हमसे न हो सकेगा।' अन्तत दोनों कन्याए आजीवन ब्रह्मचारिणी रही।

हाँ, विवाह न करके अनीति की राह पर चलना बुरा है पर ब्रह्मचर्य पालन करना बुरा नहीं है। ब्रह्मचारिणी रहकर कुमारिकाएँ जनसमाज की अधिक से अधिक और अच्छी से अच्छी सेवा कर सकती हैं।

बलात् ब्रह्मचर्य और बलात् विवाह दोनों बातें अनुचित हैं। दोनों स्वेच्छा और स्वसामर्थ्य पर निर्भर होनी चाहिए।

स्त्री और पुरुष के स्वभाव मे जहा समता नहीं होती वहा शांतिपूर्वक जीवन व्यवहार नहीं चल सकता। विवाह का उत्तर-दायित्व अगर माता-पिता अपना समझते हो तो प्रतिकूल स्वभाव वाले पुत्र पुत्री का विवाह उन्हे नही करना चाहिए। लोभ के वश होकर अपनी सतान का विक्रय करके, उनका जीवन दुःखमय बनाना माता पिता के लिए घोर कलक की बात है।

पुरुष मनचाहा व्यवहार करें, स्त्रियों पर अत्याचार करें, चाहे जितनी बार विवाह करने का अधिकार भोगे, यह सब

विवाह-प्रथा से विपरीत प्रवृत्तियाँ हैं। ऐसे कामो से विवाह की पवित्र प्रथा कलुषित हो गई है। विवाह का आदर्श भी कलुषित हो गया है। विवाह का वास्तविक आदर्श स्थापित करने के लिए पुरुषो को सयम-शील होना चाहिए।

आजकल धन एव आभूषणो के साथ विवाह किया जाता है। भारत के प्राचीन इतिहास को देखो तो पता चलेगा कि सीता, द्रौपदी आदि का स्वयवर हुआ था। उन्होंने अपने लिए आप ही वर पसद किया था। भगवान् नेमिनाथ तीन सौ वर्ष की उम्र तक कुमार रहे। क्या उन्हें कन्या नही मिलती थी ? पर उनकी स्वीकृति के बिना विवाह कैसे हो सकता था ? इसी कारण उनका विवाह नही हुआ। आजकल विवाह में कौन अपनी सतान की सलाह लेता है ?

गांधी जी भी लिखते हैं —

'विवाहबधन को पवित्रता को कायम रखने के लिए भोग नहीं, किन्तु आत्मसयम ही जीवन का धर्म समझा जाना चाहिए। विवाह का उद्देश्य दपत्ति के हृदयो से विकारों को दूर करके उन्हे ईश्वर के निकट ले जाना है।'

विवाह सस्कार द्वारा आजीवन साहचर्य ऐसे ही स्त्री-पुरुषों का सफल और उपयुक्त हो सकता है जो स्वभाव, गुण, आयु, बल, वैभव, कुल और सौन्दर्य आदि को दृष्टि मे रखकर एक दूसरे को पसन्द करें। स्त्री-पुरुष में से किसी एक की ही इच्छा से विवाह नहीं होता किन्तु दोनों की इच्छा से हुआ विवाह ही विवाह के अर्थ में माना जा सकता है। जबर्दस्ती केवल माता पिता की इच्छा से किया गया विवाह सफल गृहस्थ जीवन के लिए उचित नहीं हो सकता। अर्थ सम्बन्धी प्रश्न को सामने रखकर किया जाने वाला विवाह तो समाज के लिए और भी घातक सिद्ध होगा। इसमे समान गुण व समान धर्म व समान मनोवृत्तियों वाले साथियों का

मिलना दुर्लभ होगा, और निर्धन श्रेणी के पुरुषों के लिए यह बहुत जटिल समस्या हो जाएगी।

विवाह सम्बन्ध स्थापित करने में पुरुष और स्त्री के अधिकार समान ही होना उचित है। अर्थात् जिस प्रकार पुरुष स्त्री को पसन्द करना चाहता है उसी प्रकार स्त्री भी पुरुष को पसन्द करने की अधिकारिणी है। ऐसी अवस्था मे सामाजिक सन्तुलन ठीक रहेगा और पति-पत्नी के मध्य मैत्री-सम्बन्ध स्थापित होगा। बल्कि इस विषय में स्त्रियों के अधिकार पुरुषो से भी अधिक हैं। स्त्रियाँ अपने लिए वर चुनने के लिए स्वयवर करती थी यह कहा जा चुका है। पर पुरुषों ने अपने लिए स्त्री पसन्द करने को स्वयवर की ही तरह का कोई स्त्री-सम्मेलन किया । ऐसा प्रमाण कहीं नही मिलता। इस प्रकार पूर्वकाल मे स्त्री की पसन्दगी को विशेषता दी जाती थी। फिर भी यह आवश्यक न था कि जिस पुरुष को स्त्री चुने वह उसके साथ बिवाह करने को वाध्य किया जाय। स्त्री के पसन्द करने पर भी यदि पुरुष की इच्छा विवाह करने की नहीं होती तो विवाह करने से इन्कार करना कोई नैतिक या सामाजिक अपराध नहीं माना जाता था, न अब माना जाता है। विवाह के लिए स्त्री और पुरुष दोनों ही को समान अधिकार है। और यह नहीं है कि पसन्द आने के कारण पुरुष-स्त्री के साथ और स्त्री-पुरुष के साथ विवाह करने के लिए नीति या समाज की ओर से बाध्य हो। विवाह तभी हो सकता है जब स्त्री पुरुष एक दूसरे को पसन्द कर लें, और एक दूसरे के साथ विवाह करने के इच्छुक हों। इस विषय में जबर्दस्ती को जरा भी स्थान नहीं है।

ग्रन्थकारो ने, विशेषत तीन प्रकार के विवाह बताए हैं, देव-विवाह, गन्धर्व-विवाह और राक्षस-विवाह। ये तीनो विवाह इस प्रकार हैं:—

जो बिवाह, वर और कन्या दोनों की पसन्दगी से हुआ हो,

जिसमें वर ने वधू के और वधू ने वर के पूर्ण रूप से गुणदोष देखकर एक दूसरे ने, एक दूसरे को अपने उपयुक्त समझा हो तथा जिस विवाह के करने से वर और कन्या के माता-पिता आदि अभिभावक भी प्रसन्न हो, जो विवाह रूप, गुण स्वभाव आदि की समानता से विधि और साक्षीपूर्वक हुआ हो और जिस विवाह में दाम्पत्य कलह का भय न हो और जो विवाह विषयभोग के ही उद्देश्य से नही किन्तु विश्वमैत्री के आदर्श तक पहुचने के लक्ष्य से किया गया हो उसे देव-विवाह कहते हैं। यही विवाह सर्वोत्तम माना जाता है।

जिस विवाह मे वर ने कन्या को और कन्या ने वर को पसन्द कर लिया हो, एक दूसरे पर मुग्ध हो गए हो, किन्तु माता-पिता आदि अभिभावक की स्वीकृति के विना ही, एक ने दूसरे को स्वीकार कर लिया हो एव जिसमे देश प्रचलित विवाह विधि पूरी न की गई हो उसे गान्धर्व विवाह कहते हैं। यह विवाह देव-विवाह की अपेक्षा मध्यम और राक्षस विवाह की अपेक्षा अच्छा माना जाता है।

राक्षस-विवाह उसे कहते है जिसमे वर और कन्या एक दूसरे को समान रूप से न चाहते हो किन्तु एक ही व्यक्ति दूसरे को चाहता हो, जिसमे समानता का ध्यान न रखा गया हो, जो किसी एक की इच्छा और दूसरे की अनिच्छा पूर्वक जवर्दस्ती या अभिभावक की स्वार्थलोलुपता मे हुआ हो और जिसमे देश प्रचलित उत्तम विवाह विधि को ठुकराया गया हो तथा वैवाहिक नियम भग किए गए हो। यह विवाह उक्त दोनों विवाहो मे निकृष्ट माना जाता है।

पहले वताया जा चुका है कि कम मे कम आयु का चौथा भाग यानी पच्चीस और सोलह वर्ष की अवस्था तक के पुरुष स्त्री को अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करना ही चाहिए। यह अवस्था

सफल गृहस्थ जीवन के लिए शरीर और मन को पूर्ण विकसित करने की है। इससे पूर्व मनुष्य की शारीरिक व मानसिक शक्तियों को बल नही मिलता।

बाल विवाह के कुपरिणामों से भारतवर्ष अपरिचित नहीं। उससे शारीरिक शक्तियो के ह्रास होने के सिवाय स्त्रियो की स्थिति में भी बहुत फर्क पड़ता है। विधवाओं की बढती हुई सख्या इसी का परिणाम है। कमजोर व अधिक सताने कई विषम परिस्थितियां उत्पन्न कर देती हैं। शिक्षण तथा पोषण की समुचित व्यवस्था न होने से वे राष्ट्र की सपत्ति होने के बजाय भारभूत ही सिद्ध होती हैं। पूर्ण परिपक्व अवस्था को प्राप्त होने पर ही पुत्र पुत्रियों का विवाह करना उचित है।

७—प्राचीनकालीन विवाह

विवाह का मुख्य उद्देश्य आदर्श गृहस्थी-जीवन व्यतीत कर अपने हृदय की विशालता द्वारा विश्वमैत्री के सिद्धान्त तक पहुंचना था। केवल विषय-भोग की पूर्ति के लिए विवाह नही होते थे। केवल सतानोत्पत्ति के लिए ही रति क्रिया करने का विधान था। पशुओ के समान निरन्तर वासना के कीडे बने रहना भारतीय संस्कृति के सर्वथा विपरीत था।

वेद के मन्त्रों में, जहां सन्तानोत्पति का प्रसग है, स्पष्ट लिखा है कि सन्तान शत वर्ष तक जीने वाली, हृष्ट-पुष्ट तथा बुद्धिशाली हो। उत्तम विचारो वाली तथा माता-पिता से भी बुद्धि-बल में बढ़ी-चढ़ी हो। सतति सुधार के विचारों का प्रचार तो यूरोप में अभी हुआ है। किन्तु हजारों वर्ष पहिले जब यूरोप 'पाषण' व 'कोयला' युग के दिन गिन रहा था, भारत वर्ष की सभ्यता तथा सस्कृति अपनी पवित्रता, बल एव बुद्धि के कारण विश्वमैत्री के सिद्धान्त का पालन करने का दावा करती थी।

संतति सुधार के विज्ञान का प्रचार उस समय भी था। वेद के प्रत्येक सूक्त में इस विषय का विचार भरा पड़ा है। कहा गया है कि—

"त माता दशमासान् बिभर्तु स जायतां वीर तमः स्वानाम्

अर्थात् दस मास पश्चात् जो पुत्र हो अपने सब सम्बन्धियों की अपेक्षा अधिक वीर हो।

वेद सन्तानों की अधिक संख्या को महत्त्व नहीं देते थे। अधिक सन्तान उत्पन्न करने वाले माता-पिता ही पूजनीय न थे पर गुणों को अधिक महत्त्व दिया जाता था। एक ही सन्तान हो पर अपूर्व तेजस्वी तथा बलशाली।

इस प्रकार वैदिक आदर्श विवाह कोई साधारण कार्य नहीं था उसके अनुसार पति-पत्नी पर अपने-अपने कर्त्तव्य पूर्ण करने का उत्तरदायित्व था।

विवाह करके पति-पत्नी विशालता को प्राप्त होते हैं। महानता के गुण लेकर स्वार्थ की परिधि का उल्लंघन कर पदार्थ के समीप पहुंचने का प्रयत्न करते हैं। जगत् की मंगलकामना के प्रयत्न में वह अपनी समस्त शक्ति और बल लगाने को उद्यत हो जाते हैं। तन—मन—धन से मानवता के कल्याण का प्रयत्न करना ही उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य है।

इसी आदर्श की तरफ ले जाने में गृहस्थ—जीवन की सफलता है। यदि इस आदर्श तक न पहुंच सके तो गृहस्थ—जीवन सर्वथा असफल है। विषय—वासना को त्याग कर संयममय जीवन व्यतीत करते हुए दूसरों के स्वार्थ को अपना स्वार्थ समझना तथा गृहस्थ—जीवन से भी ऊँचे उठकर इस आश्रम को त्याग देना ही गृहस्थ—जीवन का उद्देश्य है यह जीवन के महान् उद्देश्य तक पहुंचने का साधन माना गया है, जीवन का अन्तिम लक्ष्य नहीं।

इसी आदर्श को पूर्ण रूप से समझने में गृहस्थ-जीवन की सफलता है। प्राचीन सभी राजा कुछ समय तक विषय-भोग भोग कर वृद्धावस्था में पुत्र को राज्य देकर मुनि बन जाते थे। इक्ष्वाकु वंश में यही प्रथा थी कि राजागण राजकार्य पुत्र के हवाले कर वनवास करते थे। जैन शास्त्रों मे भी इसी प्रकार के उल्लेख आते हैं। प्राय. सभी राजा युवावस्था मे राज-सुख तथा गृहस्थ-जीवन व्यतीत करने के बाद वृद्धावस्था मे मुनि हो जाते थे। अन्तिम समय तक विषय-भोग में ही पडे रह कर गृहस्थ-जीवन ही मे रहना बहुत ही कायरता का चिह्न तथा निंदनीय समझा जाता था।

अन्तिम समय में सब घरेलू झगडो को छोड़ कर शान्ति-पूण सयममय जीवन व्यतीत किया जाता था। मुनि वृत्ति धारण कर पूर्ण ब्रह्मचर्य से जीवन को उत्तरोत्तर पवित्रता की ओर अग्रसर करना ही उस समय के जीवन का लक्ष्य था। जैन मुनि ज्ञान प्राप्त कर लोगों को सच्चा मार्ग प्रदर्शन करते थे। पूर्ण अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि के प्रयोग से अनुपम सिद्धि प्राप्त करने का उनका उद्देश्य होता था। १०—१२ परिवार के सदस्यों के बदले प्राणिमात्र उनका कुटुम्ब हो जाता था।

८—प्रेम-विवाह

अब जरा पाश्चात्य विवाह सम्बन्ध पर भी एक दृष्टि डालिए। आजकल भारतवर्ष में पाश्चात्य प्रभाव से प्रेम-विवाह अथवा Love Marriage सामाजिक जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है। आजकल के अंग्रेजी शिक्षित नवयुवक व नवयुवतियां प्राचीन भारतीय विवाहों को एक ढकोसला मात्र समझते हैं तथा

प्रेम-विवाह पर जोर देते हैं। उनका कथन है कि माता पिता द्वारा वर अथवा वधू की खोज किया जाना अनुचित है। यह तो पति-पत्नी के जीवन का प्रश्न है, जो जैसा चाहे वैसा साथी चुन सकता है। सम्भव है कि माता-पिता अपनी कन्या के लिए अपनी दृष्टि से अच्छा वर चुनें पर वह कन्या को किन्ही कारणो से पसन्द न हो, क्योंकि "भिन्न रुचिर्हि लोक" के कथनानुसार विश्व मे रुचि वैचित्र्य भी हो सकता है। अत कन्या को पूर्ण अधिकार होना चाहिए कि वह अपने पति का चुनाव कर सके। इसी प्रकार पुत्र को ही यह पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वह अपने अनुकूल पत्नी का चुनाव कर सुखपूर्ण दाम्पत्य जीवन व्यतीत कर सके।

इस प्रकार की वैवाहिक स्वतन्त्रता को 'प्रेम-विवाह' कहा जाता है। यह हमारे प्राचीन वैवाहिक वर्गीकरण में गन्धर्व-विवाह के समान है।

यह प्रश्न आजकल बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार की वैवाहिक व्यवस्था चाहे पहली दृष्टि में सुन्दर तथा व्यवहारिक मालूम पड़े पर क्रियात्मक रूप से इसका प्रयोग असफल ही रहता है। प्रायः कॉलेज के विद्यार्थी नवयुवक तथा नवयुवतियाँ प्रेम-विवाह के अधिक पक्षपाती होते हैं। यह प्रयोग उन्हे अधिक रुचिकर प्रतीत होता है। पर प्रेम-विवाह मे विवाहित स्त्री-पुरुष समाज तथा राष्ट्र के प्रति वैवाहिक आदर्श की पूर्णता के लिए असमर्थ रहे।

वास्तव में जहाँ स्त्री-पुरुष अपने-अपने कर्त्तव्य के प्रति पूर्ण रूप से सजग रहे वहा प्रेम-विवाह का प्रश्न ही नहीं उठता। पर जब वासना तृप्ति ही विवाह का उद्देश्य होता है उसी अवस्था में प्रेम-विवाह की ओर दृष्टिपात किया जाता है। मनुष्य अगर अपने वैवाहिक आदर्श तथा कर्त्तव्य को समझकर विवाह करता है तथा

उसके अनुसार आचरण करने के लिए प्रयत्नशील रहता है तो कोई भी जीवन साथी उसे अप्रिय तथा अरुचिकर नहीं लग सकता। अलबत्ता कुछ मानवोचित गुणो का होना अपेक्षणीय है। हम प्रेम-विवाह के सम्बन्ध मे आज तक के प्रयोग के आधार पर विचार करते हैं और वह भी भारतवर्ष की दृष्टि से। अन्य देशों की सामाजिक व धार्मिक परिस्थितियो से भारतीय मनोवृत्ति मे बहुत भिन्नता है। निश्चयात्मक रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि वहाँ के प्रयोग भारतवर्ष मे भी सफल हो सकते हैं।

आजकल शिक्षित नवयुवक तथा नवयुवतियाँ यौवन के वासनात्मक प्रवाह मे अंधे होकर बहते हुए प्रेम-विवाह की शरण लेते हैं। उस समय उनका दृष्टिकोण आदर्शात्मक न होकर ऐन्द्रिय सुखात्मक ही होता है। ऐसे प्रवाह मे बहते हुए न तो कभी ऐसे योग्य जीवन साथी का चुनाव होता है, जो जीवन मे आदर्श बनकर कर्त्तव्य क्षेत्र की ओर अग्रसर कर सके और न ऐसे जीवन पथ का निर्माण होता है जिसके द्वारा वे अपने लक्ष्य तक पहुच सकें। अशांत तथा अनिर्दिष्ट पथ में वे अपने जीवन के वास्तविक आनन्द का उपयोग भी नही कर सकते।

अकसर प्रेम-विवाह का प्रेम बरसाती नाले के सदृश होता है, जो प्रारम्भ में अपनी पूर्णता के कारण बडी-बडी महत्वाकांक्षाओं को जन्म देता है पर धीरे-धीरे आश्चर्यजनक गतिविधि से कम होता हुआ शून्यता को प्राप्त हो जाता है। अपने कर्त्तव्य की ओर निरन्तर जागरूक रहने से कभी ऐसी परिस्थिति उत्पन्न नहीं हो सकती। भारतीय आदर्श के अनुसार तो वास्तविक प्रेम पति-पत्नी में निरतर वृद्धि को प्राप्त होता रहना चाहिए। विवाह मे मुख्य वस्तु तो आदर्श प्राप्ति है। अगर उसका अस्तित्व है तो चाहे वह प्रेम-विवाह हो अथवा प्राचीन भारतीय विवाह, एक ही वस्तु है। नाम मात्र की भिन्नता होने से किसी वस्तु के प्रभाव व

परिणाम में भिन्नता नहीं होती। वर्तमान समय मे प्रेम विवाह के परिणाम छिपे नही। प्रेम-विवाह के पश्चात् तलाक प्रथा भी आवश्यक हो जाती है। फलतः भारतवर्ष मे इस तरह के विवाह तो एक तरह के खिलवाड-से हैं अधिकांश भारतीय शिक्षिता स्त्रियां, जिनमें कुछ तो राजनैतिक तथा सामाजिक क्षेत्र मे अभिनेत्रिया भी हैं, पहले प्रेम-विवाह कर बाद मे अपने पतिदेव को तलाक देकर ही अपने जीवन को सुखी बनाती हैं।

इस प्रकार गृहस्थ-जीवन अपने आदर्श को पूर्ण रूप से समझने व आचरण करने में ही है। पति-पत्नी अगर दोनो ही अपने कर्त्तव्य को समझ कर आचरण करें, तभी जीवन सुखी हो सकता है, क्योकि किसी एक की भी कमजोरी के कारण जीवन दुखमय हो सकता है।

सफल गृहस्थी के लिए युवक व युवतियों का आपस मे सच्चा प्रेम करना सबसे महत्वपूर्ण वस्तु समझी जाती है। उसी दृष्टि से प्रेम-विवाह का प्रयोग किया जाने लगा पर वह अपने प्रयोग में असफल ही सिद्ध हुआ। युवक किसी सुयोग्य युवती को ढूढने तथा युवतियां प्रेमियों को अपने प्रेमपाश मे बाधने के लिए अपने जीवन का बहुमूल्य अश नष्ट कर देते हैं। क्योंकि उसमें वैषयिक सुखभोग का दृष्टिकोण प्रधान रहता है अत जीवन के उद्देश्य मे सफलता नही मिलती। अपने कर्त्तव्य की ओर किसी का लक्ष्य नहीं रहता। किसी भी अवस्था में इन परिस्थितियो मे न विषयसुख प्राप्त हो सकता है और न लक्ष्य प्राप्ति। केवल प्रियतम व्यक्ति के साथ सम्मिलन को ही विवाहित जीवन की सफलता मानना भयकर भूल है। मनुष्य इतना समझने में क्यो गलती करते हैं कि कुछ समय के लिए वैषयिक सुख देने वाला ही विश्व में प्रियतम नहीं हो सकता? प्रियतम होने के लिए अन्य बहुत वस्तुए शेष रहती हैं। अपनी आत्माओं को एक दूसरे में लय कर देना

तो बहुत दूर की बात है, दैनिक जीवन तो कम से कम शान्तिपूर्ण तथा सुखपूर्ण होना ही चाहिए।

१—बाल-विवाह

२५ और १६ वर्ष की अवस्था होने पर ही, पुरुष और स्त्री इस बात के निर्णय पर पहुचते हैं कि हम आयु भर ब्रह्मचर्य पालन कर सकते हैं या नहीं ? अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार करने की शक्ति हम मे है या नहीं ? जो लोग ऐसा करने में समर्थ होते हैं, वे तो पूर्ण ब्रह्मचर्य की ही आराधना करते हैं, विवाह के झंझटो में नहीं फसते, जैसे भीष्म पितामह। लेकिन, जो लोग संसार में रहते हुए पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने में अपने आपको असमर्थ समझते हैं वे विवाह करते हैं। जैन शास्त्रों में तो पूर्ण ब्रह्मचर्य के ही लिए कहा गया है, विवाह के लिए नहीं, लेकिन नीतिकारों ने ब्रह्मचर्यव्रत पालन करने में असमर्थ लोगों के लिए विवाह का विधान नियत किया है और विवाह न करके दुराचार में प्रवृत्त होने का तो अत्यन्त निषेध किया है।

विवाह योग्य अवस्था लडके की २० या २५ वर्ष और लडकी की १६ वर्ष है। लेकिन आधुनिक समय के विवाहों मे, पूर्ण वर्णित इन विवाहों की अवहेलना की जाती है। यद्यपि पुरुष-स्त्री विवाह बन्धन मे तभी बध सकते हैं, जब वे आजीवन ब्रह्मचर्य पालन की अपनी अशक्तता अनुभव कर ले, लेकिन आज के विवाहों में ऐसे अनुभव के लिए समय ही नहीं आने दिया जाता। सिर्फ जैन समाज में ही नही, पर भारत की सभी जातियों में पुरुष और स्त्री युवक युवती होने से पूर्व ही विवाहित कर दिये जाते हैं। अधिकांश बालक-बालिकाओ के माता-पिता अपने बच्चों का विवाह ऐसी अवस्था में कर देते हैं, जबकि वे बालक विवाह की आव-

एकदम, उसकी जवाबदारी और उसका भार समझने के अयोग्य ही नही पर उससे अनभिज्ञ ही होते हैं। यह अवस्था बालक-बालिकाओं के खेलने-कूदने योग्य है पर माता-पिता बच्चों का खेल देखने के साथ ही विवाह का खेल भी देखने की लालसा में, अपने नन्हें बच्चो का भविष्य नष्ट कर देते हैं।

अभागे भारत मे, ऐसे-ऐसे बालक-बालिकाओ के विवाह सुने जाते हैं जिनकी अवस्था एक वर्ष से भी कम होती है। अपने बालक या बालिका को दुल्हे या दुल्हिन के रूप मे देखने के लिए लालायित मां-बाप अपनी जवाबदारी और संतान की भावी उन्नति सब को बाल-विवाह की अग्नि में भस्म कर देते हैं। किन्तु यह सर्वथा अनुचित है। ऐसे माता-पिता अपने कर्त्तव्य को भुलाकर बालक और बालिकाओं के प्रति अन्याय करते हैं। अपने क्षणिक सुख के लिए अपने बालको को भोग की धधकती हुई ज्वाला में भस्म होने के लिए छोड़ देते हैं और अपनी संतान को उसमें जलते हुए देखकर भी आप खड़े-खड़े हंसते हैं। तथा यह अवसर देखने को मिला इसके लिए अपना अहोभाग्य समझते हैं। किन्तु माता-पिताओं के लिए यह सर्वथा अनुचित है। उनका कर्त्तव्य अपनी संतान को सुख देना है, दुःख देना नही।

आजकल अधिकांश लोगो को यह भी पता नही है कि हमारा विवाह कब, किस प्रकार और किस विधि से हुआ था? तथा विवाह के समय हमें कौनसी प्रतिज्ञाए करनी पड़ी थी? और पता हो भी कैसे, क्योंकि उनका विवाह तो मा की गोद मे बैठे-बैठे हो गया था और विवाह तथा वधू किस चिड़िया का नाम है, वे यह भी नहीं जानते थे। वर घोड़ा निकलने पर घोड़े पर और मण्डप के नीचे उन्हें देवमूर्तियों की तरह बैठा दिया गया था और भांवरों (फेरों) के वक्त वे आराम से नाई और नायन की गोदी में सो रहे होंगे और जब फेरे फिराये जाते होंगे तब वे

अपने पावों से नहीं पर नाई और नायन के ही पावों से चलती होगी। ऐसी दशा में वे विवाह की बातें क्या समझें ?

एक समय की बात है। किसी जगह शादी हो रही थी। कन्या और वर दोनो ही अल्पवयस्क थे। रात के समय, जब कि फेरे फिरने थे, कन्या मण्डप में ही सो गई थी। माँ ने उसे जगाया और कहा—उठ बेटी, तेरी शादी हो रही है। कन्या शादी का अर्थ जानती ही न थी। माँ के जगाने पर उसने कहा—'मा, मुझे तो नींद आती है। तू ही अपनी शादी कर ले।' कहकर वह सो गई और आखिर में नींद मे उसका विवाह हो गया !

अब बताइये कि जो बालक-बालिका शादी-विवाह का नाम तक नहीं जानते, वे विवाह सम्बन्धी नियमो का पालन किस प्रकार कर सकेंगे ? उन्हें जब अपने विवाह का ही पता नहीं है तब वे विवाह-विषयक प्रतिज्ञाओं को क्या जानें और कैसे उनका पालन करें ? इस प्रकार ऐसी अबोध अवस्था में किया गया विवाह अन्याय है।

जमाई-बहू के लालची मा-बाप और माल-ताल के भूखे बराती, बालक और बालिका रूपी छोटे-छोटे बछड़ों को सासारिक जीवन की गाडी में जोत कर आप उस गाडी पर सवार हो जाते हैं। अर्थात् सासारिक जीवन का बोझ उन पर डाल देते हैं। अपनी स्वार्थमय भावना के वशीभूत होकर लोग बाल-विवाह विरोधी बातों की उपेक्षा करते हैं, उपहास करते हैं, यद्यपि वह बाल-विवाह अपनी प्रसन्नता के लिए व सन्तान को सुखी बनाने के लिए करते हैं लेकिन कभी-कभी उसका परिणाम बहुत बुरा होता है। जिसे वे हर्ष का कारण समझते हैं वही शोक का कारण और जिसे सन्तान को दुखी बनाने का उपाय भी हो जाता है। कुछ लोग इस बात को समझते जरूर हैं पर सामाजिक नियम से विवश होकर या देखा-देखी, बाल-विवाह के घोर पातकमय कार्य मे प्रवृत्त होते हैं

और सामाजिक नियम तथा अनुकरण करने वाली कुबुद्धि से असली बुद्धि को विवाह करने तक के वास्ते दूर खदेड देते हैं।

नाती-पोते देखकर अपने जीवन को सुखी मानने वाले लोग अपनी सन्तान का विवाह बाल्यावस्था मे ही करके सतोष नहीं करते, किन्तु विवाह के समय ही या कुछ ही दिन पश्चात् अबोध पति-पत्नी को, उनका उज्ज्वल और सुखमय भविष्य काला और दुखमय बनाने के लिए एक कोठरी में बन्द भी कर देते हैं। प्रारम्भ मे ही ऐसे सस्कार डाले जाने के कारण वे बालक बालिका अपने माता-पिता की पोते-पोती विषयक लालसा पूरी करने के लिए दुर्विषय-भोग के अथाह सागर मे अशक्त होते हुए भी, कूद पड़ते हैं।

कुछ लोगों ने, बाल-विवाह की पुष्टि के लिए धर्म की भी ओट ले रखी है। बाल-विवाह न करना, धार्मिक दृष्टि से भी अपराध बतलाया गया है। लेकिन जो लोग, बाल-विवाह को धार्मिक रूप देते हैं, उन्हीं के ग्रन्थो में लिखा है:—

अज्ञातपतिमर्यादाम ज्ञातपतिसेवनाम्।
नोद्वाहयेत् पिता बालामज्ञाता धर्मशासनम्॥

— हेमाद्रि

अर्थात् पिता ऐसी कम अवस्था वाली कन्या का विवाह कदापि न करे, जो पति की मर्यादा, पति की सेवा और धर्म शासन को न जानती हो।

बाल-विवाह न करने को धार्मिक अपराध बताने वाले लोग, 'अष्टवर्षा भवेद् गौरी' आदि का जो पाठ प्रमाण स्वरूप बताते हैं, अनेक शास्त्रों के प्रमाणो से, वह प्रक्षिप्त ठहरता है। जान पडता है यह पाठ उस समय बनाया गया था जब कि भारत में मुसलमानों का जोर था और वे लोग स्त्रियों और विशेषत. अविवाहित कुमारियों का बलात् अपहरण करते थे। मुसलमानों से स्त्रियों की

रक्षा करने के लिए ही सभवत' यह पाठ बनाया गया था, क्योंकि मुसलमान लोग विवाहित स्त्रियों की अपेक्षा अविवाहित स्त्रियो का अपहरण अधिक करते थे। इसलिए विवाह हो जाने पर स्त्रिया इस भय से बहुत कुछ मुक्त समझी जाती थी।

यद्यपि, मुसलमानी काल मे बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित अवश्य हो गई थी, लेकिन आजकल की तरह, अल्पवयस्क पति-पत्नी का विवाह-समय में ही सहवास नही कराया जाता था। सहवास का समय विवाह समय से भिन्न होता था जिसे गौना कहा करते थे और जिसके न होने तक कन्या को प्राय सुसराल में नही लाया जाता था। आज मुसलमानी काल की-सी स्थिति न होने पर भी, बाल-विवाह प्रचलित है और सहवास की भी कोई निश्चित व्यवस्था नहीं है।

तात्पर्य यह कि बाल-विवाह किसी भी धर्म के शास्त्रों में उचित या आवश्यक नहीं बताया गया है, किन्तु ऐसे विवाहों का निषेध ही किया गया है।

बाल विवाह और समय से पूर्व के दाम्पत्य सहवास से शारीरिक विकास रुक जाता है। सौन्दर्य, उत्साह, प्रसन्नता और अगों की शक्ति घट जाती है। आयुर्बल भी कम हो जाता है। रोग-शोक घेरे रहते हैं। असमय मे ही दात गिर जाते हैं, बाल पकने लगते हैं। आंखो की ज्योति क्षीण हो जाती है और थोड़े ही दिनो मे पुरुष नपुसक और स्त्री स्त्रीत्व रहित हो जाती है। इस प्रकार पति-पत्नी का जीवन दुःखमय हो जाता है।

आयुर्वेद मे बताया गया है कि यदि सोलह वर्ष से कम अवस्था वाली स्त्री में २५ वर्ष से कम अवस्था वाला पुरुष गर्भाधान करे तो वह गर्भ उदर में ही नष्ट हो जाता है। यदि उस गर्भ से सन्तान उत्पन्न भी हुई तो जीवित नहीं रहती है और यदि जीवित रही भी तो अत्यन्त दुर्बल अग वाली होती है। इसलिए

कम आयु वाली स्त्री में कभी गर्भाधान न करना चाहिए।

इस प्रकार संतान के लिए भी बाल-विवाह घातक है। इंगलैंड में मनुष्य की औसत आयु ५१ वर्ष और बाल मरण प्रति सहस्र ७५ है, लेकिन भारत में मनुष्यों की औसत आयु केवल २३ वर्ष और बाल-मरण प्रति सहस्र १९४ है। इस महान् अन्तर का कारण यही है कि इंगलैंड मे बाल-विवाह की घातक प्रथा नहीं है। लेकिन भारत मे, इस प्रथा ने अधिकाश लोगो के हृदय में अपना घर बना लिया है। पौत्रादि के इच्छुक लोग, अपने बालक बालिका का विवाह करते तो हैं पोते-पोती के सुख की अभिलाषा से, लेकिन असमय में ही उत्पन्न संतान मृत्यु के मुख में जाकर, ऐसे लोगों को और विलाप करने के लिए छोड जाती है। अपने माता-पिता को अशक्त बना जाती है। तथा इस प्रकार से उन्हे अपने दुष्कृत्यों का दण्ड दे जाती है। इसी घातक प्रथा के कारण अनेक स्त्रिया प्रसवकाल में ही परलोक को प्रस्थान कर जाती हैं या सदा के लिए रोगग्रस्त हो जाती हैं और फिर रोगी संतान उत्पन्न करके भावी संतति के लिए कांटे बिछा जाती हैं।

बाल-विवाह के विषय में गांधी जी लिखते हैं, कि हिन्दुस्तान के अलावा और किसी भी देश में बचपन से ही विवाह की बातें बालकों को नहीं सुनाई जातीं। यहा तो माता-पिता की एक ही इच्छा रहती है कि लड़के का विवाह कर देना। इससे असमय में ही बुद्धि और शरीर का ह्रास होता है। हम लोगो का जन्म भी प्राय. बचपन के ब्याहे माता-पिता से हुआ है। हमे ऐसा लोकमत बनाने की जरूरत है, कि जिसमें बाल विवाह असम्भव हो जावे। हमारी अस्थिरता, कठिन और अविरतश्रम से अनिच्छा, शारीरिक अयोग्यता, शान से शुरू किए गए कामों को अधूरा छोड देना और मौलिकता का अभाव इत्यादि, इन सबके मूल मे मुख्यतः हमारा अत्यधिक वीर्यनाश ही है।

गांधी जी आगे और भी लिखते हैं—'जो माँ-बाप अपने बच्चों की सगाई बचपन मे ही कर देते हैं, वे उन बच्चो को बेचकर घातक बनते हैं। अपने बच्चो का लाभ देखने के बदले वे अपना ही अन्धस्वार्थ देखते हैं। उन्हें तो आप बड़ा बनना है, अपनी जाति-बिरादरी में नाम कमाना है, लड़कों का ब्याह करके तमाशा देखना है। लड़के का हित देखें तो उसका पढ़ना-लिखना देखें, उसका जतन करें उसका शरीर बनावें। घर-गृहस्थी की खटखट में डाल देने से बढ़कर उसका दूसरा कौनसा अहित हो सकता है ?

यदि यह कहा जाए कि धार्मिकता की दृष्टि से बचपन में विवाह किया जाता है मगर सहवास नहीं होता तो यह कथन पहले तो सर्वथा नहीं तो बहुत अश मे गलत है। क्योंकि, प्रायः विवाह के समय मे ही सहवास होना सुना जाता है। कदाचित् विवाह-समय सहवास न होता हो तो बचपन मे विवाह किस दृष्टि से किया जाता है ? ऐसे विवाह प्रत्यक्ष ही हानिप्रद हैं। बचपन मे ब्याहे गए पति-पत्नी की अवस्था मे विशेष अन्तर नही होता। जिस समय कन्या युवती मानी जाती है उस समय उसका पति युवावस्था में पदार्पण भी नही कर पाता। बहू युवती है, इस लोक-लाज के भय से, माता-पिता की दृष्टि मे, अपने अल्पवयस्क पुत्र के लिए स्त्री-सहवास आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार उस हानि से बचा नहीं जा सकता, जो बाल-विवाह से होती है। इसके सिवाय, बचपन मे विवाहे गये पति-पत्नी कैसे स्वभाव के होंगे, उनके रूप, गुण, शारीरिक, मानसिक विकास, शक्ति आदि मे कैसी विषमता होगी, इसे कोई नही जान सकता। पति-पत्नी मे विषमता होने से, उनका जीवन भी क्लेशमय हो जाता है।

बचपन में विवाह होने से विधवाओं की संख्या भी बढ़ती जाती है। समाज में चार-चार, छः-छः और आठ-आठ वर्ष की

विधवाए दिखाई देना, बाल-विवाह का ही कटुफल है। चेचक आदि की बीमारी से बालक-पति की तो मृत्यु हो जाती है और बालिका पत्नी वैधव्य भोगने के लिए रह जाती है। जिस पति से, उस अबोध बालिका ने कोई सुख नहीं पाया है, हृदय में जिसकी स्मृति का कोई साधन नहीं है, उस पति के नाम पर, एक बालिका से वैधव्य पालन कराने का कारण बाल-विवाह ही है। ऐसी बाल-विधवा अपनी वैधव्यावस्था किस सहारे से व्यतीत कर सकेगी, यह देखने की कोई आवश्यकता भी नहीं समझता।

तात्पर्य यह है कि सहवास न होने पर भी बाल-विवाह हानिप्रद ही है। विवाह हो जाने पर बालक पति-पत्नी ज्ञान और विद्या से भी बहुत कुछ पिछड़े रह जाते हैं तथा एक दूसरे के स्मरण से वीर्य में दोष पैदा हो जाता है। इसलिए बाल-विवाह त्याज्य है।

विवाह शक्ति प्राप्त करने के लिए किया जाता है। शक्ति के लिए मङ्गलवाद्य बजवाए जाते हैं। शक्ति के लिये ज्योतिषी से ग्रहादिक का सुयोग पूछा जाता है। शक्ति के लिए सुहागिनों का आशीष लिया जाता है। परन्तु जहा अशक्ति के लिए यह सब काम किए जाते हो वहां के लोगों को क्या कहा जाय? जो अशक्ति के स्वागत-सत्कार के लिए यह सब समारोह करता हो उस मूर्ख को किस पदवी से अलकृत किया जाय?

बाल-विवाह करना अशक्ति का स्वागत करना है। इससे शक्ति का नाश होता है। अतएव कोई भाई जैन श्रावक हो, वैष्णव गृहस्थ हो अथवा और कोई हो सबका कर्त्तव्य है कि अपनी सतानों के लिए, संतानो की रक्षा के लिए इस घातक प्रथा का त्याग करदें। इसका मूलोच्छेद करके सन्तान का और सतान के द्वारा समाज एव राष्ट्र का मगल साधन करें।

आप मंगल के लिए बाजे बजवाते हैं, मंगल के लिए ही

सुहागिनें आशीष देती हैं, मगल के लिए ज्योतिर्विद से शुभ मूहूर्त निकलवाते हैं, पर यह स्मरण रखिए कि जब यह सब मगल अमगल के लिए किए जाते हैं तब ये किसी काम में नहीं आते। इन सब मगलो से भी बाल-विवाह से होने वाले अमगल दूर नहीं हो सकते। छोटी-कच्ची उम्र में बालक-बालिका का विवाह करना अमगल है। ऐसा विवाह भविष्य मे हाहाकार मचाने वाला है। ऐसा विवाह त्राहि, त्राहि की आवाज से आकाश को गुञ्जाने वाला है। ऐसा विवाह देश में दुख का दावानल दहकाने वाला है। इस प्रकार के विवाह से देश की जीवन शक्ति का ह्रास हो रहा है। वह शारीरिक शक्ति की न्यूनता उत्पन्न कर रहा है। विविध प्रकार की व्याधियों को जन्म दे रहा है। अतएव अब सावधान हो जाओ। अगर ससार की भलाई करने योग्य उदारता आपके दिल मे नहीं आई हो तो कम से कम अपनी सतान का अनिष्ट मत करो। उसके भविष्य को घोर अधकार से आवृत मत करो। जिसे तुमने जीवन दिया है उसका सर्वनाश मत करो अपनी सतान की रक्षा करो।

यह बालक दुनिया के रक्षक बनने वाले हैं। इन पर दाम्पत्य का पहाड मत पटको। बेचारे पिस जाएगे।

बालक निसर्ग का सुन्दरतम उपहार है। इस उपहार को लापरवाही से मत रौंदो।

मित्रों! किसी रथ में दो छोटे-छोटे बछडों को जोत दिया जाय और उस रथ पर १०–१२ स्थूलकाय आदमी बैठ जाए तो जोतने वाले को आप दयावान् कहेंगे या निर्दय ?

'निर्दय!'

तब छोटे-छोटे बच्चो को गृहस्थी-रूपी गाड़ी में जोतकर उन पर संसार का बोझ लादने वालो को आप निर्दय न कहेंगे ?

भारतीय शास्त्र छोटी उम्र में बालकों के विवाह करने का

निषेध करते हैं। बालक की उम्र २५ वर्ष और बालिका की उम्र सोलह वर्ष की निर्धारित की गई है। इतने समय तक बालक-बालिका सज्ञा रहती है। अगर आप लोगो को यह बहुत कठिन जान पड़े तो अठारह से पहले बालक और चौदह से पहले बालिका का विवाह कदापि न करें। जिस राज्य मे योग्य बालक-बालिका का विवाह होता है उसी राज्य के राजा और मत्री प्रशसा के योग्य हैं। जहा प्रजा इसके विपरित आचरण करती हो वहा के वीर राजा और प्रजावत्सल मत्री को चाहिए कि वे अपने राज्य की जड को खोखला बनाने वाले आचरणो पर तीव्र प्रतिबन्ध लगा दें।

बाल-विवाह की भयानक प्रथा का अगर जनता स्वयमेव त्याग नही करती है तब उसका एक ही उपाय रह जाता है कि वहां का राज्य अपनी सत्ता से कानून का निर्माण करे और दुराग्रहशील व्यक्तियो को दुराग्रह से छुडावे। मनुष्य की आयु का ह्रास करने में बाल-विवाह भी एक प्रधान कारण है। अमेरिका, जर्मनी और जापान आदि में १२५ वर्ष की आयु के हट्टे-कट्टे तन्दुरुस्त पुरुष मिल सकते हैं, वहा भारतवर्ष का यह कैसा अभाग्य है ?

१०—बेजोड़-विवाह

बेजोड़-विवाह भी पूर्वकाल की विवाह-प्रथा और आज की विवाह प्रथा की भिन्नता बताता है। यद्यपि विवाह मे वर और कन्या की पूर्व वर्णित समानता देखना आवश्यक है, लेकिन आज के अधिकाश विवाहों मे इस बात का ध्यान बहुत कम रखा जाता है आज के बेजोड विवाहो को देखकर यदि यह कहा जावे कि वर या कन्या के साथ नही किन्तु धन, वैभव या कुल के साथ विवाह

होता है तो अत्युक्ति नहीं होगी। यद्यपि ससार का प्रत्येक प्राणी अपनी समानता वाले को ही अधिक पसन्द करता है और विवाह के लिए तो विशेष कर यह बात बहुत ध्यान मे रखने योग्य है लेकिन आजकल के बहुत से विवाह ऊट और बैल की जोडी से होते हैं। ऐसे विवाह, विशेषत धन या कुल के कारण ही होते हैं। अर्थात् या तो धन के लोभ से बेजोड-विवाह किया जाता है या कुल के लोभ से। बेजोड-विवाह मे धन का लोभ दो प्रकार का होता है। एक तो यह कि लडके या लडकी की ससुराल धनवान होगी इसलिए बडी अवस्था वाली कन्या के साथ छोटी अवस्था वाले पुरुष का या छोटी अवस्था वाली कन्या के साथ बड़ी अवस्था वाले पुरुष का विवाह कर दिया जाता है। दूसरे कन्या या वर के बदले में द्रव्य प्राप्त होगा, इसलिए भी ऐसे विवाह कर दिये जाते हैं। इसी प्रकार कुल के लिए भी बेजोड विवाह कर दिये जाते हैं, अर्थात् हमारी लडकी या हमारे लडके की ससुराल इस प्रकार की घरानेदार या कुलवान् होगी, ऐसा सोच कर भी बेजोड-विवाह कर दिये जाते हैं।

कई माता-पिता लोभ के वशीभूत होकर अपनी संतान का हिताहित नही देखते और उसका विवाह ऐसे वर या ऐसी कन्या के साथ कर देते हैं जो बेजोड और एक दूसरे की अभिरुचि के प्रतिकूल होते हैं। कई माता-पिता, अपनी अबोध कन्या को वृद्ध तक के गले मढ़ देते हैं।

विशेषत वे धन के लिए ही ऐसा करते हैं। यानी कन्या के बदले में धन लेने के लिए। द्रव्य लालसा के आगे वे इस बात को विचारने की भी आवश्यकता नही समझते कि इन दोनो में परस्पर मेल रहेगा या नही? तथा हमारी कन्या कितने दिन की सुहागिन रह सकेगी? उन्हे तो केवल द्रव्य से काम रहता है, उनकी तरफ से कन्या की चाहे जैसी दुर्दशा क्यों न हो?

विवाह और पत्नी के इच्छुक वृद्ध भी यह नही देखते कि मैं तरुणी के योग्य हूं या नही, और यह तरुणी मुझे पसन्द करेगी या नहीं ? विद्वानो का कथन है—

वृद्धस्य तरुणी विषम् ।

वृद्ध के लिए तरुणी विष के समान है। इसी प्रकार तरुणी को वृद्ध, विष के समान बुरा लगता है । जब पति-पत्नी एक दूसरे को विष के समान बुरे लगते हों तब उनका जीवन सुखमय कैसे बीत सकता है ? लेकिन इस बात पर न तो धन लोभी माता-पिता ही विचार करते हैं, न स्त्री-लोभी वृद्ध और न भोजन-लोभी पञ्च ही । केवल धन के बल से एक वृद्ध उस तरुणी पर अधिकार कर लेता है, जिसका अधिकार एक युवक हो सकता था और इस प्रकार माता-पिता की धनलोलुपता से एक तरुणी को अपना जीवन वृद्ध के हवाले कर देना पड़ता है, जिस जीवन को वह किसी युवक के साथ बिता देने की अभिलाषा रखती थी । वृद्ध विवाह के विषय मे गुलिश्तां मे गाई हुई कहानी इस स्थान पर उपयुक्त होने से दी जाती है ।

एक वृद्ध अमीर की स्त्री का देहान्त हो गया । अमीर के दोस्तो ने अमीर मे दूसरा विवाह करने के लिए कहा । अमीर ने उत्तर दिया कि मैं किसी बुड्ढी स्त्री के साथ विवाह नहीं कर सकता, मुझे बुड्ढी स्त्री पसद नही । दोस्तो ने उत्तर दिया, कि आपको बुड्ढी स्त्री के साथ विवाह करने के लिए कौन कहता है ? आप तरुणी के साथ विवाह कीजिए । हम आपके लिए एक तरुणी को तलाश कर देंगे । दोस्तों की बात सुनकर अमीर ने कहा—यह आप लोगो की महरबानी है, लेकिन मैं पूछता हूं कि जब मुझ बुड्ढे को बुड्ढी स्त्री पसद नहीं है तो क्या वह तरुणी स्त्री मुझ बुड्ढे को पसद करेगी ? यदि नहीं तो फिर जबरदस्ती से क्या लाभ ? अमीर की बात सुनकर, दोस्तों को शर्मिन्दा होना

पड़ा और उन्होंने अमीर के विवाह की बात छोड़ दी।

वृद्ध पुरुष के साथ तरुण स्त्री के विवाह के समान ही, धन या कुल के लोभ से बालक पुरुष के साथ तरुणी, या तरुण पुरुष के साथ बालिका भी ब्याह दी जाती है। ये समस्त विवाह बेजोड़ हैं ऐसे विवाह समाज मे भयकर हानि करने वाले, भावी सतति का जीवन दु खप्रद बनाने वाले और पारलौकिक जीवन को कटकाकीर्ण बनाने वाले हैं।

बेजोड-विवाह से होने वाली समस्त हानियों का वर्णन करना शक्ति से परे की बात है। बेजोड-विवाह से कुल की हानि होती है। विधवाओं की सख्या बढती है, जिससे व्यभिचार वृद्धि के साथ ही आत्महत्या, भ्रूणहत्या आदि होती रहती है और अत में अनेक विधवाए वेश्या बनकर अपना जीवन घृणित रीति से बिताने लगती हैं। बेजोड पति-पत्नी से उत्पन्न सन्तान भी अशक्त, अल्पायुषी और दुर्गुणी होती है।

जैन शास्त्रों में ऐसा एक भी प्रमाण नहीं मिलता जो बेजोड़-विवाह का पोषक हो। अन्य ग्रन्थो में भी बेजोड़-विवाह का निषेध किया गया है। जैसे—

कन्यां यच्छति वृद्धाय नीचाय धनलिप्सया।
कुरूपाय कुशीलाय स प्रेतो जायते नरः॥

—स्कन्द पुराण

'जो पिता अपनी कन्या वृद्ध, नीच, धन के लोभी, कुरूप और कुशील पुरुष को देता है वह प्रेत योनि में जन्म लेता है।'

अल्पेनापि शुल्केन पिता कन्यां ददाति य।
रौरवे बहू वर्षाणि पुरीष मूत्रमश्नुते॥

—आपस्तम्ब स्मृति

'कन्या देकर बदले में, थोडा भी धन लेने वाला पिता बहुत समय तक रौरव नरक में निवास करके विष्ठा और मूत्र

खाता पीता रहता है।'

आधुनिक अनमेल–विवाह प्रथा की, और भी बहुत समालोचना की जा सकती है। लेकिन विस्तारभय से ऐसा नहीं किया गया है। यहा तो संक्षेप मे केवल यह बताया गया है कि आजकल की विवाह प्रथा पहले की विवाह प्रथा से बिलकुल भिन्न है और इस भिन्नता से अनेक हानियाँ हैं।

११—विवाह और अपव्यय

अधिकाश आधुनिक विवाहो मे अपव्यय भी सीमातीत होता है। आतीशबाजी, नाच, मुजरे, बाजे और ज्ञाति-भोजनादि मे इतना अधिक द्रव्य उडाया जाता है कि इतने द्रव्य से सैकडों-हजारों लोग, वर्षों तक पल सकते है। धनिक लोग अपव्यय द्वारा, गरीबों के जीवन-मार्ग में काँटे बिछा देते हैं। धनिकों के आडम्बरपूर्ण विवाह को आदर्श मानकर, अनेक गरीब भी कर्ज लेकर विवाह का आडम्बर करते हैं और धनियो द्वारा स्थापित इस आदर्श की कृपा से अपने जीवन को चिरकाल के लिए दुखी बना लेते हैं। विवाह के अपव्यय में धन की हानि नहीं होती, किन्तु कभी-कभी जन की भी हानि हो जाती है। बहुत से लोग, खाने-पीने की अनियमितता से बीमार होकर मर जाते है। कई युवक विवाह में आई हुई वेश्याओं के ही शिकार बन जाते है। इस प्रकार आजकल की पद्धति द्वारा अपना ही सर्वनाश नहीं किया जाता किन्तु दूसरो के सर्वनाश का कारण भी उत्पन्न किया जाता है।

आजकल समाज के सन्मुख विधवा-विवाह, का जो प्रश्न उपस्थित है, उसके मूल कारण बाल-विवाह बेजोड़ विवाह और विवाह की सर्वोन्नी पद्धति ही है। बाल विवाह और बेजोड-विवाह के कारण एक ओर तो विधवाओं की सख्या बढ जाती है और दूसरी

और बहुत से पुरुष अविवाहित रह जाते हैं। इसी प्रकार विवाह की खर्चीली पद्धति के कारण भी अनेक गरीब परन्तु योग्य युवक अविवाहित रह जाते हैं। क्योंकि उनके पास वैवाहिक आडम्बर करने को द्रव्य नहीं होता। यदि बाल-विवाह और बेजोड-विवाह बन्द हो जावें, विवाहों में अधिक खर्च न हुआ करे तो विधवाओ और अविवाहित पुरुषों की बढी हुई सख्या न रहने पर सम्भवत. विधवा-विवाह का प्रश्न आप ही हल हो जावे। सारांश यह है कि पूर्व समय मे, विवाह तब किया जाता था, जब पति-पत्नी, सर्व-विरति-ब्रह्मचर्य पालने में अपने को असमर्थ मानते थे। अर्थात् विवाह कोई आवश्यक कार्य नहीं माना जाता था, लेकिन आज-कल विवाह एक आवश्यक-कार्य माना जाता है। जीवन की सफलता विवाह में ही समझी जाती है। जब तक लड़के-लडकी का विवाह न हो जावे, तब तक वे दुर्भागी समझे जाते हैं। इसी कारण आवश्यकता और अनुभव के बिना ही विवाह कर दिया जाता है और वह भी बेजोड तथा हजारो-लाखों रुपये व्यय कर के धूमधाम के साथ। पूर्व समय की विवाह प्रथा समाज मे शाति रखती थी, समाज को दुराचार से बचाती थी। और अच्छी सन्तान उत्पन्न करके, समाज का हित साधन करती थी। आजकल की विवाह-प्रथा इसके विपरित कार्य करती है। बाल विवाह, बेजोड विवाह और विवाह की खर्चीली पद्धति, समाज में अशांति उत्पन्न करती है, लोगों को दुराचार में प्रवृत्त करती है और रुग्ण एव अल्पायुषी सतान द्वारा समाज का अहित करती है।

वैवाहिक विषय के वर्णन पर से कोई यह कह सकता है कि साधुओं को इन सासारिक बातों मे क्या? और वे ऐसी बातों के विषय में उपदेश क्यो दें? इसका उत्तर यही है कि यद्यपि इन सासारिक बातों से साधु लोग परे हैं लेकिन साधुओ का धार्मिक जीवन नीति-पूर्ण ससार पर ही अवलम्बित है। यदि ससार मे सर्वत्र

अनीति छा जावे, तो धार्मिक जीवन के लिए स्थान भी नहीं रह जाता है। इसी दृष्टिकोण से विवाह की विधि बताने के लिए ही शास्त्रों की कथाओं में, विवाह-बन्धन मे जुडने वाले स्त्री-पुरुष की समानता आदि का वर्णन किया है। यह बात दूसरी है कि उनमें बाल-विवाह, असमय के सहवास आदि का निषेध नही है। लेकिन उस समय यह कुप्रथाए थी ही नही, इसलिए इस प्रकार के उपदेश की आवश्यकता न थी। अन्यथा, पूर्ण ब्रह्मचर्य का ही विधान करने वाले होने पर भी, जैन शास्त्र ऐसे अपूर्ण नहीं हैं कि उनमें संसारिक जीवन की विधि पर कथाओं द्वारा प्रकाश न डाला गया हो। 'सरिसवया' 'सरिस-तया' आदि पाठ इसी बात के द्योतक हैं कि विवाह समान युवावस्था में होता था।

विवाह में जहा धन की प्रधानता होगी वहां अनमेल-विवाह हों यह स्वाभाविक है। अनमेल विवाह करके दाम्पत्य जीवन में सुख-शान्ति की आशा करना ऐसा ही है जैसे नीम बोकर आम के फल की आशा करना।

आजकल की इस देश की दुर्दशा मे भी भारत के साठ-साठ-वर्ष के बूढे विवाह करने के लिए तैयार हो जाते हैं। बूढों की इस वासना ने देश को उजाड़ डाला है। आज विधवाओ की सख्या बढ गई है और कितनी बढ़ती जाती है यह किसे नही मालूम? आप थोकड़ों पर थोकडे गिन लेते हो पर कभी इन विधवाओ की भी गिनती आपने की है? कभी आपने यह चिन्ता भी की है कि इन विधवा बहिनों का निर्वाह किस प्रकार होता है?

ऐ भीष्म की सन्तानों! भीष्म ने तो आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करके दुनिया के कानों में ब्रह्मचर्य का पावन मन्त्र फूका था। आज उन्हीं की सन्तान कहलाते हुए उन्हीं के मन्त्र को क्यों भूल रहे हो?

लग्न के समय वर वधू अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं। पति के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करने के पश्चात् सच्ची आर्य महिला अपने प्राणो का उत्सर्ग कर देती है, पर की हुई प्रतिज्ञा से विमुख नहीं होती।

पुरुष भी पत्नी के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं, परन्तु जो कर्तव्य स्त्री का माना जाता है वही क्या पुरुष का भी समझा जाता है?

जैसे सदाचारिणी स्त्री परपुरुष को पिता एव भाई समझती है, उसी प्रकार सदाचारी पुरुष भी वही है जो परस्त्री को माता, बहिन की दृष्टि से देखे। 'पर ती लखी जे धरती निरखें, धनि है धनि है धनि हैं नर ते।'

'पुरुष का पाणिग्रहण धर्मपालन के लिए किया जाता है उसी प्रकार स्त्री का भी। जो नर या नारी इस उद्देश्य को भूलकर खान-पान और भोग विलास में ही अपने जीवन की इतिश्री समझते हैं, वे धर्म के पति-पत्नी नही, वरन् पाप के पति-पत्नी हैं।

विवाह होने पर पति-पत्नी प्रेम बन्धन मे जुड जाते हैं। मगर उनके प्रेम में भी भिन्नता देखी जाती। किसी-किसी मे विवाह करने पर भी स्वार्थपूर्ण प्रेम होता है और किसी-किसी मे निस्वार्थ प्रेम भी रहता है। जिन दम्पति मे स्वार्थपूर्ण प्रेम होगा उनकी दृष्टि एक दूसरे की सुन्दरता पर रहेगी और किसी कारण सुन्दरता में कमी होने पर वह प्रेम दूर हो जायगा। परन्तु जिनमें निस्वार्थ प्रेम है, उनमे अगर पति रोगी या कुरूप अथवा कोढी होगा तो भी पत्नी का प्रेम कम नही होगा। श्रीपाल को कोढ़ हो गया था। फिर भी उसकी पत्नी ने पति प्रेम में किसी प्रकार की कमी नही की। तात्पर्य यह है कि जिस प्रेम मे किसी भी कारण से न्यूनता आ जाय, वह निस्वार्थ प्रेम नहीं है, वह स्वार्थपूर्ण और दिखावटी प्रेम है।

५—दाम्पत्य

जो समाज का उचित निर्माण और उत्थान करने का इच्छुक है उसे स्त्री स्वातन्त्र्य, प्रेममय जीवन और मातृत्व का गौरव महिलाओं को प्रदान करने की अत्यन्त आवश्यकता है। समाज अपने इस अभिन्न अंग की उपेक्षा कर अधिक समय तक उचित रीति से अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकता है। स्वयं पुरुष एक प्रेममयी नारी के अभाव में अपूर्ण है। वह अपने व्यक्तित्व का निर्माण भी पूर्ण रूप से, नहीं कर सकता। समस्त जीवन में उसे एक ऐसा अभाव खटकता सा रहेगा जिसकी पूर्ति अन्य किसी वस्तु के द्वारा नहीं की जा सकती। समाज की जागृति के प्रत्येक कदम में सफलता प्राप्त करने के लिए स्त्रियों को अधिक से अधिक सुविधाएँ दी जानी चाहिए जिससे वे एक स्वतन्त्र और सच्चे नारी-जीवन का निर्माण कर सकें।

आज नारी पुरुषों की समता के लिए, अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए लड़ रही है। उनकी अज्ञानता ने पुरुषों में यह भावना उत्पन्न कर दी है कि वे महिलाओं से श्रेष्ठ हैं। उनके स्वामित्व का अधिकार उन्हें जन्म से ईश्वरीय देन है। स्त्री शारीरिक व मानसिक दृष्टि से निर्बल है अतः पुरुष उसकी रक्षा कर उसके प्रति महान् उपकार करता है। वह जन्म भर उससे उपकृत एक दासी है।

यद्यपि अपने क्षेत्र में स्त्री को सफलता प्राप्त करने के लिए प्रेममय गृहस्थ जीवन निर्माण का प्रयत्न करना चाहिए, पर प्रत्येक क्षेत्र में, यहाँ तक कि धूम्रपान और मदिरापान में भी पुरुष का

अन्धानुसरण करना अपनी उच्छृंखलता बढाना ही है। अपने अधिकारों का दुरुपयोग करना समाज-निर्माण के लिए उपयुक्त नही। अपने कर्त्तव्य को विस्मरण करना जीवन में निराशाओ को उत्पन्न करने के सिवा और कुछ नही। जिस रूप में स्त्री ने अपने जागरण का स्वर उठाया था वह उपयुक्त नहीं रहा। उन्होंने जो शिक्षा प्राप्त की थी उसका भी वे उचित उपयोग नही कर सकीं। उससे नारी की असली स्वतन्त्रता बढने के बजाय घटने की ही अधिक सम्भावना है। वह अपनी शिक्षा, प्रतिभा और कर्त्तव्य को पूर्ण रूप से भूली जा रही है।

परिणाम स्वरूप महिलाओ की स्वतन्त्र प्रतिभा और उसके व्यक्तित्व का प्रकाश क्षीण होता जा रहा है। प्रत्येक सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में स्थान पा जाने पर भी वे असन्तुष्ट-सी रहीं। गृहस्थ-जीवन को इसने पूर्ण नष्ट-सा कर दिया। बहुत-सी शिक्षिता स्त्रियां तो अपने दाम्पत्य और मातृत्व जीवन को भी समाप्त कर जीवन में एक अतृप्ति का भाव लेकर समय व्यतीत करती हैं। नारी भी असन्तुष्ट और पुरुष भी असन्तुष्ट। यह असन्तोष भी तब तक दूर नहीं होगा जब तक इन सब बातों का निर्णय न हो जाय कि हमेशा स्त्री-पुरुष को साथ रहना है। एक साथ ही ससार के सुखो के साधनों को जुटाना है। एकत्र रहकर ही सृष्टि करनी है, विकास करना है। दोनो के हृदयों मे अधिकार की हाय-हाय की अपेक्षा एक दूसरे के प्रति आत्मसमर्पण की भावना हो। परस्पर प्रेम, सहानुभूति और कर्त्तव्य का भाव प्रधान हो। विश्व मे मानव की सृष्टि ही तो इसी आधार पर हुई है। इसमे बाधाए उपस्थित करने से हर गृह में अशांति पैदा हो जाती है। इसी प्रकार स्त्री का जीवन तभी सुखी और सन्तोषमय रह सकता है जब कि वह आत्मसमर्पण मे ही जीवन के सुख को खोजे। उसी से पूर्ण आनन्द का अनुभव करे। पुरुष के लिए भी यही बात है।

नारी का तो सारा जीवन ही त्यागमय है। समर्पण करने मे ही उसे सुख है। इसी मे तो उसके मातृत्व का, पुरुष की जननी होने का अधिकार, गौरव है। यही तो उसकी उन्नति की परम सीमा है। इसी जगह तो नारी वह है कि जिसकी बराबरी पुरुष भी नही कर सका और न कर सकेगा।

इसीलिए आजकल जो प्रतिद्वन्द्विता एव मुकाबिले का भाव समाज मे स्त्री-पुरुषो के बीच चल रहा है, समाज को भारी हानि पहुचा रहा है और वह भी विशेषकर स्त्रियों को। वह यह कि कोई भी काम, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, पर पुरुष करता है तो स्त्रिया भी क्यो न करें? नारियों के मन मे आजकल कुछ ऐसी भावना घर कर गई है कि पुरुष जाति स्वार्थमय हो गई है, हमारे साथ बेवफाई कर रही है। और हमने तो सदा त्याग किया है, ममतावश होकर सदा पुरुष की हम गुलामी करती रही हैं पर उसका पुरस्कार आज यह है कि हम दुतकारी जा रही हैं। अत अब क्यो इनकी परवाह करें? कब तक सेवा करती रहे? और फिर किसलिए? उस त्याग को छोड कर क्यों न उनकी ही कोटि में आ जाए? और उसी भावना का फल है कि आजकल की अधिकार प्रिय स्त्रियाँ अपने उस प्राचीन गौरव को आख उठा-कर देखना भी नहीं पसन्द करती।

आज उनकी आखें पूर्ण रूप से पुरुष जाति की ओर लगी हुई हैं कि वह कौन सा काम कब कर रही है कि हम भी वही करने लग जाय! पुरुष की पूरी नकल करने मे ही वे अपने जीवन की सार्थकता समझने लगी हैं।

उन्हें ऐसा विश्वास हो गया है कि उन्हें पति के प्रति प्रेम नहीं और इसलिए उनका मन असन्तुष्ट व अतृप्त है। फल-स्वरूप ईर्ष्यावश वह पति की प्रत्येक गति विधि पर दृष्टि रखने में ही सारा समय बर्बाद करने लगी है। पुरुष ने दूसरा ध्यान

पूरी तरह से अपनी ओर खीच लिया है। अत वह अपने व्यक्तित्व की ओर लक्ष्य नही रखती। निरन्तर पुरुष की प्रत्येक हलचल से उपेक्षा टपकती हुई-सी समझकर कुढती रहती है। सोचती रहती है कि वे तो आराम ने निद्वन्द्व होकर भ्रमण करते रहते हैं फिर मैं दासी बनी कब तक उनकी गुलामी किया करू ?

इसके विपरित जो उच्च विचारों की स्त्रिया हैं वे पति की अकर्मण्यता और पति के पतन से मार्ग च्युत न होकर अपने कर्तव्य का ध्यान रखती हैं। वे अपने मन मे यह भावना बनाए रखने का प्रयत्न करती रहती हैं कि मेरा धर्म तो सिर्फ अपनी पवित्रता को कायम रखने मे है और मेरा कार्य पति के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करना है। इससे नारी की आत्मा का विकास होता है और वे इस त्याग, सेवा और कर्त्तव्य पालन के द्वारा पतन की ओर अग्रसर होते हुए पति को भी कभी पश्चात्ताप करने को बाध्य कर देती हैं। इस प्रकार अपनी वफादारी और कर्तव्यशीलता के द्वारा आनन्दरहित गृह को भी आनन्द और उल्लास की तरगों मे प्रवाहित कर देती हैं। वे पति को और उसके साथ-साथ अपने को भी ऊँचा उठाती हैं। गृह जीवन में सुख व शाति बढ़ाती हुई पति पत्नी के टूटते हुए सम्बन्ध को जोड लेती हैं।

दूसरी ओर समाज मे बढती हुई खीचातानी का शिकार होकर स्त्रिया अत्यन्त दुखी और अतृप्त रहती हैं। उनका हृदय दुख से भरा रहता है और आत्मा तडपती रहती है। क्योकि आजकल स्त्रियो की माग एव उनके अधिकारो के नाम पर समाज मे जो जहर फैलाया जा रहा है उसने पुरुष एव स्त्री के सम्बन्ध को मधुर एव दृढ बनाने की अपेक्षा और भी स्नेहहीन, नीरस, और निकम्मा बना दिया है। एक दूसरे के मतभेद को मिटाने की जगह आपस के मनोमालिन्य की खाई को और भी गहरा कर दिया है। नारियो की उठती हुई आत्मा को गिरा दिया है।

उनका विकास रोक दिया है ।

आजकल की सभ्यता हमें अधिकार प्राप्त करने का पाठ तो पढाती रहती है पर उस अधिकार के साथ जो महान् जिम्मेदारियों का बोझा बन्धा हुआ है उसे वहन करने का सबक नहीं सिखाती । और जिस प्रकार आग और पानी का मेल नहीं हो सकता उसी तरह स्त्रियो के अधिकार और शक्ति चाहने पर यह नहीं हो सकता कि उसके लिए होने वाली कठिनाया न सहें और त्याग करने को तैयार न रहें । प्राचीन भारतीय नारियो को गृह मे जो अखण्ड अधिकार मिला था वह कष्ट सहन एव कठिनाइयों और बाधाओ के बीच में भी सुख और शाति का अनुभव करते हुए पूर्ण सन्तुष्ट रहने पर ही मिला था ।

१—नारी का कार्यक्षेत्र

नारी का कार्यक्षेत्र गृह मे ही है । उनके गृह जीवन में ही ससार के महापुरुषों का जीवन छिपा हुआ है । गृहो मे प्राप्त होने वाली शिक्षा एव सस्कार ही महान् पुरुषो का जीवन निर्माण करते हैं, पर आज की इस घरेलू चखचख ने गृह जीवन की नीव को ही कमजोर बना दिया है । अतएव उसमें से जीवन प्राप्त करने वाला नवयुवक कमजोर, रूखे स्वभाव वाला और कठिनाइयो मे शीघ्र ही निराश हो जाने वाला हो गया है । वह बातें अधिक करता है पर कार्य कम करता है। हर एक से लेने की इच्छा अधिक करता है पर देना किसी को भी नही चाहता । पर यह उसका दोष नहीं । उसका दुर्भाग्य है कि जिस माता का दूध पीकर वह शक्ति प्राप्त करता था, जिस माता के आदर्श चरित्र का अवलोकन कर वह एक महापुरुष बनता था, आज उस माता का उस पर से हाथ हटता जा रहा है । वह उसी मां का ओज था । बल्कि आज

भी भारतीय गृहों मे जो थोडा बहुत सौन्दर्य या सुघड़ता है वह उन बहनों-बेटियों व माताओ का प्रताप है कि जिनका चरित्र, जिनका सेवाभाव, सभाओं-सोसायटियों में नहीं जाहिर होता बल्कि संतति का जीवन बनकर सामने आता है।

नारियों का सच्चा स्थान गृह ही है। उन्हीं के प्रयत्न से टूटते हुए गृह व दाम्पत्य जीवन का उद्धार सभव है। समाज के निर्माण में उत्तम गृहों का होना मुख्य है।

२—आदर्श दम्पति

उच्च दाम्पत्य जीवन का बहुत श्रेष्ठ आदर्श प्राचीन काल में राम और सीता ने उपस्थित किया था जो हिन्दू समाज के लिए सदैव अनुकरणीय रहा और है।

सच्चा पति वही है जो पत्नी को पवित्र बनाता है और सच्ची पत्नी वही है जो पति को पवित्र बनाती है। सक्षेप मे जो अपने दाम्पत्य जीवन को पवित्र बनाते हैं, वही सच्चे पति-पत्नी हैं।

जो पुरुष परधन और परस्त्री से सदैव बचता रहता है उसका कोई कुछ नहीं बिगाड सकता। स्त्रियो के लिए पतिव्रत धर्म है तो पुरुषों के लिए पत्नीव्रत धर्म है।

जो पुरुष पत्नी को गुलाम बनाता है वह स्वय गुलाम बन जाता है और जो पुरुष पत्नी को देवी बनाता है वह स्वयं देव बन जाता है।

पुरुष चाहते हैं कि स्त्रिया पतिव्रता धर्म का पालन करें परन्तु उन्हें क्या पत्नीव्रत धर्म का पालन नही करना चाहिए? पतिव्रत पत्नी के लिए और पत्नीव्रत पति के लिए कल्याणकारी है। पतिव्रत का महात्म्य कितना और कैसा है, यह बतलाने के

लिए अनेक उदाहरण मौजूद हैं। पतिव्रत के प्रभाव से सीता के लिए अग्नि भी ठण्डी हो गई थी। सीता ने पतिव्रत धर्म का पालन करने के लिए कितने अधिक कष्ट सहन किये थे? वह चाहती तो राम और कौशल्या का आग्रह मानकर घर में आराम से बैठी रह सकती थी और कष्टो से बच सकती थी मगर पतिव्रत धर्म का पालन करने के लिए उसने कष्ट सहन ही स्वीकार किया।

सीता के चरित्र को किस प्रकार देखना चाहिए, यह बात कवि ने बतलाई है। वह कहता—'पति ही व्रत-नियम है' ऐसा व्रत वही स्त्री लेती है जिसके अन्तःकरण मे पति के प्रति पूर्ण प्रेम होता है। कोई भी काम तभी होता है जब उसके प्रति प्रेम हो। धर्म का आचरण भी प्रेम से किया जाता है। आपका प्रेम कच्चा है या सच्चा, यह परीक्षा करना हो तो पतिव्रता के प्रेम के साथ अपने प्रेम की तुलना करके देखो। भक्ति के विषय मे पतिव्रता का उदाहरण भी दिया जाता है। पतिव्रताओ मे भी सीता सरीखी पतिव्रता दूसरी शायद ही हुई हो। सीता ने उच्च आचरण करके सतीशिरोमणि की पदवी पाई है। सीता सरीखी दो-चार सतियां अगर ससार मे हों तो ससार का उद्धार हो जाय। कहावत है—'एक सती और नगर सारा।' सुभद्रा अकेली थी पर उसने क्या कर दिखाया था? उसने सारे नगर का दुख दूर कर दिया था।

सब स्त्रिया सीता नहीं बन सकती। इससे कोई यह नतीजा न निकाले कि जब सीता सरीखी बनना कठिन है तो फिर उस ओर प्रयत्न ही क्यों किया जाय? जहा पहुच ही नही सकते, वहां पहुचने का प्रयत्न क्यों किया जाय? जहा पहुच ही नही सकते वहा पहुचने के लिए दो-चार कदम बढ़ाने की भी क्या आवश्यकता है? ऐसा विचार करने से लाभ के बदले हानि ही होगी। आप खाते हैं, पीते हैं, पहनते हैं, ओढते हैं। मगर आपसे अच्छा खाने-पीने पहनने-ओढ़ने वाले भी हैं या नहीं? फिर आप क्या यह

सब करना छोड़ देते हैं ? अक्षर मोती जैसे लिखना चाहिए, मगर वैसा न लिख सकने वाला क्या अक्षर लिखना छोड देता है ? इसी तरह सीता-सी सती बनना अगर है तो क्या सतीत्व ही छोड देना उचित है ? सीता की समता न करने पर भी सती बनने का उद्योग छोडना नही चाहिए। निरन्तर अभ्यास करने व सीता का आदर्श सामने रखने से कभी सीता के समान हो जाना सम्भव है।

सती, स्त्रियो में ऊची तो होती ही है, लेकिन नीच स्त्री कैसी होती है, यह भी कवि ने बताया है। कवि कहता है—खाने-पीने और पहनने-ओढ़ने के समय 'प्राणनाथ'-'प्राणनाथ' करने वाली और समय पड़ने पर विपरीत आचरण करने वाली स्त्री नीच कहलाती है ऊपर से पतिव्रता का दिखावा करना और भीतर कुछ और रखना नीचता है। इस प्रकार की नीचता का कभी न कभी भण्डाफोड़ हो ही जाता है। कदाचित् न भी हो तो उसे उसके कर्म अपना फल देने से कभी नही चूकते। नीच स्त्रिया भीतर-बाहर कितनी भिन्नता रखती हैं, यह बात एक कहानी द्वारा समझाई जाती है —

२—मायाविनी पत्नी

एक ठाकुर था। वह अपनी स्त्री की अपने मित्रो के सामने बहुत प्रशसा किया करता था। वह कहा करता था—ससार मे सती स्त्रिया तो और भी मिल सकती हैं पर मेरी जैसी सती स्त्री दूसरी नहीं है ? कभी-कभी वह सीता, अजना आदि से अपनी स्त्री की तुलना किया करता और उसे उनसे भी श्रेष्ठ बतलाता। उसके मित्रो में कोई सच्चे समालोचक भी थे।

एक बार एक समालोचक ने कहा—ठाकुर साहब ! आप भोले हैं और स्त्री के चरित्र को जानते नहीं हैं। इसी से ऐसा कहते

हैं। त्रिया-चरित्र को समझ लेना साधारण बात नही है।

ठाकुर ने अपना भोलापन नहीं समझा। वह अपनी पत्नी का बखान करता ही रहा। तब उस समालोचक ने कहा—कभी आपने परीक्षा की है या नहीं ?

ठाकुर—परीक्षा करने की आवश्यकता ही नहीं है। मेरी स्त्री मुझसे इतना प्रेम करती है, जितना मछली पानी से प्रेम करती है। जैसे मछली पानी के बिना जीवित नही रह सकती उसी प्रकार मेरी स्त्री मेरे बिना जीवित नही रह सकती।

समालोचक—आपकी बातो से जाहिर होता है कि आप बहुत भोले हैं। आप जब परीक्षा करके देखेंगे तब सचाई मालूम होगी।

ठाकुर—अच्छी बात है, कहो किस तरह परीक्षा की जाय ?

समालोचक—आप अपनी स्त्री से कहिए कि मुझे पाच-सात दिन के लिए राजकीय काम से बाहर जाना है। यह कह कर आप बाहर चले जाना और फिर छिपकर घर मे बैठे रहना। उस समय मालूम होगा कि आपकी स्त्री का आप पर कैसा प्रेम है ? आप अपने पीछे ही अपनी स्त्री की परीक्षा कर सकते हैं। मौजूदगी में नही।

ठाकुर ने अपने मित्र की बात मान ली। वह अपनी स्त्री के पास गया। स्त्री से उसने कहा—तुम्हे छोडने को जी नही चाहता मगर लाचारी है। कुछ दिनो के लिए तुम्हें छोडकर बाहर जाना पडेगा। राजा का हुक्म माने बिना छुटकारा नही।

ठकुरानी ने बहुत चिन्ता और आश्चर्यपूर्वक कहा—क्या हुक्म हुआ है ? कौनसा हुक्म मानना पड़ेगा ?

ठाकुर—मुझे ५-७ दिन के लिए बाहर जाना पडेगा ?

ठकुरानी—पाच-सात दिन, बाप रे ! इतने दिन तुम्हारे बिना कैसे निकलेंगे। मुझे तो भोजन भी नहीं रुचेगा।

ठाकुर—कुछ भी हो, जाना तो पडेगा ही ।

ठकुरानी—इतने दिनो में तो मैं छटपटा कर मर ही जाऊँगी । आप राजा से कहकर किसी दूसरे को अपने बदले नहीं भेज सकते ।

ठाकुर—लेकिन ऐसा करना ठीक नहीं होगा । लोग कहेंगे, स्त्री के कहने में लगा है । मैं यह कहूँगा कि मुझसे स्त्री का प्रेम नहीं छूटता ? ऐसा कहना तो बहुत बुरा होगा ।

ठकुरानी—हाँ, ऐसा कहना तो ठीक नही होगा। खैर जो कुछ होगा देखा जायगा ।

इतना कहकर ठकुरानी आसू बहाने लगी । उसने अपनी दासी से कहा—दासी जा । कुछ खाने-पीने को बनादे जो साथ मे ले जाया जा सके ।

ठकुरानी की मोह पैदा करने वाली बातें सुनकर ठाकुर सोचने लगा—मेरे ऊपर इसका कितना प्रेम है !

ठाकुर घोडी पर सवार होकर कोस-दो कोस गया । घोडी ठिकाने बांध कर वह लौट आया और छिपकर घर में बैठ गया ।

दिन व्यतीत हो गया । रात हो गई । ठकुरानी ने दासी से कहा—ठाकुर तो गाव चला गया अब मेरे को धान नहीं भाता है अत तू जा पास के अपने खेत से दस-पाच साठे ले आ, जिससे रात व्यतीत हो। दासी ने सोचा ठीक है मुझे भी हिस्सा मिलेगा । वह गई और गन्ने तोड लाई । ठकुरानी गन्ना चूसने लगी ।

ठाकुर छिपा-छिपा देख रहा था । उसने सोचा—मेरे वियोग के कारण इसे अन्न नही भाता ! मुझ पर इसका कितना गाढा प्रेम है !

ठकुरानी पहर रात तक गन्ना चूसती रही । गन्ना समाप्त हो जाने पर वह दासी से बोली—अभी रात बहुत है। गन्ना चूसने से भूख लग आई है । थोड़े नरम-नरम बाफले तो बना डाल, देख

जरा घी अच्छा लगाना, हो।

दासी ने सोचा—चलो ठीक है मुझे भी मिलेंगे। दासी ने बाफले बनाए और खूब घी मिलाया।

ठकुरानी ने खूब बाफले खाए। खाने के थोड़ी देर बाद वह कहने लगी—दासी तूने बाफले बनाए तो ठीक, पर मुझे कुछ अच्छे नहीं लगे। यह खाना कुछ भारी भी है। थोड़ी नरम-नरम खिचड़ी बना डाल।

दासी ने वही किया। खिचड़ी खाकर ठकुरानी बोली—तीन पहर रात तो बीत गई अब एक पहर बाकी है। थोड़ी लाई (धानी) सेक ला उसे चबाते-चबाते रात बिताए। दासी लाई भी सेक लाई। ठकुरानी खाने लगी।

ठाकुर बैठा-बैठा सब देख-सुन रहा था। वह सोचने लगा—पहली रात में यह हाल है तो आगे क्या-क्या नही होगा। अब इससे आगे परीक्षा न करना ही अच्छा है। यह सोचकर वह घोड़े के पास लौट आया। घोड़े पर सवार होकर वह घर जा पहुचा।

दासी ने ठकुरानी को समाचार दिया—ठाकुर साहब आ गए हैं। ठकुरानी ने कहा—ठाकुर आ गए अच्छा हुआ।

ठाकुर से वह बोली—अच्छा हुआ, आप पधार गए। मेरी तकदीर अच्छी है। आखिर सच्चा प्रेम अपना प्रभाव दिखलाता ही है।

ठाकुर—तुम्हारी तकदीर अच्छी थी, इसी से मैं आज बच गया। बड़े सकट मे पड गया था।

ठकुरानी—ऐ, क्या सकट आ पडा था ?

ठाकुर—घोड़े के सामने एक भयकर साप आ गया था। मैं आगे बढ़ता तो साप मुझे काट खाता। मैं पीछे की ओर भाग गया इसी से बच गया।

ठकुरानी—आह ? सांप कितना बड़ा था ?

ठाकुर— अपने पास के खेत के गन्ने जितना बड़ा था। और भयानक था।

ठकुरानी—वह फन तो नहीं फैलाता था ?

ठाकुर—फन का क्या पूछना है ! उसका फन तो बाफला जितना बड़ा था।

ठकुरानी—वह दौड़ता भी था ?

ठाकुर—हाँ, वह दौडता क्यों नही था वह तो ऐसा दौड़ता था जैसे खिचडी में घी।

ठकुरानी—वह फुंकार भी मारता होगा ?

ठाकुर—हाँ, ऐसे जोर से फुंकार मारता था जैसे कड़ेले में पड़ी हुई धानी सेकने के समय फूटती है !

ठाकुर की बातें सुनकर ठकुरानी सोचने लगी यह तो सारी बातें मुझ पर ही घटित होती हैं। फिर भी उसने कहा—चलो, मेरे भाग्य अच्छे थे जो आप उस नाग से बचकर आ गए।

ठाकुर—ठकुरानी ! समझो। मैं उस नाग से बच निकला पर तुम सरीखी नागिन से बच निकलना बहुत कठिन है।

ठकुरानी—क्या मैं नागिन हूं ? अरे बाप रे ! मैं नागिन हो गई, भगवान् जानता है। सब देव जानते हैं। मैंने क्या किया जो मुझे नागिन बनाते हैं।

ठाकुर—मैं नहीं बनाता, तुम स्वय बन रही हो ! मैं अपने मित्रों के सामने तुम्हारी तारीफ बघारता था, लेकिन सब व्यर्थ हुआ।

ठकुरानी—तो बताते क्यों नहीं मैंने ऐसा क्या किया है ? मैं आपके बिना जी नही सकती और आप मुझे लांछन लगा रहे हैं।

ठाकुर बस रहने दो। मैं अब वह नहीं जो तुम्हारी मीठी-

मीठी बातों मे आजाऊँ। तुम मुझसे कहा करती थी—तुम्हारे वियोग मे मुझे खाना नहीं भाता और रात भर खाने का कचूमर निकाल दिया !

ठकुरानी की पोल खुल गई। साराश यह कि ससार में इस ठकुरानी के समान पति से कपट करने वाली स्त्रिया भी हैं और पतिव्रताएँ भी हैं। पति के प्रति निष्कपट भाव से अनन्य प्रेम रखने वाली स्त्रिया भी मिल सकती हैं और मायाविनी भी मिल सकती हैं। ससार मे अच्छाई भी है और बुराई भी है। प्रश्न यह है कि स्त्री को क्या ग्रहण करना चाहिए ? किसको अपनाने से नारी-जीवन उन्नत और पवित्र बन सकता है ?

आज अगर कोई स्त्री सीता नहीं बन सकती तो भी लक्ष्य तो वही रखना चाहिए। अगर कोई अच्छे अक्षर नही लिख सकता तो साधारण ही लिखे। मगर लिखना छोडने से तो काम नहीं चल सकता। यही बात पुरुषों के लिए भी है। पुरुषो के सामने महान्-आत्मा राम का आदर्श है। उन्हें राम के समान उदार, गम्भीर, मातृ-पितृ सेवक, बन्धु प्रेमी और धार्मिक बनना चाहिए।

सीता मे कैसा पतिप्रेम था, यह बात इसी से प्रकट हो जाती है कि क्या जैन और क्या अजैन, सभी ने अपनी शक्ति भर सीता की गुण-गाथा गाई है। मेंहदी का रग चमडी पर चढ जाता है और कुछ दिनो तक चमडी पर से उतारे नहीं उतरता। मगर सीता का पतिप्रेम इससे भी गहरा था। सीता का प्रेम इतना अतरग था कि वह चमडी उतारने पर भी नहीं उतर सकता था। वह आजीवन के लिए था। थोडे दिनो के लिए नही।

कवियो ने कहा है कि सीता, राम के रग में रग गई थीं। पर राम मे वन जाते समय कौनसा रग आया था कि जिसमे सीता रंगी ?

जिस समय सीता के स्वयवर मंडल में सब राजाओ का

पराक्रम हार गया था, सब राजा निस्तेज हो गए थे और जब राम ने सब राजाओं के सामने अपना पराक्रम दिखाया था, उस समय राम के रस में सीता का रचना ठीक था। पर उस समय के रग मे स्वार्थ था। इसलिए उस समय के लिए कवि ने यह नही कहा कि सीता राम के रग में रग गई। मगर जबकि राम ने सब वस्त्र उतार दिए हैं, वल्कल वस्त्र धारण किए हैं, फिर सीता राम के रग में क्यो रंगी? अपने पति के असाधारण त्याग को देखकर और ससार के कल्याण के लिए उन्हें वनवास करने को उद्यत देख-कर सीता के प्रेम मे वृद्धि ही हुई। वह राम के लोकोत्तर गुणो पर मुग्ध हो गई। इसी से कवि ने कहा है कि सीता राम के रग में रग गई?

उस समय सीता की एक मात्र चिन्ता यही थी कि जैसे प्राणनाथ को वन जाने की अनुमति मिल गई है, वैसे मुझे मिल सकेगी या नही?

वास्तव में वही स्त्री पतिप्रेम मे अनुरक्त कहलाती है जो पति के धर्म-कार्य आदि सभी में सहायक होती है। गहने-कपड़े पाने के लिए तो सभी स्त्रिया प्रीति प्रदर्शित करती हैं, मगर सकट के समय, पति के कन्धे से कन्धा मिडाकर चलने वाली स्त्रियां सराहनीय हैं। गिरते हुए पति को उठाने वाली और उठे हुए पति को आगे बढाने वाली स्त्री ही पतिपरायण कह-लाती है।

रामचन्द्र जी माता कौशल्या से वन जाने के लिए अनुमति मांगने गए, तो कौशल्या अधीर हो उठी। उन्होंने पहले वन के भयानक स्वरूप का स्मरण किया फिर राम की सुकुमारता का विचार किया। राम की उम्र उस समय सत्ताईस वर्ष की थी। कौशल्या ने सोचा—क्या यह उम्र वन जाने योग्य है? राजमहल मे सुमन सेज पर सोने वाला सुकुमार राम वन की ककरीली, पथरीली और

कटकमयी भूमि पर कैसे सोएगा ? कहा यहां के षट्रस भोजन और कहा वन के फल ! कैसे वन में इसका निर्वाह होगा। किस प्रकार सर्दी, गर्मी, और वर्षा का कष्ट सहा जाएगा ?

पर राम ने बड़ी सरलता और मिठास से माता को समझाया—माता ! जो पुत्र माता-पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता वह पुत्र नहीं है। और फिर मैं तो कैकेयी माता को एक बार महाराज के युद्ध मे प्राण बचाने के महान् कार्य का पुरस्कार देने जा रहा हूँ। अतएव आप अपनी आखो के आसू पोछ डालो और मुझे बिदा दो। हर्ष के समय विषाद मत करो। ससार का ऐसा ही स्वरूप है। सयोग-वियोग के अवसर आते ही रहते हैं। इन प्रसगो के आने पर हर्ष-विषाद न करने में ही भलाई है।

राम के यह वचन कौशल्या के मोह को बाण की तरह लगे। उन्होंने सोचा—राम ठीक तो कहता है। जब पुत्र पिता की आज्ञा और धर्म का पालन करने के लिए उद्यत हो रहा हो तब माता के शोक का क्या कारण है ? ऐसा करना माता के लिए दूषण है। स्त्री धर्म के अनुसार पति ने जो वचन दिया है, वह पत्नी ने भी दिया है। फिर मुझे शोक क्यो करना चाहिए ?

इस प्रकार विचार कर कौशल्या ने कहा—वत्स ! मैं तुम्हारा कहना समझ गई। मै आज्ञा देती हूं कि वन तुम्हारे लिए मगलमय हो। तुम्हारा मनोरथ पूरा हो।

पुत्र ! अभी तू नाम मे राम है अब सच्चा राम बन। अब तेरा नाम सार्थक होगा। तू जगत् के कल्याण और जगत् की उन्नति में अपनी उन्नति मानना। तेरा पक्ष सिद्ध हो। तू विघ्न आने पर भी धैर्य से विचलित न हो। प्रसन्न होकर तू वन जा। मेरा आशीर्वाद तेरे साथ है। इस विशाल विश्व का प्रत्येक प्राणी तेरा हो, तू सब को अपना आत्मीय समझ। तभी तू मेरा होगा। लेकिन आजकल क्या होता है:—

मात कहे मेरा पूत सपूत, बहिन कहे मेरा भैया।
घर की पत्नी यो कहे, सब से बड़ा रुपैया॥

बेटा चाहे अनीति करे, अधर्म करे, झूठ-कपट का सेवन करे, अगर वह रुपये ले आता है, तो अच्छा है, नही तो नही। ऐसा मानने वाले लोग वास्तव में मां-बाप नहीं किन्तु अपनी सतान के शत्रु हैं। ससार में जहा पुत्र को पाप करते देखकर प्रसन्न होने वाले मां-बाप मौजूद हैं, वहा ऐसे मां-बाप भी मिल सकते हैं जो पुत्र की धार्मिकता की बात सुनकर प्रसन्न होते हैं। पुत्र जब कहता है—आज मेरे ऊपर ऐसा सकट आ गया था। मैं अपने शत्रु से इस प्रकार बदला ले सकता था पर मैंने फिर भी धर्म नही छोडा। मैंने अपने शत्रु की इस प्रकार सहायता की, ऐसी बातें सुनकर प्रसन्न होने वाली कितनी माताएँ हैं?

राम और कौशल्या की बात सीता भी सुन रही थी। वह नीची दृष्टि किए सलज्ज भाव से वही खडी थी। माता और पुत्र का वार्तालाप सुनकर उसके हृदय में न जाने कैसा तूफान आया होगा! सीता की सासू उसके पति को वन जाने के लिए आशीर्वाद दे रही, यह देखकर सीता को प्रसन्न होना चाहिए या दुखी? आज अगर ऐसी बात हो तो वह कहेगी—यह कैसी अभागिनी सासू है जो अपने बेटे को ही वन मे भेजने को तैयार हो गई है। मैं यह समझती थी कि यह वन जाने से रोकेगी पर यह तो उल्टा आशीर्वाद दे रही है। मगर सीता ने ऐसा नही सोचा। सीता मे कुछ विशेषताए थी और उन्हीं विशेषताओ के कारण राम से भी पहले उसका नाम लिया जाता है। पर आज सीता के आदर्श को हृदय मे उतारने वाली स्त्रिया मिलेगी? फिर भी भारतवर्ष का सौभाग्य है कि यहा के लोग सीता के चरित्र को बुरा नही समझते। बुरे से बुरा आचरण करने वाली नारी भी सीता के चरित्र को अच्छा समझती है।

सीता मन ही मन कहती है—आज प्राणनाथ वन को जा रहे हैं। क्या मेरा भी इतना पुण्य है कि मैं भी उनके चरणों में आश्रय पा सकू ?

पति को प्राणनाथ कहने वाली स्त्रियाँ तो बहुत मिल सकती हैं मगर इनका मर्म सीता जैसी विरली ही जानती है। पति का वन जाना सीता के लिए सुख की बात थी या दु:ख की ? यों तो पत्नी को छोड़कर पति का जाना पत्नी के लिए दु:ख की बात ही है, पर सीता को दु:ख का अनुभव नही हो रहा है। उसकी एक मात्र चिन्ता यह है कि क्या मेरा इतना पुण्य है कि मैं भी पतिदेव की सेवा मे रह सकू ? सीता के पास विचार की ऐसी सुन्दर सपत्ति थी। यह सम्पति सभी को सुलभ है। जो चाहे, उसे अपना सकता है। जो ऐसा करेगा वही सुकृतशाली होगा।

सीता सोचती है—मेरे स्वामीदेव तो राज्य त्याग कर वन जा रहे हैं। वे अपनी माता की इच्छा और पिता की प्रतिज्ञा पूरी करने वन जाते हैं, लेकिन हे सीता ! तेरा भी कुछ सुकृत है या नही ? क्या तेरा इतना सुकृत है कि तेरा और प्राणनाथ का साथ हो सके ? तू ने प्राणनाथ के गले मे वरमाला डाली है, पति के साथ विवाह किया है उनके चरणो मे अपने को अर्पित कर दिया है, इतने दिन उनके साथ ससार का सुख भोगा है, तो तेरा ऐसा भाग्य नहीं कि वन मे जाकर तू उनका साथ दे सके।

सीता सोचती है—मैं राम के साथ भोग विलास करने के लिए नही व्याही गई हूं। मेरा विवाह राम के धर्म के साथ हुआ है। ऐसी दशा मे क्या राम अकेले ही वन जाकर धर्म करेगे ? क्या मैं उस धर्म मे सहयोग देने से वचित रहूगी ? अगर मैं शरीर सहित प्राणनाथ के साथ न रह सकी तो मेरे प्राण अवश्य ही उनके साथ रहेगे। मुझ में इतना साहस है कि अपने प्राणो को शरीर

से अलग कर सकती हू । अगर राजमहल के कारागार में मुझे कैद किया गया तो निश्चित रूप से मेरा शरीर निर्जीव ही कैद रहेगा । प्राण तो प्राणनाथ के पास उडकर पहुचे विना नहीं रहेंगे।

प्राणनाथ को वन जाने की अनुमति मिल गई है । मुझे अभी प्राप्त करनी होगी । सासूजी की अनुमति लिये बिना मेरा जाना उचित नही है । सासूजी से अनुमति लू गी । जब उन्होने पुत्र को आज्ञा दी है तो पुत्रवधू को भी देंगी ही ।

सीता सोचती है—प्राणनाथ का वन जाना मेरे लिए गौरव की वात है । उनके विचार इतने ऊँचे और उनकी भावना इतनी पवित्र है, इससे प्रगट है कि उनमें परमात्मिक गुण प्रगट हो रहे हैं। मैंने विवाह के समय इन्हें दूसरे रूप में देखा था। आज दूसरे ही रूप मे देख रही हू ।

रामचन्द्र जी ने कौशल्या को प्रणाम किया और विदा लेने लगे । तब पास ही में खड़ी सीता भी कौशल्या के पैरों पर गिर पडी । सीता को पैरो के पास गिरी देखकर कौशल्या समझ गई कि सीता भी इस पिजरे से बाहर जाना चाहती है जिसे राम ने तोडा है ।

फिर कौशल्या ने सीता से कहा—बहू तुम चचल क्यों हो ?

सीता – माता ! ऐसे समय चचलता होना स्वाभाविक ही है । आपके चरणों की सेवा करने की मेरी बडी साघ थी। वह मन की मन में ही रह गई । कौन जाने अब कब आपके दर्शन होगे ?

कौशल्या– क्या तुम भी वन जाने का मनोरथ कर रही हो ?

सीता—हाँ माँ ! यही निश्चय है । जिसके पीछे यहा आई हू, जब वही वन जा रहे हैं तो मैं किस प्रकार यहा रहूगी ? जब पति वन में हो तो पत्नी राजमहल मे रहकर अर्धाङ्गिनी कैसे कहला सकती है ?

हूं कि सीता वन जाने योग्य नहीं है। मैंने सीता को अमृत की जडी की तरह पाला है। वह वन रूपी विपकटक में जाने योग्य नहीं है। यह राजा जनक के घर पल कर मेरे घर में आई है। जिसने जमीन पर पैर तक नही रखा वह वन मे पैदल कैसे चलेगी ? यह किरात-किशोरी अर्थात् भील की लड़की नही है और न तापस नारी है, जो वन मे रह सके। खाद का कीड़ा पत्थर मे नही रह सकता। यह मेरी नयन-पुतली है, जो तनिक भी आघात नही सह सकती,

कौशल्या का कथन चाहे ममता के स्रोत निकला हो मगर सीता के लिए वह परीक्षा है। अब सीता के राम-रस की परीक्षा हो रही है।

कौशल्या कहती हैं—जगल वडा दुर्गम प्रदेश है। यहां थोडी दूर जाने पर भी जल की झारी वाली दासी साथ रहती है पर वहां दासी कहां ? वहां तो प्यास लगने पर पानी भी मिलना कठिन है। जब गरम हवा चलेगी तब मुह सूख जायगा ऊपर से धूप भी तेज लगेगी। उस समय पानी कहां सुलभ होगा ? जंगल मे पडाव नहो है कि पानी मिल सके। इस प्रकार तू प्याम के मारे मरेगी और राम की परेशानी बढ जाएगी। यहा तुझे मेवा मिष्ठान्न मिलता है, वहा कडुवे-खट्टे फल भी सुलभ नही होंगे। सीता, तू भूख-प्यास आदि का यह भयकर कष्ट सहन कर सकेगी ?

वहा न महल है, न गरम कपडे हैं और न सिगडी का ताप है। चलते-चलते जहां रात हो गई वहीं बसेरा करना पड़ता है। यही नहीं, जगल मे बाघ, चीता, रीछ, सिह आदि हिंसक जानवर भी होते हैं। तू उनके भयंकर शब्दो को कैसे सुन सकेगी ? तूने कभी कठोर शब्द तो सुना ही नही है।

सीता सास की बातें सुनकर तनिक भी विचलित नहीं हुई।

उसने सोचा यह तो मेरे राम-रस की परीक्षा हो रही है । अगर इसमें मैं उत्तीर्ण हो गई तो मेरा मनोरथ पूरा हो जायगा ।

सीता के शरीर पर हाथ फेरते हुए कौशल्या कहने लगी- देखती नही, तेरा शरीर कितना कोमल है । तू बचपन से कोमल शय्या पर सोई है । लेकिन वन मे शय्या कहां ? धरती पर सोने मे तुझे कितना कष्ट होगा ? उस समय राम के लिए तू भार हो जाएगी । परदेश में स्त्रिया पुरुष के लिए भार रूप हो जाती हैं । फिर यह तो वन का प्रवास है । स्त्रिया घर मे ही शोभा देती हैं । जगल में भटकना उनके बूते का नहीं है ।

माता कौशल्या की बात का राम ने भी समर्थन किया । वह मुस्कुराते हुए बोले—माता, आप ठीक कहती हैं वास्तव में जानकी वन जाने योग्य नही है ।

माता के सामने जानकी के विषय में कुछ कहते हुए राम लज्जित तो हुए लेकिन आपत्तिकाल मे सर्वथा चुप भी नही रह सकते थे । माता-पिता की मर्यादा की रक्षा करना पुत्र का धर्म है । किन्तु विकट प्रसग पर उस मर्यादा को कुछ सकीर्ण भी करना पडता है ।

राम सीता से कहने लगे—सुकुमारी ! वैसे तो मैं तुम्हें विलग नही करना चाहता पर मैं मातृभक्त हू । अतएव मैं कहता हू कि तुम्हे घर पर रह कर ही माता की सेवा करनी चाहिए । मैने तुम्हें जितना समझ पाया है, उसके आधार पर कह सकता हू कि तुम शक्ति और सरस्वती हो । मैं तुम्हारी शक्ति को जानता हू । इसलिए तुम घर पर रहो । मेरे वियोग के कारण जब माता दुखी हो तब तुम उन्हे सान्त्वना देना । मुझ पर पिता का ऋण है इसलिए मेरा वन जाना आवश्यक है । तुम्हारे ऊपर कोई ऋण नहीं अतएव तुम्हारा जाना आवश्यक नहीं । इसके अतिरिक्त मेरी इच्छा भी यही है कि तुम घर पर रहोगी तो स्वय सुखी रहोगी

और माता भी सुखी रह सकेंगी। अगर तुम मेरी सेवा के लिए वन जाना चाहती हो तो माता की सेवा होने पर मैं अपनी सेवा मान लूंगा। इतने पर भी हठ करोगी तो कष्ट उठाना पडेगा। हठ करने वाले को सदा कष्ट ही भोगना पडता है। इसलिए तुम मेरी और माता की बात मान जाओ। वनवास कोई साधारण बात नही है। वन मे बडे-बडे कष्ट हैं। हमारा शरीर तो वज्र के समान है। वैरियों के सामने युद्ध करके हम मजबूत हो गए है। लेकिन तुमने घर के बाहर पैर भी नहीं रखा है? अगर नही तो मेरी समता मत करो। वन मे भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि के दुख अभी माता बतला चुकी हैं। मैं अपने साथ एक पैसा भी ले नही जा रहा हू कि उससे कोई प्रबन्ध कर सकूंगा। राजा का कोई काम न करना फिर भी राज्य सम्पत्ति का उपयोग करना मैं उचित नही समझता। इस स्थिति मे तुम्हारा चलना सुविधा जनक न होगा।

मैंने वल्कल-वस्त्र पहने हैं। वन जाकर मैं अपनी जीवन की रक्षा के लिए सात्विक साधन ही काम मे लूंगा। मैं वन-फल खाकर भूमि पर सोऊंगा। वृक्ष की छाया ही मेरा घर होगी या कोई पर्णकुटी बनाकर कही रहूंगा। तुम यह सब कष्ट सहन नही कर सकोगी।

राम बडी दुविधा मे पडे हैं। एक ओर सीता के प्रति ममता के कारण उसके कष्टो की कल्पना करके, और माता को अकेली न छोड जाने के उद्देश्य से वह सीता को साथ नही ले जाना चाहते, दूसरी ओर सीता की पति परायणता देख, वियोग उसके लिए असह्य होगा, यह सोचकर वे उसे छोड जाना भी नहीं चाहते फिर भी वे यह चाहते हैं कि सीता वन के कष्टो के विषय में धोखे में न रहे। इसलिए सारे कष्टों को उन्होने सीता के सामने रख दिया।

राम और कौशल्या ने सीता को घर रहने के लिए समझाया। उनकी बातें सुनकर सीता सोचने लगी—यह एक विकट प्रसग है। अगर मैं इस समय लज्जा से चुप रह जाऊगी और घर में ही बैठी रहूगी तो यह मेरे लिए स्त्री धर्म का नाश करना होगा। इस प्रकार विचार कर और जी कडा करके सीता ने राम से कहा—प्रभो! आपने और माता जी ने वन के कष्टो के विषय मे जो कुछ कहा है सब ठीक है। आपने वन के कष्ट बतला दिए सो भी अच्छा किया। लेकिन मैं होस की मारी वन नही जा रही हू। आप विश्वास कीजिए कि मैं वन के कष्टों से भयभीत नहीं होनी। बल्कि यह सुनकर तो वन के प्रति मेरी उत्सुकता और बढती जा रही है। मुझे अपने साहस और धैर्य की परीक्षा देनी है और मैं उस परिक्षा में अवश्य सफल होऊगी।

मैं सुख में तो आपके साथ रही हू तो क्या दुःख के समय किनारा काट जाऊँ। सुख के साथी को दुख मे भी साथी होना चाहिए। जो ऐसा नही करता वह सच्चा साथी नही, स्वार्थी है। पत्नी पति के सुख-दुःख की सगिनी है। आप मुझे वन के कष्ट बताकर वन जाने को रोक रहे हैं, मगर क्या मैं आपके सुख की ही साथिन हू ? क्या मुझे स्वार्थपरायण बनना चाहिए ? नहीं, मैं दुःख मे आपसे आगे रहने वाली हूँ।

राम का ऐसा पक्का रग सीता पर चढ़ा था कि स्वय राम के छुटाए भी न छूटा। राम सीता को वन जाने से रोकना चाहते थे, पर सीता नहीं रुकी। वास्तव मे राम रग वह है जो राम के धोने से भी नही धुलता।

सीता कहती हैं—प्राणनाथ! जान पडता है आज आप मेरी ममता में पड गए हैं। मेरे मोह में पड कर आपने जो कहा है उसका मतलब यह है कि मैं अपने धर्म-कर्म का और अपनी विशेषता का परित्याग कर दू। यद्यपि आपके वचन शीतल और

मधुर हैं लेकिन चकोरी के लिए चन्द्रमा की किरणें भी दाह उत्पन्न करती हैं। वह तो जल से ही प्रसन्न रहती है। स्त्री का सर्वस्व पति है। पति ही स्त्री की गति है। सुख दुख मे समान भाव से पति का अनुसरण करना ही पतिव्रता का कर्तव्य है। मैं इसी कर्तव्य का पालन करना चाहती हू। अगर मैं सपने कर्तव्य से च्युत हो गई तो घृणा के साथ लोग मुझे स्मरण करेंगे। इसमे मेरा गौरव नष्ट हो जाएगा। इसके अतिरिक्त आप जिस गौरव पूर्ण काम को लेकर और जिस महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिए वनगमन कर रहे हैं क्या उसमे मुझे शरीक नही करेंगे? आप अकेले ही रहेगे। ऐसा मत कीजिए। मुझे भी उसका थोड़ा-सा भाग दीजिए। अगर मुझे शामिल नही करते तो मुझे अर्धाङ्गिनी कहने का क्या अर्थ है? हाँ, अगर वन जाना अपमान की बात हो तो भले ही मुझे मत ले चलिए। अगर गौरव की बात है तो मुझे घर ही में रहने की सलाह क्यो देते हैं! आपका आधा अंग घर में ही रह जाएगा तो आप विजय कैसे ला सकेंगे? आधे अंग से किसी को विजय नहीं मिलती।

आप वन में मुझे भय ही भय बतलाते हैं मगर आप के साथ तो मुझे वन मे जय ही जय दिखलाई देती है। कदाचित् भय भी वहाँ होगा मगर भय पर विजय प्राप्त कर लेना कोई कठिन बात नही और ऐसी विजय में ही सुख का वास है।

कदाचित् आप सोचते होगे कि सीता में आत्मबल नहीं है, इस कारण वन उसके लिए कष्ट कर होगा। कदाचित् भय वहाँ होगा मगर अवसर मिलने पर मैं अपना बल दिखलाऊँगी। स्त्री के लिए जितने भी व्रत-नियम हैं और धर्म हैं उनमें से किसी में भी चूक जाऊँ तो मैं जनक की पुत्री नहीं! अधिक क्या कहू, बस इतना ही निवेदन करना चाहती हू कि मैं आपकी अर्धाङ्गिनी हू, सुख-दुख की साथिन हूँ। मुझे अलग मत कीजिए। वन के

जो कष्ट आप सहेगे मैं भी सह लूंगी। कोमलता कठोरता के सहारे और कठोरता कोमलता के सहारे रहती है। डाली के बिना पत्ती और पत्ती के बिना डाली नही रह सकती। दोनो का अस्तित्व सापेक्ष है। मैं माता जी से भी यही प्रार्थना करती हू कि वे मुझे निसकोच आज्ञा दें। स्त्री के हृदय को स्त्री जल्दी और खूब समझ सकती है। इससे ज्यादा निवेदन करने की आवश्यकता ही नहीं है।

सीता सोचती है—जहा पति हैं वहा सभी सुख हैं। जहा पति नहीं वहा दुख ही दुख है। पति स्वय सुखयम है। उनके वियोग मे सुख कहा ?

सीता फिर बोली—आप वन में सताप कहते हैं पर वहां पाप तो नहीं है ? जहा पाप न हो वह सताप-सताप ही नहीं है, वह तो आत्मशुद्धि करने वाला तप है। आप भूख-प्यास का कष्ट वतलाते हैं लेकिन स्त्रियां इन कष्टो को कष्ट नहीं गिनती। अगर हम भूख-प्यास से डरती तो पुरुषों से अधिक उपवास न करती। भूख सहने में स्त्रियां पक्की होती हैं।

सीता की बातें सुनकर कौशल्या सोचने लगी—सीता साधारण स्त्री नहीं है। इसका तेज निराला है। यह साक्षात् शक्ति है। राम और सीता मिलकर जगत् का कल्याण करेंगे। जगत् में नया आदर्श रखने के लिए इनका जन्म हुआ है। अतएव सीता को राम के साथ जाने की अनुमति देना ही ठीक है।

सीता की बातों से प्रभावित होकर कौशल्या ने सीता को आशीर्वाद दिया—वेटी जब तक गगा-यमुना की धारा बहती रहे तब तक तेरा सौभाग्य अखण्ड रहे। मैंने समझ लिया कि तू मेरी ही नही पर सारे ससार की है। तेरा चरित्र देखकर ससार की स्त्रियां सती बनेंगी और इस प्रकार तेरा सौभाग्य अखण्ड रहेगा। सीते ! तेरे लिए राजभवन और गहन वन समान हो। तू वन में भी

मगल से पूरित हो।

सीता सास का आशीर्वाद पाकर कितनी प्रसन्न हुई, कहना कठिन है। आशीर्वाद देते समय कौशल्या के मन की क्या अवस्था हुई होगी यह तो कौशल्या ही जानती है या सर्वज्ञ भगवान् जानते हैं। राम और सीता कौशल्या के पैरो पर गिरे कौशल्या ने अपने हृदय के अनमोल मोती उनपर बिखेर दिये और विदा दी।

सीता की भावना कितनी पवित्र और उच्च श्रेणी की थी? सीता सच्ची पतिव्रता थी। वह पति की प्रतिज्ञा को अपनी ही प्रतिज्ञा समझती थी। उसने अपने व्यक्तित्व को राम के साथ मिला दिया। सीता का गुण थोड़े अशों मे भी जो स्त्री ग्रहण करेगी उसे किसी चीज के न मिलने का या मिली हुई चीज के चले जाने का कभी भी दुख नही होगा।

स्त्रियो को अगर सीता का चरित्र प्रिय लगेगा तो वे पहिले पतिप्रेम के जल में स्नान करेंगी। पतिप्रेम के जल में किस प्रकार स्नान किया जाता है, यह बात सीता के चरित्र से समझ में आ सकती है। राम से पहिले सीता का नाम लिया जाता है। सीता ने यदि पतिप्रेम-जल में स्नान न किया होता और राजभवन मे रह जाती तो उसका नाम आदर से कौन लेता?

सीता ने अपने असाधारण त्यागमय चरित्र के द्वारा स्त्री समाज के सामने ऐसा उज्ज्वलता का आदर्श उपस्थित कर दिया जो युग-युग मे नारी का पथ प्रदर्शन करेगा। पथ भ्रष्ट स्त्रियों के लिए यह महान् उत्सर्ग बड़े काम का सिद्ध होगा।

एक आजकल की स्त्रियां हैं कि जिन्हे वन का नाम लेते ही बुखार चढ़ आता है। सीता ने वन जाकर स्त्रियों को अबला कहने वाले पुरुषों को एक प्रकार से चुनौती दी थी। उसने सिद्ध किया है कि स्त्रियां शक्ति हैं। सीता के द्वारा प्रदर्शित पथ पर

स्त्रियों को चलना चाहिए।

सीता का पथ कौनसा है? कैसा है? इसका उत्तर देना कठिन है। पूरी तरह उस पथ का वर्णन नहीं किया जा सकता। एक कवि ने कहा है—

वेना आपणो बनाव,
घणा मोल को करां।
पैली आपणी सत्यारा,
पग लागणी करां॥ वेना०॥
पति प्रेम रा पवित्र,
नीर मांय सांपड्या,
पीर-सासरा रा वखाण रा
सुवेष पैर ला।
मेंहदी राचणी विचार
धरे काम आदरां॥ वेना०॥

सीता के रोम-रोम में पुनीत पतिभक्ति भरी हुई थी। पतिव्रता स्त्री के नेत्रों मे वह शक्ति होती है कि अगर वह किसी को पुत्र की तरह प्रेम की दृष्टि से देख ले तो उसका शरीर वज्र-मय हो जाय और यदि क्रोध की दृष्टि से देख ले तो वह भस्म जाय।

जो स्त्री अपने सतीत्व को हीरे से बढ़कर समझती है उसकी आंखों मे तेज का ऐसा प्रकृष्ट पुञ्ज विद्यमान रहता है कि उसका सामना होते ही पापी की निर्बल आत्मा कांपने लगती है।

पति-पत्नी का मन अगर निष्कपट हो तो एक को दूसरे के मन की बात जान लेना भी कठिन नहीं है।

सीता की भांति आज की बहिनें सम्पूर्ण विश्व को अपना समझती हैं? राज्य तो बडी चीज है पर आजकल तो क्या तुच्छ से तुच्छ वस्तुओं को लेकर ही देवरानी-जिठानी में महाभारत

नहीं मच जाता ? भाई-भाई के बीच कलह की बेल नही बो देती ? क्या जमाना था वह कि जब सीता इस देश मे उत्पन्न हुई थी। सीता जैसी विचारशील सती के प्रताप से यह देश धन्य हो गया।

कुलीन स्त्रिया, जहा तक सम्भव होता है, भाई-भाई में विरोध उत्पन्न नही होने देतीं। यही नही वरन् किसी अन्य कारण से उत्पन्न हुए विरोध को भी शान्त करने का प्रयत्न करती हैं। पति-व्रता नारी अपने पति को शरीर से भी अधिक मानती है। पति के प्रेम से प्रेरित होकर तो वह अपने शरीर की हड्डी-चमडी भी खो देती है लेकिन पति का प्रेम नही खोती।

कोई महिला कुचाल चलते हुए भी पतिव्रता बनने का ढोंग कर सकती है और अपने पति की आखो मे धूल झोक सकती है पर यह चालाकी ईश्वर के सामने नहीं चल सकती। पति हृदय की बात नहीं जानता मगर ईश्वर मनुष्य के हृदय को भी जानता है। वह सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी है। जो उसको धोखा देने की कोशिश करेगी वह स्वय धोखे की शिकार होगी।

परम पिता के पास अच्छी या बुरी नारियों का इतिहास जैसा का तैसा पहुच जाता है। सती स्त्रियों के हृदयोद्गार कितनी शीघ्रता से ईश्वर के पास पहुचे हैं इसके उदाहरण भी कम नही।

सीताहरण से रावण के वश का नाश हो गया। चित्तौड़ की राजपूत-सतियों की हृदयाग्नि ने मुगल वश का इस तरह नाश किया कि आज उनके नाम पर रोने वाला भी नहीं है।

द्रौपदी चीर-हरण के कारण ही कौरव वश का नाश हुआ। द्रौपदी का चरित्र जिसे विस्तार से देखना हो उसे महाभारत में देखना चाहिए। सीता का पतिव्रत कुछ कम नहीं। उसका सतीत्व बड़ा ही जाज्वल्यमान है, पर द्रौपदी भी कुछ कम नहीं थी वह एक

प्रखर नारी थी। सीता सौम्यमूर्ति थी। द्रौपदी शान्ति का अवतार थी पर भीष्म पितामह आदि महापुरुषो के सामने भी भाषण देने वाली थी। वह वीरागना काम पड़ने पर युद्ध-शिक्षा देने से भी नही चूकती थी।

चदनवाला को ही देखिए। राजकुमारी होकर बिक जाना अपने ऊपर आरोप लगने देना, सिर मुडवाना, प्रहार सहन करना, क्या साधारण बात है ? तिस पर उसे हथकड़ी-बेड़ी डाली गई और वह भौंरये मे बन्द कर दी गई। फिर भी धन्य है चन्दनबाला महासती को, जो मुस्कराती ही रही और अपना मन मैला न होने दिया।

सचमुच स्त्रिया वह देवी हैं, जिनके सामने सब लोग सिर नमाते हैं और आज ऐसी ही देवियों, वीर माताओं, वीर पत्नियों और वीर बहिनो की आवश्यकता है। लेकिन यह भी दृढ़ सत्य है कि स्त्रियो का निरादर करके ऐसी माताए और बहिनें नहीं बना सकते बल्कि उनका आदर करके ही बना सकते हैं।

पति और पत्नी का दर्जा बराबर है। तथापि दोनो में जो अधिक बुद्धिमान हो उसकी आज्ञा कम बुद्धिमान् को मानना चाहिए। ऐसा करने से ही गृहस्थी मे सुख-शाति रह सकती है। क्योंकि पति अगर स्वामी है तो स्त्री क्या स्वामिनी नही ? पति अगर मालिक कहलाता है तो पत्नी क्या मालकिन नहीं कहलाती ?

इसी तरह स्त्रियो के लिए अगर पतिव्रत धर्म है तो पुरुषों के लिए पत्नीव्रत धर्म क्यो नही ? धनवान् लोग अपने जीवन का उद्देश्य भोगविलास करना समझते हैं। स्त्री मर जाए तो भले मर जाए। पैसे के बल पर वे दूसरी शादी कर लेंगे। इस प्रकार एक पत्नीव्रत की भावना न होने से अनेक स्त्रियाँ पुरुषों की लोलुपता की शिकार होती हैं।

आज के पति धर्म-पत्नी को भूल रहे हैं। इसी कारण ससार मे दाम्पत्य जीवन दुखपूर्ण दिखाई देता है। आज साधारण तौर पर यह रिवाज चल पडा है कि पति एक पत्नी के मर जाने पर दूसरी और दूसरी के मर जाने पर तीसरी ब्याह लाता है। मगर यह अन्याय है। पुरुष अपनी स्त्री को तो पतिव्रता देखना चाहते हैं पर स्वयं पत्नी-व्रतधारी नहीं बनना चाहते। पुरुषो ने अपनी सुख-सुविधा के अनुकूल नियम घड लिये हैं। परन्तु शास्त्रकार स्त्री और पुरुष के बीच किसी प्रकार का अनुचित भेद न करते हुए, समान रूप से पुरुष को पत्नीव्रत और स्त्री को पतिव्रत पालने का आदेश देते हैं, शास्त्रकार उत्सर्ग मार्ग के रूप मे ब्रह्मचर्य पालने का आदेश देते हैं। अगर पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने की शक्ति न हो तो पुरुष को पत्नीव्रत और पत्नी को पतिव्रत पालने को कहते हैं। लेकिन पुरुष अपने आप को स्वपत्नी सन्तोषव्रत से मुक्त समझते हैं। और सिर्फ पत्नी से स्वपति सतोषव्रत का पालन कराना चाहते है। वे यह नही सोचते कि जब हम अपने व्रत का पालन नही करते तो स्त्री से यह आशा कैसे रख सकते हैं कि वह अपने व्रत का पालन करे ही! अतएव पुरुषो और स्त्रियों के लिए उचित मार्ग यही है कि दोनो अपने-अपने व्रत का पालन करें। जो व्रत का भलीभांति पालन करता है उसका कल्याण अवश्य होता है।

वे मनुष्य वास्तव मे धन्य है जो सौन्दयमूर्ति, नवयौवना स्त्री को देखकर भी विचलित नही होते किन्तु अपने निज स्वरूप में स्थिर रहते हैं। उनको कवि ने तो भगवान् की उपमा दे ही है। किन्तु विचार करते हुए यह उपमा अतिशयोक्ति नही है। क्योंकि इन्द्र, चन्द्र, नागेन्द्र और नरेन्द्र भी जिसकी आख के इशारे पर नाचते रहते हैं उस मनोहरा स्त्री को देखकर जो क्षुब्ध नहीं होते, वे मनुष्य तो क्या देवो के भी पूज्य हैं और ससार मे ऐसे महापुरुष तो बहुत ही कम हैं। जघन्य पुरुष-पत्नी होते हुए भी किसी रूपवती को देखकर और उसे अधीन करने के लिए आकाश-पाताल एक कर डालते हैं और उचित-अनुचित

सभी उपाय काम मे लेते है। न बोलने जैसे वचन बोलते हैं और स्त्री के दास होकर रहना भी स्वीकार करते हुए नहीं सकुचाते। कामान्ध मनुष्य यह नही सोचता कि मैं कौन हूं। किस कुल मे उत्पन्न हुआ हूँ। मेरी व मेरे खानदान की प्रतिष्ठा कैसी है? और मैं यह क्या कर रहा हू? मैंने जब विवाह किया था तब अपनी पत्नी को क्या-क्या अधिकार दिए थे? उसे क्या-क्या विश्वास दिया था और अब उसका हक, उसका अधिकार दूसरी को देने का मुझे क्या हक है?

वह उचित और अनुचित रीति से उसे लालच और विश्वास देकर अपनी तरफ रुजू करने की चेष्टा करता है। हर तरह-लाचारी-आजीजी भी करता है परन्तु जो चतुर स्त्री होती है वह उसके दम्भ में नही आती और अपने शील-धर्म एव प्रतिव्रत धर्म को ही आदर्श मान कर उन लालच भरे वचनो को भी ठुकरा देती है। किन्तु जो मूर्ख स्त्रिया होती हैं वे झासे में आकर भ्रष्ट हो जाती हैं। वे न घर की रहती हैं, न घाट की।

४—पतिव्रता का आदर्श

गुर्जर सम्राट् महाराजा सिद्धराज ने भी एक मजदूरनी के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर क्या-क्या चेष्टाए की सो तो 'सती जसमा' पढने से ही मालूम होगा। उसके चरित्र की कथाए आज भी गाने बन-बन कर गुजरात भर मे घर-घर गाई जा रही है।

गुजरात के पाटन नगर के महाराज सिद्धराज सोलकी ने एक तालाव खुदवाना आरभ किया था। उसकी खुदाई के लिए जो मजदूर आए थे वे जाति के 'ओड' थे। उन्ही में एक मजदूर टीकम नाम का था जिसकी पत्नी जसमा थी।

जसमा युवती थी और साथ-साथ अत्यन्त सौन्दर्यमयी भी थी।

तालाव के बांध पर बार-बार मिट्टी लेजा कर डालती हुई जसमा पर एक दिन महाराज सिद्धराज की नजर पड गई और उसे देखते ही प्राणपण से चेष्टा करके वे उसे अपनाने की कोशिश करने लगे।

तालाब का काम चालू हुए करीब पन्द्रह दिन हो चुके थे। महाराज को जब भी जसमा याद आती वे तालाब पर पहुच जाते। इन पन्द्रह दिनों में एक दिन भी ऐसा नहीं गया कि जिस दिन महाराज तालाव पर न पहुचे हो।

एक दिन महाराज कुछ और जल्दी आ गए। यद्यपि मध्याह्न बीत चुका था परन्तु समय बहुत था। धूप भी कडाके की पड रही जी। ओड लोग खुदाई कर रहे थे और उनकी स्त्रिया टोक-रिया में मिट्टी भर-भर कर फैंक रही थीं। महाराज को ऐसी धूप मे आया देख सभी को आश्चर्य हुआ। कुछ देर तक महाराज इधर-उधर घूमते रहे। आग बरस ही रही थी। महाराज ने मौका पाकर जसमा से पानी मागा।

जसमा महाराज को इन्कार तो कैसे कर सकती थी ? वह शरमाती हुई पानी का प्याला महाराज के पास लाई।

महाराज ने पानी पीते-पीते ही कहा—तुम्हारा ही नाम जसमा है ? अचानक महाराज के मुह से अपना नाम सुन कर जसमा शरमा गई। लज्जा की रेखा उसके मुह पर आई और आते ही उसका सौन्दर्य और खिल उठा। जसमा ने महाराज को तीन-चार वार इस झाड के नीचे देखा था। उसने संक्षेप में ही उत्तर दिया—'जी'। राजा पानी पी गया और फिर दूसरी वार पानी मांगा और साथ ही दूसरा प्रश्न भी किया—

महाराज—जसमा ! तू ऐसी कडी धूप कैसे सहती होगी ?

जसमा—क्या करें महाराज ! हम क्या राजा हैं ? मजदूरी करते हैं और गुजारा चलाते हैं। जसमा ने पानी का पात्र दूसरी बार

देते हुए नजर दूसरी तरफ रखकर जवाब दिया।

महाराज—परन्तु ऐसी धूप में ?

जसमा—नही तो पूरा कैसे पडे ? बोलते-बोलते अधिक देरी हो जाने से डर से जसमा ने खुदती हुई जमीन पर दृष्टी डाली और अपने पति को काम करता हुआ देखकर झोलो में सोते हुए बालक को झूला देती हुई चली गई। महाराज देखते रह गए। पर महाराज की इच्छा उसे प्राप्त करने के लिए बलवती हो उठी।

जिस मनुष्य के हृदय में किसी को देखकर विकार उत्पन्न हो जाता है उसे वही धुन लग जाती है कि इसे मैं कैसे प्राप्त करू और अपनी प्रेयसी बनाऊँ ? उस लालसा के वेग मे वह अपना आपा भी भूल जाता है। अपनी एव पूर्वजों की इज्जत का जरा भी खयाल नहीं रखता हुआ ऐसे-ऐसे प्रपच रचता है जिन्हें समझना बडी ही कठिन बात है। इस फन्दे में फसा हुआ मनुष्य सभी कुकृत्य कर अपना इहलोक और परलोक दोनों ही बिगाड लेता है।

जिस दिन महाराज ने जसमा के हाथ से पानी पीया था उस दिन के बाद से तो बराबर तालाब पर जाना और प्रसग पाकर उससे बात-चीत कर उसे अपनाना महाराज का ध्येय बन चुका था। एक दिन इसी प्रकार वे पेड के नीचे खडे थे। जसमा ने आकर बच्चे को झुलाया और चलने लगी कि पीछे से धीमी आवाज आई—'जसमा !' जसमा ने पीछे फिर कर देखा तो महाराज थे। वह चुपचाप खडी रह गई।

महाराज—जसमा ! ऐसी मेहनत करने के लिए तू बनी है, यह मैं नही मानता। फिर क्यों इस तरह तू जीवन बरबाद कर रही है ?

जसमा—क्या करें महाराज ! हमारा धन्धा ही ऐसा है।

जसमा सकुचाते हुए बोली।

महाराज – मैं तुम्हारे लिए यह सुविधा कर देता हू कि तुम आज से तालाब के किनारे पर बैठी हुई अपने बच्चे का पालन किया करो। मिट्टी मत उठाया करो। मिट्टी उठाने वाली तो बहुत हैं।

जसमा—आप मालिक हैं इसलिए ऐसी कृपा दिखाते हैं। परन्तु मैं विना मेहनत किये हराम का खाना नही चाहती। मेहनत करना मैं अच्छा समझती हू।

महाराज—जसमा! तेरा शरीर अत्यन्त सुकुमार है मिट्टी ढोने लायक नही। इसकी कदर तो कद्रदान ही कर सकता है। तू मिट्टी ढोक इसका सत्यानाश मत कर।

जसमा—महाराज! विना मेहनत किए बैठे बैठे खाने से कई प्रकार के रोग हो जाते हैं। मुझे भी कोई रोग हो जाए और डाक्टर लोग फीस मांगें तो हम मजदूर कहा से लाए? हम मजदूरों के पास धन कहा है?

हिस्ट्रीया का रोग, जिसे सयानी औरतें भेडा-चेडा कहती हैं और जिसके हो जाने पर अक्सर देवी-देवताओं और पीरों के स्थान पर ले जाना पडता है वह प्रायः परिश्रम न करते हुए बैठे-बैठे खाने से ही होता है। यह रोग जितना गरीब स्त्रियो को नहीं होता उतना धनवान् स्त्रियो को होता है। जहाँ परिश्रम नही किया जाता वहा यह रोग जल्दी लागू होता है। फिर डाक्टरों की हाजरी और देवी-देवताओं की मिन्नतें करनी पड़ती हैं। महाराज, मैं ऐसा नहीं करना चाहती। मेरा काम अच्छी तरह चल रहा है, परिश्रम करने से मेरा शरीर स्वस्थ रहता है आप फिक्र न करें।

महाराज—जसमा! मैं फिर कहता हू कि तू जगल मे बसने योग्य नहीं है। देख तो यह तेरा कोमल शरीर क्या जगल

में भटकने योग्य है ? तू मेरे शहर में चल ! 'पाटन' इस समय स्वर्ग बन रहा है और मैं तुझे रहने के लिए अत्यन्त सुन्दर जगह दिलाऊंगा ।

जसमा समझ गई कि राजा ने पहला दाव न चलने से दूसरा पासा फैंका है और मुझे लोभ दिया जा रहा है ।

जसमा—महाराज, कहां तो यह आनन्ददायक जगल और कहां गन्दा नगर ? जिस प्रकार गर्मी के मारे कीड़े मकोडे भूमि में से निकल कर रेंगते हैं उसी प्रकार शहरो के तग मार्ग में मनुष्य फिरते हैं । वहा अच्छी तरह चलने के लिए मार्ग भी तो पूरा नहीं मिलता । जगल मे तो सदा ही मगल है । ऐसी शुद्ध और स्वच्छ वायु और विस्तृत स्थान शहरों मे कहा है ?

महाराजा—जसमा ! तेरी बुद्धि बिगडी हुई है । गवारों को गवारपन ही अच्छा लगता है । इसी से तू ऐसी बातें कर रही है । जगल की रहने वाली तू शहर का मजा क्या समझे ! चल मैं तुझे बडे आराम से महल में रखू गा । महाराज ने डाट-डपट कर फिर लालच दिखाया ।

जसमा—चाहे आप मेरी ढिठाई समझें या गवारपन, सच्ची बात तो यह है कि जैसा आपको नगर प्रिय है वैसा मुझे जगल प्रिय है । शहर के आदमी जैसे मन के मैले होते हैं वैसे जगल के नही । बडे-बडे शहर आज पाप के किले बने हैं । चोर, जुआरी, व्यभिचारी, नशेबाज आदि आदि सभी तरह के मनुष्य शहरो में होते हैं । देहातो में ये बातें अधिकाश नहीं होती हैं । यहां किसी का सोना-चांदी का जेवर भी पडा रह जाय तो देहाती लोग उसके मालिक को ढूढकर उसे पहुचाने की चेष्टा करेंगे । यह बात शहरों में नहीं है । शहरो के लोग तो छोटी से छोटी वस्तु के लिए भी परस्पर हत्या करने से नहीं चूकते हैं ।

महाराज—तेरा पति कहा है जिस पर तू इतना गर्व कर

रही है ? जरा मैं भी तो देखूं वह कैसा है ?

जसमा—वह जो कमर कस कर काम कर रहा है और जिसके सिर पर फूल का गुच्छा है ।

महाराज—क्या तालाव में ही है ?

हां कहकर जसमा झूले की तरफ गई और बच्चे को झूला देकर अपने काम में लगने के लिए चली । मगर पीछे से महाराज ने आंचल पकड रखा था जिसे देखकर जसमा बोली—महाराज, यह क्या ?

महाराज—क्या वही तेरा पति है ? कहा तू और कहां वह ? 'कौए के गले मे रत्नो की माला ?' उस मिट्टी खोदने वाले के पीछे तू इतनी इतरा रही है और मेरा निरादर कर रही है । हसनी कौए के पास नही सोती । इसलिए हमनी को कौए के पास छोडना ठीक नहीं । तू महल मे चल । महल में ही शोभा देगी। देख ! तेरे पति को तेरे ऊपर विश्वास नही है । वह तेरी तरफ टेढा-टेढा देख रहा है । उसका देखने का ढग ही बतला रहा है कि तुझ पर न तो उसका विश्वास ही है और न प्रेम ही । ऐसा आदमी तेरी कदर क्या जाने ? ऐसे अविश्वास पति के पास रहना क्या तुझे उचित है ।

जसमा—महाराज ! सच्चे को ससार में जरा भी भय नहीं है । मेरे पति का मेरे प्रति पूर्ण विश्वास है । मैं अपने पति के सिवाय अन्य पुरुषों को भाई मानती हूं । यह अविश्वास तो आप लोगो मे होता है । मेरे मन में यदि पति के प्रति अविश्वास हो तो पति को मेरे प्रति अविश्वास हो । मेरा पति मुझे नहीं देख रहा है । पर आपकी बिगडी हुई दृष्टि को देख रहा है । महाराज, हम तो मजदूर हैं । मिट्टी उठाए बिना कैसे काम चलेगा ? पर आपके महल में रानियों की क्या कमी है ?

महाराज—पर एक बार जसमा ! तू महल देख तो आ ।

जसमा—महाराज, पाटन के महल में रहने की अपेक्षा मैं अपने झोंपड़े को किसी तरह कम नहीं समझती। राजा की रानी होने की अपेक्षा मैं एक ओड की स्त्री कहलाना अधिक पसन्द करती हू। आप सरीखे का क्या भरोसा? आज आपने मेरे साथ ऐसी बात की, कल आपकी नजर दूसरी तरफ झुकेगी। वही गति रही तो पाटन के नरेश पर कौन विश्वास करेगा? इसलिए आप यहाँ से पधारिए और महलो मे रहकर आपकी रानियो को ही अपने महल के सुख और वैभव दीजिए। गुजरात के अन्दर ऐसे भी राजा होते हैं यह आज मालूम हुआ। और जसमा तेजी से चल दी।

महाराज क्रोधोन्मत हो उठे। इसके बाद की कथा तो बहुत लम्बी है। राजा ने ओड लोगों पर अनेको अत्याचार किये, जसमा को कैद किया। पर अनेको कष्ट सहन करने के बाद एक दिन मौका—पाकर ओड लोगो का सरदार और उसकी पत्नी जसमा कुछ लोगो को साथ लेकर भाग निकले। भागने की रातो-रात कोशिश की मगर अनिष्ट तो सिर पर मडरा ही रहा था। अत. विपत्ति ने पीछा नहीं छोडा। राजा को पता लग गया और वह कुछ सशस्त्र सैनिको को साथ ले इन लोगों के पीछे भागे। कुछ दूर जाने पर ये लोग पकड लिये गए।

वीर ओडों ने व्यूह रच लिया। बीच मे जसमा थी। राजा के सैनिक शस्त्रों से सुसज्जित थे, ओड़ों के पास भी शस्त्र थे पर नाम मात्र के। एक आर्य महिला की प्रतिष्ठा के खातिर उन्होंने मरने का भय और जीवन की आशा छोड दी थी।

महाराज सिद्धराज ने नजदीक जाकर कहा—तुम लोग मरने को तैयार तो हुए हो पर जीना चाहते हो तो जसमा को मुझे सोप दो और सब चले जाओ। किसी का बाल भी बाका नही होगा। पर सब ओडों ने महाराज का तिरस्कार किया।

सिद्धराज आग-बबूला हो गए और आक्रमण करने का

हुक्म दिया। टपाटप नि.शस्त्र ओड लोग धरती चाटने लगे। कितने ही मरे और कुछ भाग निकले और अन्त मे ओडो का नायक टीकम, जसमा का प्रिय पति भी मारा गया। जीवित रही केवल जसमा।

सिद्धराज ने हुक्म दिया और सैनिकों ने शस्त्र गिरा दिये। रक्त-रंजित भूमि पर जसमा निर्भीक खडी थी। महाराज घोडे से उत्तर कर जसमा के पास पहुँच गए, बोले– जसमा!

जसमा—महाराज, यह आशा छोड ही दीजिए। आपकी इच्छा पूरी होने वाली नही है।

राजा—जसमा, तू देख तो सही मेरा दरबार कितना भव्य है! ये महल कैसे बने हुए हैं! कितने अच्छे बाग बगीचे हैं! तू इन सबकी स्वामिनी होगी। महाराज ने लालच दिखाया।

जसमा—महाराज, जगल के प्राकृतिक दृश्य के सामने आपके ये बाग-बगीचे सब धूल हैं। जिस तरह सूर्य के सामने तारे कान्तिहीन हो जाते हैं उसी तरह प्राकृतिक जगल के सामने आपके बगीचे कुछ नहीं। जो जगल में नही रह सकता वह भले ही बाग मे रहे। मुझे तो इन बागो और महलो की जरूरत नही है।

महाराजा जसमा! तुझ में सोचने, विचारने व अपना लाभालाभ देखने की शक्ति नही है। इन महलो में तुझे मृदग के मीठे सुरीले स्वर और गायन की मधुर तान सुनने को मिलेगी।

जसमा—महाराज! आपके गायन और बाजो में विष भरा है। मुझे ऐसा स्वर अच्छा नहीं लगता। मेरा मन तो जंगल में रहने वाले मोर, पपीहे, और कोयल की आवाजो से ही प्रसन्न रहता है। मेरे कान इन्ही की टेर सुनने को व्याकुल रहते हैं।

महाराज—जसमा, कहा तू सूखी-रूखी रोटी खाकर शरीर सत्यानाश करती रही है। मेरे महलों म चलकर देख वहां तेरे लिए अनेक तरह के मेवा-मिष्टान्न तैयार है जिनसे तेरा शरीर

चमक उठेगा।

जसमा– महाराज! आपके महल का आराम तो आपकी रानियों को ही मुबारिक हो। मैंने तो घाट खा रखी है। मेरे पेट मे तो पकवान पच ही नही सकते। मेरे लिए तो राब व दलिया ही अच्छा है। महाराज! आप तो पिता तुल्य हैं, प्रजा के रक्षक हैं, गुर्जर सम्राट् को ऐसा करना शोभा देता है?

महाराज—जसमा, यह सुनने का मुझे अवकाश नहीं। यह तो मैंने बहुत सुन रखा है। यदि तू हा कहती है तो मैं आनन्द से तुझे महल मे रखने को तैयार हू, और अगर इनकार करेगी तो मैं वापिस लौटने वाला नही हू, तुझे जबर्दस्ती चलना पडेगा।

जसमा– अपना बल आजमा लीजिये। मैं भी देखती हूं कि आप किस तरह जबर्दस्ती ले चलते हैं। जसमा जोश पूर्वक बोली—महाराज! जाकर पाटन की पटरानी तो दूसरी ढूढो।

महाराज—जसमा, तुझे खबर है कि तू निशस्त्र है।

जसमा—कोई परवाह नही।

सिद्धराज चिढ गए और सैनिको की तरफ मुह करके बोले—तुम लोग दूर चले जाओ। सैनिको ने आज्ञा पालन की। सिद्धराज बिलकुल जसमा के पास आए और बोले—क्यो अभी और चमत्कार देखना है?

जसमा—महाराज, दूर रहना।

महाराज—क्यों?

जसमा– मैं पाटन चलने को तैयार हू। जसमा ने युक्ति का प्रयोग किया।

सिद्धराज आश्चर्य-मुग्ध हो गया और कहने लगा—पहले क्यो नहीं समझी!

जसमा अनसुनी करती हुई बोली—परन्तु मुझे पटना मे ले जाकर करोगे क्या?

सिद्धराज—गुर्जर देश की महारानी बनाऊँगा।

जसमा—महारानी ? महारानी तो बनाना अपनी रानी को। मैं महारानी बनकर क्या करूगी ? जसमा ने अपनी आखो को स्थिर करते हुए कहा और साथ ही महाराज को असावधान देखकर छलाग मार कर महाराजा के हाथ से कटार छुडाने के लिए हाथ मारा। महाराज जसमा का हाथ अलग करते हैं तब तक तो कटार जसमा के हाथ में पहुच चुकी थी। वह गरज कर बोली—महाराज ! चौंकना मत, मैं अभी तुम्हारे सैनिकों के देखते-देखते तुम्हारा खून पी सकती हूँ और तुम्हारे किए का बदला ले सकती हू। परन्तु मैं ऐसा करना नही चाहती। मैं भले ही विधवा हुई पर गुर्जर भूमि को विधवा नही बनाना चाहती"। यह कहने के साथ ही जसमा कटार उठाती हुई बोली—तो ! जिस रूप के कारण तुमने मेरा परिवार नष्ट किया है उसका खोखा सम्हालो और जसमा ने कटार हृदय मे भोंक ली।

वीरागना सती जसमा ने और कोई उपाय न देखकर वीरता का परिचय देते हुए अपना बलिदान देकर ससार के सामने स्त्री-धर्म का उच्च आदर्श स्थापित किया है।

जसमा का जीवन तो पवित्र था ही परन्तु उसमे इन्द्रिय-सयम और मनोबल भी उच्च कोटी का था। महाराजा ने उसे लुभाने के लिए अनेको प्रयत्न किये। खान-पान, वस्त्राभूषण गान-तान, महलादि के अनेकों प्रलोभन दिये परन्तु पतिव्रता इन सब चीजों को अपने जीवन को पवित्र बनाए रखने मे विघ्नस्वरूप समझती हैं, यह जसमा ने अच्छी तरह बता दिया।

इसके विपरीत आज की अनेक नारिया उत्तम-उत्तम भोजन, उत्तम वस्त्राभूषण, उत्तम रहन-सहन के पीछे बावली होकर मौज-शौक, ऐश-आराम को ही सब कुछ समझकर अपने धर्म कर्म को भूल जाती हैं और अपनी जाति, समाज व देश को कलकित करने

की कोशिश करती है। उनके लिए जसमा का चरित्र एक पाठ है, उज्ज्वल उदाहरण है। जसमा ने बता दिया है कि छोटी से छोटी जाति मे भी नारी सती, पतिव्रता और वीरांगना हो सकती है और जबकि ऐसी छोटी जाति में भी ऐसे नारीरत्न होते हैं तो बड़े-बड़े घराने अत्यन्त ऊचे ऊचे कहलाने वाले कुल—खानदान हैं, उनमें प्रत्येक नारी को कैसा होना चाहिए, यह स्पष्ट है।

पर पहले के समय की अपेक्षा भी हमारा आज का जीवन अत्यन्त दूषित हो गया है। उस पर भी शहरों का वातावरण तो गन्दा है ही पर गांवो में भी इसका असर होना शुरू हो गया है। पहले जहा किसी गांव के एक घर की लडकी को समस्त गांव वाले अपनी बेटी मानते थे और बहू को अपनी बहू, वहा आज एक ही घर मे भी एक दूसरे के सम्बन्ध को पवित्र बनाए रखना कठिन हो गया है। फिर भी आज भी सीता, अजना, सावित्री सरीखी नारिया मिल सकती हैं पर राम, पवन व सत्यवान जैसों का तो कहीं दर्शन भी नही हो सकता।

पुरुष जाति मे स्वार्थ की भावना पूर्ण रूप से घर कर गई है। आज का प्रत्येक पुरुष तो अपनी पत्नी को पूर्ण पतिव्रता देखना चाहता है पर अपने लिए पत्नीव्रत का नाम आते ही नाक भौं चढ़ाता है। पत्नी को श्मशान मे फूंककर आ भी नही पाते और दूसरी शादी के लिए उतावले हो उठते हैं। यह स्वार्थवृत्ति नहीं नही तो और क्या है? प्राचीन समय में जबकि रामचन्द्र जी ने सीता के अभाव में किसी तरह भी दूसरी पत्नी न लाकर अश्वमेध यज्ञ में सीता की स्वर्णमूर्ति ही बनवा कर सीता की पूर्ति की थी, क्योंकि रामचन्द्र जी एक पत्नीव्रत के व्रती थे। उसी प्रकार यदि आज भी पतिव्रत की ही तरह पत्नीव्रत को भी उच्च स्थान नहीं दिया जाता तो स्त्री-पुरुषों का जीवन बहुत आदर्शमय नहीं हो सकता।

आजकल तो स्त्रियों की समस्या को लेकर भारी आन्दोलन

खडा हो रहा है। स्त्री सुधार के लिए गर्मागर्म व्याख्यान दिये जा रहे हैं। बडे-बडे अखबारों और पुस्तकों मे बहस छिड रही है। स्त्रियो को बराबरी के अधिकार दिलाने को उतावले हो रहे हैं। पर पुरुष यह नही देखते कि हम भावनाओ के वेग मे बहकर गलत रास्ते पर जा रहे हैं। स्त्रियां अपने उद्धार आन्दोलन से फायदा उठाकर पुरुषो के जुल्मो और अत्याचारों को गिन-गिन कर नारी और पुरुष के बीच के अन्तर को और खिसकाए चली जा रही हैं।

यह अनुचित है। स्त्रियो को गलत मार्ग पर चलाने की अपेक्षा उचित यही है कि पुरुष अपने सच्चे कर्तव्य और आदर्श को ख्याल मे रखकर राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर आदि को अपने जीवन मे पथ प्रदर्शक समझें और स्त्रियां सीता, सावित्री, अजना, दमयती, मीरा आदि को आदर्श बनावें। तथा एक दूसरे के प्रति मधुरता, सरलता, सहानुभूति भरा व्यवहार रखकर एक दूसरे के जीवन को ऊचा उठाए। तथा एक दूसरे के दोषो को निकाल कर गिनाने की अपेक्षा एक दूसरे के सुख-दुख को समझने की चेष्टा करें।

आजकल का समय कुछ विचित्र-सा ही है। अपने कौटुम्बिक जीवन को मधुर बनाने की तरफ तो किसी का ध्यान नहीं है पर जाति, समाज और देश के उत्थान के लिए सभी प्रयत्न कर रहे हैं। यह तो वही हुआ जैसे जड को न सीचकर पत्तियो मे पानी देना। इसका नाम उन्नति नही है। समाज का उत्थान इस प्रकार नही हो सकता। कारण कि जिस नीव पर हम समाजोद्धार के भव्य महल का सुनहरा स्वप्न देख रहे हैं वह नींव खराब है। समाज की नीव कुटुम्ब है। अनेको समाज-सेवकों, नेताओं के घरेलू जीवन अत्यन्त दुखपूर्ण होते हैं। पति-पत्नी में जैसा परस्पर सम्बन्ध होना चाहिए वैसा कभी नही रहता। और यही वजह है कि स्त्री का सहधर्मिणी नाम बिलकुल उल्टा बनता जा रहा है। पुरुष

जमाने भर के कामों मे इस प्रकार डूबे रहते हैं कि जरा भी वे घर का ख्याल नही रखते । और स्त्रिया पति का प्रेम न पाकर, वल्कि समानता का खिताब पाकर पुरुषों के विरुद्ध शिकायतें दर्ज किया करती हैं ।

समाज की उन्नति की जड सुखमय, शान्त और संतोषयुक्त गृह ही है और यह तभी हो सकता है जब कि पति-पत्नी एक दूसरे के अन्दर खो जाने की कोशिश करें । और एक ही नहीं हर घर मे इसी प्रकार सुखमय दाम्पत्य जीवन बिताने की कोशिश की जाय । एक के ही किये यह नही हो सकता । कहते हैं—

एक बार अकबर ने बावडी खुदवाई । पानी उसमे बिलकुल नहीं था । बीरबल ने उसे सलाह दी कि शहर भर से कह दिया जाय कि प्रत्येक व्यक्ति रात को इस बावडी मे एक-एक घडा दूध डाल जाय । ऐसा ही किया गया । शहर भर में मुनादी करवा दी गई कि रात को हर एक को इसमे एक घडा दूध छोड देना पडेगा । रात होने पर प्रत्येक ने यह सोचा कि सब तो दूध डालेंगे ही, यदि मैं चुपके से एक घडा पानी डाल आऊ तो उतने सारे दूध में क्या मालूम पडेगा ? सब ने इसी प्रकार किया । सुबह देखा गया तो बावडी पानी से भरी थी । दूध का तो नाम भी नही था ।

इसी प्रकार पति और पत्नी दोनों के सहयोग से घर का सुधार और सभी घरो से समाज का और समाज से देश का सुधार होना निश्चित है । पर समाज के सुधार से यह तात्पर्य हरगिज नहीं है कि स्त्रिया पढ़-लिखकर ही एकदम अप टू डेट हो जावें । पुरुषों की गलतियां ढूढ-ढूढ कर अपनी गलतियो को सुधारने की अपेक्षा बदला लेने की भावना लिए हुए बराबरी का दावा करती जाए । नारी घर की देवी है । पुराणादि में पति को देवता

बताया गया है, पर इसका यह मतलब नहीं कि पत्नी देवी नहीं है। हमारे गृहों में तो हर बातों मे पत्नी का महत्व और जिम्मेवारी पति से भी अधिक है क्योंकि स्त्री ने ही पुरुष को जन्म दिया है। अत' यह विचार करना कि पुरुष जैसा करते हैं, हम भी वही क्यों न करें, अनुचित है। यह कोई वजह नही कि पुरुष गिर गए है और गिरते जा रहे हैं तो नारियो को भी गिरते ही जाना चाहिए। नहीं! बल्कि यह सोचना चाहिए कि स्त्री ही समाज का निर्माण करने वाली है क्योंकि वह पुरुष का निर्माण करती है। अत एक पुरुष के ऊँचे उठने अथवा गिरने से समाज में जितनी खराबी नही आती उतनी एक स्त्री के गिरने पर आती है। इसलिए आज, जबकि पुरुषो ने अपना पुरातन तेज, गौरव खो दिया है, तब तो नारी का अनिवार्य फर्ज है कि वह अपने जीवन को पवित्र रखते हुए अपने त्याग, सेवा कष्टसहिष्णुता आदि से सच्चे नारीत्व का, सच्चे दाम्पत्य का आदर्श उपस्थित कर अपना, अपने पति का, व आगे चलकर अपनी सन्तान का जीवन उज्ज्वल बनाए।

हिन्दू नारी का सारा जीवन ही कष्ट सहिष्णुता से भरा हुआ, त्यागमय और सेवामय होता है। दाम्पत्य जीवन में सेवा बडी ऊची और कल्याणकारी वस्तु है। इससे चाहे दूसरो को पूर्ण खुशी न भी हो पर अपना मन स्वय ही बड़ा पवित्र और निर्मल हो जाता है। दाम्पत्य जीवन को मधुर और सुखी बनाने के लिए अथक परिश्रम और सेवा की जरूरत पडती है उसके बिना नारी का काम नही चल सकता। और वह भी सिर्फ पति की ही नहीं अपितु अपने कुटुम्ब की सेवा का भी जबर्दस्त बोझ अकेली नारी के कन्धों पर रहता है। पति के सारे कुटुम्ब से कटी-कटी रहने वाली पत्नी भले ही पति की प्रसन्नता के लिए प्रयत्न करती रहे लेकिन वह उसका परिश्रम पति के आनन्द को बढा नहीं

सकता। धीरे धीरे वह पत्नी के प्रति उदासीन होता जायगा और सुखमय दाम्पत्य मे भी कलह का अकुर अपनी जड जमाने में समर्थ हो जायगा।

अनेको स्त्रियाँ आजकल इतनी ईर्ष्यालु होती हैं कि अगर घर में उनका पति कमाऊ होता है तो सास-ससुर देवर-जेठ आदि सभी को दिन-रात व्यग-बाणो से छेदा करती हैं। जिसका फल कभी-कभी तो अत्यन्त ही दुखदायी हो जाता है और दाम्पत्य सुख को एकदम नष्ट कर देना है। इसलिए जरूरी है कि हर पत्नी को सदा यह ध्यान मे रखना चाहिए कि सास ने मेरे पति के लिए अनेको कष्ट सहे हैं। उसे जन्म दिया है। अत. पति जैसा भी है, जो कुछ भी कमाता है, उसमे सास का सर्व प्रथम और बडा भारी हिस्सा है। क्योंकि पति को अच्छा या बुरा बनाने का श्रेय भी तो सास को ही है। इसलिए प्रत्येक पत्नी को पति के साथ ही सास-ससुर एव समस्त कुटुम्बीजनों को सुख पहुचाने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए, भले ही इसमें स्वय को कुछ कष्ट हो पर उसे अपने कष्ट की परवाह न करके भी और सबको ज्यादा से ज्यादा सुख मिले, मन मे यही भावना हमेशा रखना व इसके लिए प्रयत्न करना चाहिए, दाम्पत्य सुख की यह सबसे बडी और मजबूत कुजी है।

दाम्पत्य सुख मे सबसे मुख्य बात यही है कि पति का पत्नी में गहरा स्नेह व पत्नी की पति मे अत्यन्त गहरी श्रद्धा हो, ऐसा अगर नही होगा तो दपती को गृहस्थी मे कभी पूर्ण सुख का अनुभव नहीं हो सकता। क्योंकि स्त्री के मन के भाव ही उसे सुखमय या दुखमय बना सकते है। नारी जाति अत्यन्त कोमल और भोली होती है। पति का थोडा सा प्रेम पाने पर ही बहुत अधिक सुख का अनुभव करती है, एव थोडा-सा रूखापन पाने पर बहुत अधिक दुख का। हालांकि वह यह कहती किसी से नहीं,

मूक रहकर ही सब कुछ सहन करती है, पर फिर भी मन पर तो सब भावनाओ का असर होता है। इसलिए यह जरूरी है कि प्रत्येक बहिन को इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि मन के बांधे हुए हवाई किले सभी नही बने रहते। अत मन मे कल्पना किये हुए पति, घर-द्वार सभी कुछ वैसा ही न मिलने पर भी कभी उद्विग्न और निराश न हो।

बहुत कुछ दुख को घटाना बढाना तो मनोभाव पर भी निर्भर है। अतः जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मनोनुकूल वातावरण न मिलने पर भी जो कुछ मिले उसी के सहारे जीवन निर्माण करने की कोशिश करनी चाहिए। सुख की सबसे बडी कुंजी सतोप है। सतोष का फल सदा मीठा होता है यह सत्य है कि अधिक सुख प्राप्त करने का का यत्न सभी स्त्रियाँ करती हैं पर अधिक सुख न मिलने पर भी जो कुछ मिला है उस पर संतोप करने वाली स्त्री ही सुखी हो सकती है। किसी भी हालत मे हो पर पति के सुख मे सुख मानने वाली व हर अवस्था में पति का कल्याण चाहने वाली स्त्री ही सच्चे दाम्पत्य सुख का अनुभव कर सकती है व करा सकती है।

प्राचीन काल का दाम्पत्य सम्बन्ध कैसा आदर्श था! पत्नी अपने आपको पति मे विलीन कर देती थी और पति उसे अपन अर्धांगना, अपनी शक्ति, अपनी सखी और अपनी हृदय स्वामिनी समझता था! एक पति था, दूसरी पत्नी थी, पुरुप स्वामी और स्त्री स्वामिनी थी। एक का दूसरे के प्रति समर्पण का भाव था। वहाँ अधिकारों की मांग नही थी, सिर्फ समर्पण था। जहाँ दो हृदय मिलकर एक हो जाते हैं वहा एक को हक मागने का और दूसरे को हक देने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। ऐसा आदर्श दाम्पत्य सम्बन्ध किसी समय भारतवर्ष मे था। आज विदेशो के अनुकरण पर जहा दाम्पत्य सम्बन्ध नाम मात्र का है—भारत में भी

विकृति आ गई है। नतीजा यह हुआ है कि पति-पत्नी का अद्वैत भाव नष्ट होता जा रहा है और राजकीय कानूनों के सहारे समानाधिकार की स्थापना की जा रही है ! आज की पढ़ी-लिखी स्त्री कहती है—

मैं अंग्रेजी पढ गई सैंया।
रोटी नही पकाऊंगी ॥

शिक्षा का परिणाम यह निकला है ! पहले की स्त्रिया प्रायः सब काम अपने हाथो से करती थी। आजकल सभी काम नौकरों द्वारा कराये जाते हैं। परिणाम यह हुआ कि डाक्टरो की बाढ आ गई और स्त्रियो को डाकिन-भूत लगने लगे। स्त्रियों के निकम्मे रहने के कारण हिस्टीरिया आदि रोग होते हैं और डाकिन-भूत के नाम पर लोग ठगाई करते हैं। अगर स्त्री को मार्ग पर चलना है तो इन सब बुराइयों को छोडना पडेगा।

कई एक भोली बहिनें हाथ से पीसने में पाप लगना समझती हैं और दूसरे से पिसवा लेने मे पाप से बच जाने की कल्पना करती है। पीसने में आरम्भ तो होता ही है लेकिन अपने हाथ से यतना और विवेक के काम किया जाय तो बहुत से निरर्थक पापों से बचाव भी हो सकता है। शक्ति होते हुए दूसरे से काम कराना एक प्रकार की कायरता है और कहना चाहिए कि अपनी शक्ति का विनाश करना है। इस प्रकार का परावलम्बी जीवन बिताना अपनी शक्ति की घोर अवहेलना करना है।

पग धरिता सतोष ने वरया ने कडा।
हिया कठ मे खरा हार नो सर्या घरा ॥
लोग दोई ने सुधार वारा चूडला करा।
मान राखणो वडा रो सिर बोर गूंथ ला ॥ वेना० ॥

बुद्धिमती स्त्रियाँ कहती हैं—'जिस प्रकार सीता ने पैर के आभूषण उतार दिये हैं, उसी प्रकार अगर हम भी दिखावे के लिए पैर के गहने उतार दें तो इससे कोई लाभ नही होगा। पैर के

आभूषण पैर में भले ही पड़े रहें, मगर एक शिक्षा याद रखनी चाहिए। अगर सीता मे धैर्य और संतोष न होता तो वह वन में जाने को तैयार न होती। सीता में कितना धैर्य और कितना संतोष है कि वह वन की विपदाओं की अवगणना करके और राजकीय वैभव को ठुकरा करके पति के पीछे-पीछे चली जा रही है! हमे सीता के चरित्र से इस धैर्य और संतोप की शिक्षा लेनी है। यह गुण न हुए तो आभूषणो को धिक्कार है।

जहां ज्यादा गहने हैं वहा धैर्य की और संतोष की उतनी ही कमी है। वन-वासिनी भीलनी पीतल के गहने पहनती है और रूखा-सूखा भोजन करती है, फिर भी उसके चेहरे पर जैसी प्रसन्नता और स्वस्थता दिखाई देगी, बड़े घर की महिलाओ में वह शायद ही कहीं दृष्टिगोचर हो! भीलनी जिस दिन बालक को जन्म देती है उसी दिन उसे झोंपड़ी में रखकर लकड़ी बेचने चल देती है। यह सब किसका प्रताप है? संतोष और धैर्य की जिन्दगी साक्षात् वरदान है। इसी से दाम्पत्य सम्बन्ध मधुर बनता है।

आपने पत्नी का पाणिग्रहण धर्म-पालन के लिए किया है। इसी प्रकार स्त्री ने भी आपका। जो नर या नारी इसी उद्देश्य को भूल कर खान-पान और भोग-विलास में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते हैं वे धर्म के पति-पत्नी नहीं वरन् पाप के पति-पत्नी हैं।

आज राग के वश होकर पति पत्नी न जाने कैसी-कैसी अनीति का पोषण कर रहे हैं। पर प्राचीन साहित्य देखने से स्पष्ट विदित होता है कि उस समय पति-पत्नी अलग-अलग कमरो मे सोते थे—एक ही जगह नहीं सोते थे। पर आज की स्थिति कितनी दयनीय है! आज अलग-अलग कमरों मे सोना तो दूर रहा अलग-अलग बिस्तर पर भी बहुत कम पति-पत्नी सोते हैं। इस कारण

विषय-वासना को कितना वेग मिलता है यह संक्षेप में नहीं बताया जा सकता। अग्नि पर घी डालने से वह बिना पिघले नही रहता, एक ही शय्या पर शयन करने से अनेक प्रकार की बुराइयां उत्पन्न होती हैं। वह बुराइयां इतनी घातक होती हैं कि उनसे न केवल धार्मिक जीवन निर्माल्य बनता है बरन् व्यावहारिक जीवन भी निकम्मा बन जाता है।

लग्न के समय वर-वधू अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं। पति के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करने के पश्चात एक सच्ची आर्य महिला अपने प्राणो का उत्सर्ग कर देती है पर की हुई प्रतिज्ञा से विमुख नही होती।

पुरुष भी पत्नी के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं परन्तु जो कर्त्तव्य स्त्री का माना जाता है वही क्या पुरुष का भी समझा जाता है?

जैसे सदाचारिणी स्त्री परपुरुष को पिता एव भाई के समान मानती है, उसी प्रकार सदाचारशील पुरुष वही है जो परस्त्री को माता-बहन की दृष्टि से देखते हैं। 'पर ती लखि जे धरती निरखे, धनि हैं धनि हैं धनि हैं नर ते।'

पति-पत्नी सम्बन्ध की विडम्बना देखकर किसका हृदय आहत नहीं होगा? जिन्होंने पति और पत्नी बनने का उत्तरदायित्व स्वेच्छा से अपने सिर लिया है वह भी पति-पत्नी के कर्त्तव्य को न समझे, यह कितने खेद की बात है। पति का कर्त्तव्य पत्नी को स्वादिष्ट भोजन देना, रग बिरगे कपडे देकर तितली के समान बना देना या मूल्यवान् आभूषणों से गुडिया के समान सजा देना नहीं है। इसी प्रकार पत्नी का कर्त्तव्य पति को सुस्वादु भोजन बना कर परोस देने में समाप्त नही होता। वासना की पूर्ति का साधन बनना भी स्त्री का कर्त्तव्य नही है। ऐसे कार्यों के लिए ही दाम्पत्य सम्बन्ध नही है। दम्पति का सम्बन्ध एक दूसरे को

सहायता देकर आत्मकल्याण की साधना में समर्थ बनाने के लिए है। जहा इस उद्देश्य की पूर्ति होती है वही सात्विक दाम्पत्य समझा जा सकता है।

६—मातृत्व

१—माता की महिमा

किसी मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण जितनी आसानी से तथा सफलता पूर्वक माता कर सकती है, उतना और कोई नही। बच्चे के लिए माता की वात्सल्यामयी गोद ही सबसे महत्वपूर्ण शिक्षिका है। इसी पवित्र स्नेहधारा से मनुष्य प्रेम तथा मानवता का पहला सबक ग्रहण करता है। कौटुम्बिक वातावरण में बच्चा प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से अनेक गुण-दोष ग्रहण करता है, जो उसके व्यक्तित्व के निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। पुराणादि मे बताया गया है कि बच्चा गर्भावस्था से ही माता के रहन-सहन, आचार-विचार, गुण-दोष, खान-पान आदि के प्रभाव को अपनाया करता है और वही आगे जाकर उसके जीवन मे समय-समय पर प्रगट होता है। महाभारत मे अभिमन्यु के लिए बताया गया है कि उसने माँ के पेट में रहते हुए ही किसी दिन पिता के द्वारा मां को बताए जाने पर चक्रव्यूह तोडने का ज्ञान सीख लिया था। इससे सिद्ध होता है कि अप्रत्यक्ष रूप से भी माता-पिता के मनोभावों से ही बच्चे के मनोभावों का निर्माण और विकास

होता है ।

हमारे इतिहास में ऐसे सैकड़ों उदाहरण अंकित हैं जिनमें यह बताया है कि अनेकों महान् पुरुषों का जीवन-निर्माण उनकी माताओं के द्वारा ही किया गया है । रानी कौशल्या के हृदय की उदारता, वत्सलता, दयालुता रामचन्द्र जी के जीवन में भरी गई । जीजा बाई, जो हिन्दू जाति के गौरव व प्रतिष्ठा के लिए मर-मिटने को निरन्तर तत्पर रहती थीं, अपने बेटे शिवाजी के जीवन निर्माण में साधन हुई । उन्होने बचपन से ही शिवाजी को रामायण-महाभारत आदि की कथाए सुना-सुना कर उनके शिशु-हृदय में ओज और वीरत्व का बिगुल फूकना शुरू कर दिया था । देश और जाति की रक्षा प्राण देकर भी करने की भावना कूट-कूट कर भर दी थी । उसी वीर मां की शिक्षा का फल था कि उसके वीर बेटे शिवा ने हिन्दू साम्राज्य की नींव रखकर हिन्दू जाति का उद्धार किया ।

वीर और स्वाभिमानिनी शकुन्तला का पुत्र भरत अपनी मा के हाथों शिक्षा पाकर निशक शेर के मुह के दात गिनने का शौक करने लगा ।

इसी प्रकार महात्मा बुद्ध की भी कथा है । जब वे अपनी मां के गर्भ में थे, उस समय उनकी मा को बहुत ही वैराग्य उत्पन्न हुआ । ससार के दुख, दारिद्रय, रोगादि को देखकर उनके मन मे निरन्तर यह भावना रही कि मेरा पुत्र बड़ा होकर इस जगत् का दुख अवश्य दूर करे । इन्ही भावनाओं में बुद्ध का जीवननिर्माण हुआ और वे लोक भर में कल्याणकारी सिद्ध हुए ।

इसी प्रकार हमारे देश में ही नही, पाश्चात्य देशों में भी अनेकों महापुरुषों ने माताओं से ही सबक सीखा है । ईसाई धर्म के प्रणेता ईसा को लीजिए । उन्हें पूज्य बनने का श्रेय उनकी माता मरियम को ही पूर्ण रूप से है । वे निरन्तर बालक ईसा

को धार्मिक शिक्षा दिया करती थी। धार्मिक पुस्तकें पढ़-पढ़ कर उनकी प्रतिभा का विकास किया करती थी। इन बातों से ही उनके चरित्र में महानता आई और उनकी आत्मा का पौरुष सतत बढ़ता ही गया।

नैपोलियन बानोपार्ट ने भी अपनी माता के अत्यन्त कठोर शासन में रह कर अपने जीवन का निर्माण किया। अपनी माँ के लिए वे स्वय ही कह गए हैं कि—"मेरी माँ एक साथ ही कोमल और कठोर थीं। सभी सतानें उनके लिए समान थी। कोई बुरा काम करके हम बाद में कभी उनसे क्षमा नही पा सकते थे। हमारे ऊपर माँ की तीक्ष्ण दृष्टि रहा करती थी। नीचता की वे अत्यन्त अवज्ञा करती थी। अनका मन उदार और चरित्र उन्नत था। मिथ्या से उन्हें आन्तरिक घृणा थी औद्धत्य देखकर उनके नेत्र कठोर हो जाते थे। हमारा एक भी दोप उनकी दृष्टि से छिपना सभव नहीं था।" इस प्रकार उनकी माँ ने अपने पुत्र का चरित्र निर्माण किया और सघर्षों मे कष्ट सहन करने की शक्ति दी।

जार्ज वाशिंगटन ने कहा है—'मेरी विद्या, बुद्धि, धन, वैभव, पद एव सम्मान इन सब का मूल कारण मेरी आदरणीया जननी ही है।'

मुसोलिनी लिखते हैं—सब सतानो मे माता का मुझ पर अधिक स्नेह था। वह जितनी शात थीं, उतनी ही कोमल और तेजस्विनी थी। वह केवल मेरी माँ ही न थी, अध्यापिका भी थी। मुझे सदा भय रहा करता था कि मेरी माँ मुझसे अप्रसन्न न हों। वे मुझसे बडी आशा रखती थी। वे कहा करती थी कि 'यह भविष्य मे कोई महान् व्यक्ति होगा। उन्होंने सदा इसका ध्यान रक्खा कि उनकी सतान निर्भीक, साहसी, दृढ और निश्चयशील बने' इसी से यह साबित हुआ है कि मुसोलिनी का अपरिमित तेज-भरा पौरुष उनकी माता की ही देन थी।

२—माता का दायित्व

पर आजकल की स्त्रिया इस बात को भूल चली हैं। अपने बच्चे के जीवन निर्माण मे, चरित्र विकास मे उनका हाथ कितना महत्त्वपूर्ण है, यह वे समझने की कोशिश नही करती हैं। जन्म से ही वे बच्चे को लाड-प्यार करके बिगाड देती हैं और इस प्रकार वे बच्चो के उज्ज्वल जीवन को अधकारमय पथ की ओर अग्रसर करने मे सहायता होती हैं। जिन गुणों को माँ शुरू से बच्चे के जीवन मे उतारना चाहती है, माँ स्वय उन सब का आचरण करे, क्योंकि झूठ बोलकर माँ बच्चे को सत्यवादिता का पाठ नहीं पढा सकती। स्वय क्रोध करके बच्चे को शात रहने की सीख नहीं दी जा सकती। तात्पर्य यह कि उज्ज्वल चरित्र वाली माता ही बच्चे को महापुरुष बनाने मे समर्थ हो सकती है।

बच्चों के बचपन मे ही सस्कार सुधारने चाहिए। बडे होने पर तो वह अपने आप सब बातें समझने लगेंगे, मगर उनका झुकाव और उनकी प्रवृत्ति बचपन में पडे हुए सस्कारों के ही अनुसार होगी। बचपन में जिन बच्चो के सस्कार माता-पिता, विशेषकर माता के द्वारा नही सुधरे, उनकी दशा यह है कि वे कोई भी अच्छी बात इस कान से सुनते और उस कान से निकाल देते हैं। इसके विपरीत, सुसस्कारी पुरुष जो अच्छी और उपयोगी बात पाते हैं, उसे ग्रहण कर लेते हैं। यह बचपन की शिक्षा का महत्त्व है।

बाल जीवन को शिक्षित और सुसस्कृत बनाने के लिए घर ही उपयुक्त शाला है। माता-पिता ही बच्चे के सच्चे शिक्षक हैं। मगर माता और पिता सुशिक्षित और सुसस्कृत हों तभी उनकी प्रजा वैसी बन सकती है। अतएव माता या पिता का पद प्राप्त करने के लिए माता-पिता को शिक्षित और सस्कारी बनना आवश्यक है।

बालक का जीवन अनुकरण से प्रारम्भ होता है। वह बोलते-चालते, खाते-पीते और कोई भी काम करते घर का और विशेषतया माता का ही अनुकरण करता है। क्या बोल-चाल, क्या व्यवहार, क्या मनोवृत्तिया और क्या अन्य प्रवृत्तिया, सब मा की ही नकल होती हैं, जिसके प्रति उसके हृदय में स्नेह का भाव सहज उपज आता है। अतएव प्रत्येक माता को सोचना चाहिए कि अगर हम बालकों को सुसस्कृत, सदाचारी, विनीत और धार्मिक बनाना चाहती हैं तो हमारे घर का वातावरण किस प्रकार का होना चाहिए ?

जहा माता क्षण क्षण मे गालिया बड-बडाती हो, पिता-माता पर चिढता रहता हो, और उद्धततापूर्ण व्यवहार करता हो, वहा बालक से क्या आशा की जा सकती है ? हजार यत्न करो, बालक को डराओ, धमकाओ, मारो, पीटो, फिर भी वह सुसस्कारी या विनयी नही बन सकता। 'माँ सौ शिक्षकों का काम देती है' यह कथन जितना सत्य है उतना ही आदरणीय और आचरणीय है।

बालक को डरा-धमका कर या मारपीट कर अथवा ऐसे ही किसी हिंसात्मक उपाय का अवलम्बन लेकर नही सुधारा जा सकता।

३—सन्तति-सुधार का उपाय

प्राय देखा जाता है कि जब बालक मचलता है या कहा नही मानता तो सर्वप्रथम माँ को उसके प्रति आवेश आ जाता है और आवेश आते ही मुख से गालियों की वर्षा आरम्भ हो जाती है, लात, घू से आदि से उस अनजान बालक पर मा हमले किया करती है। कभी-कभी तो इसका परिणाम इतना भयकर होता है कि आजीवन माता-पिता को पछताना पडता है। वास्तव में यह

प्रणाली बच्चो के लिए लाभ के बदले हानि उत्पन्न करती है। इससे बालक गालियां देना सीखता है, और सदा के लिए ढीठ बन जाता है। इस ढिठाई में से और भी अनेकों दुर्गुण फूट पड़ते हैं। इस प्रकार बालक का सारा जीवन बर्बाद हो जाता है।

विवेकशील माता भय की प्रणाली का उपयोग नही करती। वह आवेश पर अकुश रखती है। बालक की परिस्थिति को समझने का यत्न करती है। तथा उसे सुधारने के लिए घर का वातावरण सुन्दर बनाने की कोशिश करती है। ऐसा करने से माता के जीवन का विकास होता है और बालक के जीवन का भी। वह यह भली भाति जानती है कि बालक अगर रोता है तो उसका इलाज डराना नहीं है, रोने के कारण को खोजकर दूर करना है। इसी प्रकार अगर बालक मे कोई दुर्गुण उत्पन्न हो गया है तो उसे वह अपनी ही किसी कमजोरी का फल समझती है, और समझना ही चाहिए कि माता की किसी दुर्बलता के विना बालक में कोई भी दुर्गुण क्यो पैदा हो? इस अवस्था में माता के लिए उसका वास्तविक कारण खोज निकालना और दूर करना ही इलाज है। समझदार मा ऐसे अवसर पर धैर्य से काम लेती है।

भय, डराने वाले और डरने वाले के अतरग या बहिरंग पर अनेक प्रकार से आघात करता है। अत. यह भय हिंसा का भी रूप है। आत्मा के गुणो का घात करने वाली प्रवृत्ति करना हिंसा है। जो ऐसी प्रवृत्ति करता है वह हिंसक है, यह जैनागम का विधान है।

आजकल हर माता को सद्धर्म की उन्नत भावना की तामील लेने की आवश्यकता है। क्योंकि सामाजिक जीवन में देखा जाता है कि आज के माता-पिताओं के मन काम-वासना से वासित हैं। दोनो के मन क्लेश के रग मे रगे हुए हैं और बात-बात में वे अश्लील वाक्प्रहार और समय मिले तो ताड़न-प्रहार करते भी

सकोच नही करते। जहा यह स्थिति है वहां भला शिक्षा और सस्कृति का सरक्षण किस प्रकार हो सकता है ?

माता का जीवन जब तक शिक्षित, सस्कृत और आदर्श न बने तब तक सतान में सुसस्कारो का सिंचन नहीं हो सकता। अतएव अपनी सतान की भलाई के लिए माता को अपना जीवन सस्कारमय अवश्य बनाना चाहिए। प्रत्येक मा को यह न भूल जाना चाहिए कि आज का मेरा पुत्र ही भविष्य का भाग्य विधाता है।

माता, बच्चे या बच्ची का गुड्डे-गुडिया की तरह शृगार कर और अच्छा भोजन देकर छुट्टी नही पा सकती। उसे यह अच्छी तरह समझना चाहिए कि मैंने जिसे जीवन दिया है उसके जीवन का निर्माण भी मुझे ही करना है। जीवन निर्माण का अर्थ है सस्कार सपन्न बनाना और बालक की विविध शक्तियो का विकास करना। शक्तियो का विकास हो जाने पर वह सन्मार्ग में लगे, सत्कार्य में उसका प्रयोग हो, दुरुपयोग न हो, यह सावधानी रखना माता का पूर्ण कर्तव्य है।

स्त्रियाँ जगजननी की अवतार हैं। स्त्रियो की कूंख से ही महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण आदि उत्पन्न हुए हैं। पुरुष समाज पर स्त्री-समाज का बडा भारी उपकार है। उस उपकार को भूल जाना और उसके प्रति अत्याचार करने मे लज्जित न होना घोर कृतघ्नता है। समाज का एक अग स्त्री और दूसरा अग पुरुष है। शरीर का एक हिस्सा भी खराब होने से शरीर दुर्बल हो जाता है, उसी प्रकार समाज भी किसी हिस्से के विकारयुक्त होने से दूषित होने लग जाता है। क्या सभव है कि किसी का आधा अग बलिष्ठ और आधा निर्बल हो ? जिसका आधा अग निबल होगा उसका पूरा अग निर्बल होगा।

शरीर में मस्तिष्क का जो स्थान है, समाज मे शिक्षक का भी वही स्थान है। पर इस सबसे ऊँचा स्थान, बच्चे के जीवन

निर्माण में माता का है। बच्चे के प्रति माँ का जो आकर्षण, ममत्व है वही बच्चे को उचित रूप से जीवन-पथ में अग्रसर होने का प्रयत्न किया करता है।

४—मातृ-स्नेह की महिमा

माता का हृदय बच्चे से कभी तृप्त नही होता। माता के हृदय में बहने वाला वात्सल्य का अखण्ड झरना कभी सूख नहीं सकता। वह निरतर प्रवाहित होता रहता है। माता का प्रेम सदैव अतृप्त रहने के लिए है और उसकी अतृप्ति में ही शायद जगत् की स्थिति है। जिस दिन मातृ-हृदय सन्तान-प्रेम से तृप्त हो जाएगा, उस दिन जगत् मे प्रलय हो जाएगा।

बच्चे के प्रति माँ के हृदय में इतना उत्कट प्रेम होता है, कि मनुष्य तो खैर समझदार होता ही है, पर पशु-पक्षी का भी अपने बच्चे के प्रति ममत्व देखकर दग रह जाना पडता है।

सुबुक्तगीन बादशाह का वृत्तान्त इतिहास में आया है। वह अफगानिस्तान का बादशाह था। वह एक गुलाम खानदान में पैदा हुआ था। एक बार वह ईरान से अफगानिस्तान की ओर घोडे पर सवार होकर आ रहा था। मार्ग की थकावट से या किसी अन्य कारण से उसका घोडा मर गया। जो सामान उससे उठ सका वह तो उसने उठा लिया और बाकी का वहीं छोड दिया। मगर उसे भूख इतनी तेज लगी कि वह अत्यन्त व्याकुल हो गया। इसी समय एक तरफ से हिरनों का एक झुंड आ निकला और उसने दौडकर उसमें से एक बच्चे की टाँग पकड ली। झुड के और हिरण-हिरणिया तो भाग गईं पर उस बच्चे की माता वहीं ठिठक गई और अपने बच्चे को दूसरे के हाथ में पडा देखकर आंसू बहाने लगी। अपने बालक के लिए उसका दिल फटने लगा।

बच्चे को लेकर सुबुकुतगीन एक पेड के नीचे पहुचा और उसे भून कर खाने का विचार करने लगा। उसने रूमाल से बच्चे की टांगें बाध दी ताकि वह भाग न जाए। उसके बाद वह कुछ दूर जाकर एक पत्थर से अपनी छुरी पैनी करने लगा। इतने में मृगी बच्चे के पास जा पहुची और वात्सल्यवश बच्चे को चाटने लगी, रोने लगी और अपना स्तन बच्चे की ओर करने लगी। बच्चा बेचारा बधा हुआ तडफ रहा था। वह अपनी माता से मिलने और उसका दूध पीने के लिए कितना विकल था, यह कौन जान सकता है? मगर विवश था टांगें बधी होने के कारण वह खडा भी नहीं हो सकता था। अपने बच्चे की यह हालत देखकर मृगी की क्या हालत हुई होगी, यह कल्पना करना भी कठिन है। माता का भावुक हृदय ही मृगी की अवस्था का अनुमान कर सकता है। मगर वह लाचार थी। वह आंसू बहा रही थी और इधर-उधर देखती जाती थी कि कोई किसी ओर से आकर मेरे बच्चे को बचा ले।

इतने मे ही छुरी पैनी करके सुबुकुतगीन लौट आया। बच्चे की मां हिरणी यहां भी इसके पास आ पहुची है, यह देखकर उसको आश्चर्य हुआ। उसने हिरनी के चेहरे पर गहरे विषाद की परछाई देखी और नेत्रों से बहते हुए आसू देखे। यह देखकर उसका हृदय भी भर आया। वह व्याकुल होकर सोचने लगा कि मेरे लिए तो यह बच्चा दाल-रोटी के बराबर है, पर इस मा के हृदय में इसके प्रति कितना गहरा प्रेम है? इसका हृदय इस समय कितना तडफ रहा होगा? अपना खाना-पीना छोड कर और अपने प्राणों की भी परवाह न करके हिरणी यहा तक भागी आई है। धिक्कार है मेरे ऐसे खाने को; जिससे दूसरे को घोर व्यथा पहुच रही है। अब मैं चाहे भूख का मारा मर ही जाऊं पर अपनी मा के इस दुलारे को हर्गिज नही खाऊंगा।

आखिर उसने बच्चे को छोड़ दिया। बच्चा अपनी माँ से और माता अपने बच्चे से मिलकर उछलने लगे। यह स्वर्गीय दृश्य देखकर सुबुकुतगीन की प्रसन्नता का पार न रहा। इस प्रसन्नता में वह खाना-पीना भी भूल गया। आज उसकी समझ में आया और उसे विश्वास हो गया कि मा के प्रेम से बढकर विश्व में कोई दूसरी चीज नही।

मातृ-प्रेम के समान संसार में और कोई प्रेम नहीं। मातृ-प्रेम ससार की सर्वोत्तम विभूति है, ससार का अमृत है, अतएव जब तक पुत्र गृहस्थ-जीवन से पृथक् होकर साधु नहीं बना है, माता तब तक उसके लिए देवता है।

मातृ-हृदय की दुनिया में सभी ने प्रशंसा की है। आज के वैज्ञानिको का भी यही कहना है कि माता में हृदय का बल होता है। इसी बल के कारण वह सतान का पालन करती है और सतान के लिए कष्ट उठाती है। यदि माता मे हृदय-बल न होता तो वह स्वय कष्ट सह करके सन्तान का पालन क्यों करती? कहा जा सकता है कि माता भविष्य सम्बन्धी आशाओं से प्रेरित होकर सतान का पालन करती है। इसके उत्तर मे यही कहा जायगा कि, पशु-पक्षियों को अपनी सन्तान से क्या आशा रहती है? पक्षी के बच्चे बड़े होकर उड जाते हैं। वे न पिता को पहचानते हैं और न माता को ही। फिर पक्षी अपनी सन्तान का पालन क्यो करते हैं? उन्हें किसी प्रकार की आशा नही रहती फिर भी वे अपनी सन्तान का उसी प्रेम के साथ पालन करते हैं। इसका एक मात्र कारण हृदय-बल ही है। इस प्रकार मातृ-हृदय ससार की अनूठी सम्पदा है, अनमोल निधि है। यही कारण है, दुनिया में मातृ हृदय की सभी ने प्रशसा की है।

इस प्रकार माता अपने उत्कट हृदय-बल से सतान का पालन करती है, लेकिन आजकल के लोग उस हृदय-बल को भूल कर

मस्तिष्क के विचारों के अधीन हो जाते हैं और पत्नी के गुलाम बनकर माता की उपेक्षा करते हैं । यह कृतघ्नता नही तो क्या है ।

ससार में प्रत्येक प्राणी को सोचना चाहिए कि मेरी माता ने मुझे हृदय-बल से ही पाला है । माता मे हृदय-बल न होता, करुणा न होती तो वह मेरा पालन क्यों करती ? हृदय-बल के प्रताप से ही वह मेरा रोना सुनकर पालने के पास दौड़ी आती थी और सब काम छोड़ कर पहले मेरी फरियाद सुनती थी ।

माता अपने पुत्र को कभी थप्पड भी मार देती है पर उसका हृदय तो पुत्र के कल्याण की कामना से सदैव परिपूर्ण ही रहता है और इसी से फिर वह उसे पुचकार भी लेती है । माता को थप्पड भी मारनी पड़ती है और पुचकारना भी पडता है, लेकिन जो भी वह करती है हृदय की प्रेरणा से । उसके हृदय में बालक की एकान्त कल्याणकामना निरतर वर्तमान रहती है ।

५—मातृ-भक्ति

पर हृदय-बल न होने अथवा हृदय-बल पर मस्तिष्क बल की विजय होने पर ही माता का अपमान किया जाता है और पत्नी की अधीनता स्वीकार की जाती है । यद्यपि ससार में ऐसे-ऐसे नरवीर भी हुऐ हैं जिन्हे माता के लिए सबकुछ, यहा तक कि पत्नी को भी त्याग दिया है । लेकिन ऐसे लोग भी कम नहीं हैं जो स्त्री को प्रसन्न रखने के लिए माता का अपमान करने से नही चूकते ।

हृदय-बल के बिना जगत् का काम क्षण भर भी नहीं चलता । माता मे हृदय-बल न होता, तो मस्तिष्कबल वाले व्यक्ति का जन्म ही कैसे होता ? उसका पालन-पोषण कौन करता ? अतएव स्पष्ट

है कि मस्तिष्कबल की अपेक्षा हृदय-बल की ही अधिक आवश्यकता है और आवश्यकता ही नही पर यह कहना भी अनुचित नही कि मस्तिष्क के बल को हृदय-बल के अधीन रहना चाहिए। जैसे माता अपने पुत्र को अपने अधीन रखकर उसकी उन्नति करती है उसी प्रकार मस्तिष्क बल को हृदय-बल के अधीन रखकर विकसित करना चाहिए। माता यह कदापि नही चाहती कि मेरे पुत्र की उन्नति न हो। वह उन्नति चाहती है और इसलिए शिक्षा दिलवाती है मगर रखना चाहती है अपनी अधीनता मे। वह अपने बालक का निरकुश होना पसन्द नहीं करती। यह बात अलग है कि आज की शिक्षा का ढंग बदला हुआ है और माताए भी इसी ढग से प्रभावित होकर ऐसी ही शिक्षा दिलवाती हैं। लेकिन जो कुछ भी वे करती हैं, पुत्र की हितकामना से प्रेरित होकर ही।

पर आज का ससार मस्तिष्क बल से हृदय बल को दबाता चला आ रहा है। यह अनुचित है। जैसे अपनी माता को अपनी पत्नी के पैरों पर गिरने को बाध्य करना उचित नही है, उसी प्रकार जिस हृदय-बल से आपका जन्म हुआ उस हृदय बल को कुचलना नीचता है।

अपनी माता को भूलकर पत्नी का गुलाम बन जाना शान की निशानी नही है। जिस माता ने पुत्र का पालन-पोषण किया है उसी की उपेक्षा करना क्या पुत्र को उचित है?

कल्पना करो कि एक आदमी किसी श्रीमंत की लडकी को ब्याह कर लाया है, लडकी छबिली है, बनी-ठनी है। और आज-कल की फैशन के अनुसार रहती है। दूसरी ओर उस पुरुष की माता है जो पुराने विचार की है। अब वह पुरुष किसके अधीन होकर रहना चाहेगा? वास्तव में उसे माता के अधीन रहना चाहिए। उचित तो यही है पर देखा जाता है कि इसके विपरीत पुरुष पत्नी के अधीन हो जाता है। वह यह नहीं सोचता कि

सुसर ने मेरी श्रीमताई देखकर अपनी लड़की दी है पर माता ने क्या देखकर मेरा पालन-पोषण किया है ? माता ने केवल हृदय की प्रेरणा से ही तो मेरा पालन किया है ? उसने और कुछ नहीं देखा। हार्दिक विचारों से प्रेरित होकर ही माता ने मेरे लिए कष्ट उठाये हैं और उस हृदय को भूल जाना या उपेक्षा करना कृतघ्नता है। मगर ऐसा विचार कितनों का होता है ? ससार मे आज पत्नी के अधीन होकर माता की उपेक्षा करने वाले ही अधिक होगे।

माता का स्थान अनोखा होता है। माता पुत्र को जन्म देती है। माता से ही पुत्र को शरीर मिलता है। संतान पर माता का असीम ऋण है। उस ऋण को चुकाना अत्यन्त कठिन है। मगर क्या आजकल सतान यह समझती है ? आज तो कोई-कोई सपूत ऐसे होते हैं कि नीति की सीख देने के कारण भी अपनी माता का सिर फोड़ने को तैयार हो जाते हैं। औरतों की बातों में आकर पत्नी का अपमान कर बैठते हैं। पर पुराना आदर्श क्या ऐसा था ? राम का आदर्श भारत को क्या शिक्षा देता है ? राम सोचा करते थे कि माँ अगर आशीर्वाद दे देगी कि जाओ, जगल में रहो तो मैं तो जङ्गल में भी आनन्द से रहूगा। ऐसा अद्भुत और आदर्श चरित्र भारत को छोड़ कर कहाँ मिल सकता है ? नैपोलियन के लिए कहा जाता है कि वह माता का बड़ा भक्त था। वह कहा करता था—तराजू के एक पलड़े मे सारे ससार का प्रेम रखूं और दूसरे पलड़े मे मातृप्रेम रखूं तो मेरा मातृप्रेम ही भारी ठहरेगा।

मातृ-भक्ति का अनुपम उदाहरण मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचद्र ने उपस्थित किया था। कैकेयी ने राजा दशरथ से अपने दो वरदानों से रामचन्द्र के लिए चौदह वर्ष का वनवास और अपने पुत्र भरत के लिए राज्य सिंहासन की मांग की। यद्यपि राम को

वनवास देना अनुचित एव अन्यायपूर्ण था, फिर भी वनवास के कठोर दुखों और यातनाओं की चिन्ता न करते हुए रामचन्द्र माता की आज्ञा शिरोधार्य कर वन जाने को उद्यत हो गए। उनकी माता कौशल्या के दुख की सीमा न रही। उन्हें स्वप्न में भी यह आशा न थी कि कैकेयी वरदान में इस प्रकार की याचना कर बैठेगी। वे मातृ-स्नेहवश विकल हो उठीं और मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। अत्यन्त स्नेह से इतने वर्षों तक पालन-पोषण करने वाली माता को यकायक इतना बड़ा वियोग बिलकुल असह्य-सा प्रतीत हुआ। वे अपने पुत्र को क्षणमात्र के लिए भी आखों से ओझल नहीं देखना चाहती थी। वे सर्वदा उसे अपने नयनों में रखकर अपने हृदय को शीतल एव आह्लादमय करना चाहती थीं। प्रतिक्षण उनके मन में रामचन्द्र की सुन्दर व सजीव मूर्ति व्याप्त रहती थी। क्षणभर भी उन्हें देखकर वे स्वर्गीय सुख का अनुभव करती थीं। पुत्र के बिना उनके लिए कुबेर की समस्त धन-सम्पत्ति भी तुच्छ थी। मातृत्व स्नेह को ऐश्वर्य के पलड़े मे तो किसी भी तरह नहीं तोला जा सकता।

कौशल्या अत्यन्त विकल हो रही थी यह सोच-सोच कर कि मैं इसका वियोग कैसे सह सकूंगी ? प्राण (राम) चले जाने पर यह निष्प्राण शरीर कैसे रहेगा ?

इस प्रकार के विचारों से व्यथित कौशल्या मूर्च्छित हो गई। राम आदि ने शीतोपचार करके उन्हें सचेष्ट किया। सचेष्ट होकर आंसू बहाती हुई कौशल्या फिर प्रलाप करने लगी – हाय, मैं जीवित क्यों हूं ? पुत्र वियोग का यह दारुण दुख सहने की अपेक्षा मर जाना ही मेरे लिए अच्छा था। मर जाती तो वियोग की ज्वालाओं से तिल-तिल करके जलने से तो बच जाती! मेरा हृदय कैसा वज्र-कठोर है कि पुत्र वन को जा रहा है और मैं जी रही हूं।

बात नहीं है। पुत्र ! तू न राज महल त्याग कर राम की सेवा के लिए वन जाने का विचार करके मेरी कूख को प्रशस्त बना दिया है। तेरी बुद्धि अच्छी है, पर फिर भी मैं तुझे कुछ सीख देती हूँ। वत्स ! अप्रमत्त भाव से राम की सेवा करना। उन्ही को अपना पिता और जानकी को अपनी माता समझना। मैं तुझे राम को सौंपती हूँ। राम को सौंपने के बाद तुझे कोई कष्ट नही हो सकता। पुत्र ! अयोध्या वहीं है जहा राम है। जहा सूर्य है वही दिन है। जब राम ही अयोध्या छोड रहे हैं तो तुम्हारा यहाँ क्या काम है ? इसलिए तुम आनन्द से जाओ। माता, पिता, गुरु, देश, बन्धु और सखा को प्राण के समान समझकर उनकी सेवा करना नीति का विधान है। तुम राम को ही सब कुछ समझना और सर्वतोभाव से उन्हीं की सेवा में निरत रहना।

वत्स ! जननी के उदर से जन्म लेने की सार्थकता राम की सेवा करने मे ही है। यह तुम्हें अपने जीवन का बहुमूल्य लाभ मिला है। पुत्र ! तू आज बडभागी हुआ और तेरे पीछे मैं भी भाग्यशालिनी हुई। सब प्रकार के छल-कपट को छोडकर तेरा सम्पूर्ण मन राम में ही लगा है, इससे मैं तुझ पर बार-बार बलि जाती हूँ। मैं उसी स्त्री को पुत्रवती समझती हू जिसका पुत्र सेवा-भावी, त्यागी, परोपकारी, न्याय-धर्म से युक्त और सदाचारी हो। जिसके पुत्र में यह गुण नहीं, उस स्त्री का पुत्र को जन्म देना ही वृथा है।

पुत्र सभी स्त्रिया चाहती हैं, पर पुत्र कैसा होना चाहिए, यह बात कोई विरली ही समझती है। कहावत है—

जननी जने तो ऐसा जन, कै दाता कै सूर।
नीतर रेजे बाझणी, मती गवावे नूर।।

अर्थात्—माँ, अगर पुत्र पैदा करना है तो ऐसा करना कि या तो वह दानी हो और या शूरवीर हो। नही तो बाझ भले

ही रहना पर अपनी शक्ति को कलंकित नही करना ।

बहिनें पुत्र को चाहती हैं पर यह जानना नही चाहती कि पुत्र कैसा होना चाहिए ? पुत्र उत्पन्न हो जाने पर उसे सुसंस्कारी बनाने की कितनी जिम्मेवारी आ जाती है, इस बात पर ध्यान न देने से उनका पुत्र उत्पन्न करना व्यर्थ हो जाता है ।

सुमित्रा फिर कहती है—लक्ष्मण ! तेरा भाग्योदय करने के लिए ही राम वन में जा रहे हैं । वह अयोध्या में रहते तो उनकी सेवा करने वालों की कमी नही रहती । वन में की जाने वाली सेवा तेरी सेवा-मुल्यावन् सिद्ध होगी । सेवक की परीक्षा सकट के समय पर ही होती है । राम वन न जाते तो तुम्हारी परीक्षा कैसे होती ?

धन्य है सुमित्रा ! उसके हृदय मे पुत्र वियोग की व्यथा कितनी गहरी होगी ? इसका अनुमान लगाना कठिन है । लेकिन उसने धैर्य नही छोडा । वह लक्ष्मण से कहने लगी—वत्स ! राग, द्वेष और मोह त्याग करके वन मे राम और सीता की सेवा करना । राम के साथ रहकर सब विकार तज देना । जब राम और सीता तेरे साथ हैं तो वन तुझे कष्टदायक नहीं हो सकता, हे वत्स ! मेरा आशीर्वाद है कि तुम दोनो भाई सूर्य और चन्द्र की भाँति जगत् का अधकार मिटाओ, प्रकाश फैलाओ, तुम्हारी कीर्ति अमर हो ।

रामचन्द्र जी का वनवास के लिए प्रस्थान कर देने पर तो अवधनिवासी बहुत ही व्याकुल हुए । वे तो चाहते थे कि राम राज्य-सिंहासन को सुशोभित करें । अत. उन्हें लौटाने के लिए फिर सब लोग वन को गए । साथ में कैकेयी भी स्वय वहां पहुची और उन्हें लौटाने का प्रयत्न करने लगी । यद्यपि वह बिमाता थी, लेकिन यह बात नहीं थी कि वह कौशल्या, सुमित्रा आदि से द्वेष रखती थी तथा राम, लक्ष्मण आदि से प्रेम नही करती थी । कैकेयी के

चरित्र से यह स्पष्ट था कि उसके हृदय में किसी भी प्रकार की मलीनता नहीं थी। वह भी उतनी ही दयार्द्र तथा कोमल स्वभाव वाली थी जितनी कि कौशल्या व सुमित्रा। तीनों सहोदरों कि भांति एक दूसरे से प्रेम करती थी। उनके चारो पुत्रों मे भी किसी प्रकार का भेद-भाव न था। सुमित्रा लक्ष्मण को भी उतना ही प्रेम करती थी जितना राम को। कौशल्या और कैकेयी ने भरत और राम को अपने पुत्रों की ही भाति स्नेह किया था। कैकेयी को किन्ही विशेप परिस्थितियों तथा कुछ गलतफहमियों से दो वरदान मांगने पड़े। उसका पूर्व चरित्र कदापि इतना दूषित नही था। राम के चले जाने पर उसे बहुत ही दुःख हुआ। अपने किये पर उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ। उसके सहज स्नेह और वात्सल्य पर एक प्रकार की कुबुद्धि का जो आवरण पड़ गया था, वह हट कर निर्मल स्नेह-रस मे परिणत हो गया। क्योंकि आखिर मातृप्रेम ही तो ठहरा ! कुछ समय के लिए चाहे माता बच्चे को यातनाएं तथा ताड़नाएँ भी दे, पर उसका प्रेम तो कहीं नहीं जा सकता। वह तो हृदय की एक सदैव स्थित रहने वाली बहुमूल्य वस्तु है जो माता से कभी पृथक् नहीं की जा सकती। कैकेयी के हृदय से पुत्र-प्रेम फूट फूट कर बह निकला। वह राम को अयोध्या लौट चलने के लिए आग्रह करने लगी। राम के हृदय में तो माताओं के प्रति कोई भेद-भाव था ही नही, वे जरा भी भिन्नता का अनुभव नही करते थे।

महारानी कैकेयी ने अत्यन्त सरल हृदय से पश्चात्ताप किया। बोली—वत्स ! जो कुछ होना था सो हो चुका। मुझे कलंक लगना था सो लग गया। अब इस स्थिति का अन्त लाना तुम्हारे हाथ है। मेरा कलंक कम करना हो तो मेरी बात मानकर अयोध्या चलो। तुमने मुझे बहिन कौशल्या के ही समान समझा है तो मेरी बात अवश्य मान लो। मैं अब तक भरत को ही अपना सब से

अधिक प्रिय समझती थी। मोहवश मैं मानती थी कि भरत ही मेरा पुत्र है और वही मुझे सब से अधिक प्रिय होना चाहिए। अपने प्रिय के लिए सब कुछ किया जाता है। इसलिए मैंने सोचा कि अगर मैंने भरत के लिए वरदान मे राज्य न मागा तो फिर वर मांगना ही किस कामका? लेकिन भरत ने मेरी भूल सुधार दी है। भरत ने मुझे सिखा दिया है कि 'अगर मैं तुम्हे प्रिय हूँ तो राम मुझे प्रिय है। तू मेरे प्रिय से छुडा कर मुझे सुखी कैसे कर सकती है? यह राज्य तो राम के सामने नगण्य है। मुझ से राम को दूर करना तो मेरे साथ शत्रुता करना है। राज्य मुझे प्यारा नही है, मुझे तो राम प्यारे हैं।' इस प्रकार भरत के समझाने से मैं समझ गई हूँ कि अपने प्रिय राम के बिछुड जाने से भरत निष्प्राण-सा हो रहा है। राम, तुम मेरे प्रिय के प्रिय हो तो मेरे लिए तो दुगुने प्रिय हो। अब तुम मुझे छोडकर अलग नहीं रह सकते। यह निश्चय है कि तुम्हारे रहने ही भरत मेरा रह सकता है। तुम्हारे न रहने पर भरत भी मेरा नहीं रह सकता।'

कैकेयी कहती है—'राम! मैं नही जानती थी कि भरत मेरा नहीं राम का है। अगर मैं जानती कि मैं राम की रहूँ तभी भरत मेरा है, नही तो भरत भी मेरा नहीं है, तो मैं तुम्हारा राज्य छीनने का प्रयत्न ही न करती। मुझे क्या पता था कि भरत राम को छोडने वाली माता को छोड देगा।'

अगर आपके माता-पिता परमात्मा का परित्याग कर दें और ऐसी स्थिति हो कि आपको माता पिता या परमात्मा मे से किसी एक को ही चुनना पडे तो आप किसे चुनेंगे? माता-पिता का परित्याग करेंगे या परमात्मा का? परमात्मा को त्यागने वाला चाहे कोई भी क्यों न हो, उनका त्याग किये बिना कल्याण नही हो सकता।

कैकेयी फिर कहने लगी—'मुझे पहले मालूम नहीं था कि तुम

भरत को अपने से भी पहिले मानते हो। काश ! मैं पहले समझ गई होती कि तुम भरत का कष्ट मिटाने के लिए इतना महान् कष्ट उठा सकते हो। ऐसा न होता तो तुम्हारा राज्य छीनने की हिम्मत किसमे होती ? खास तौर पर जब लक्ष्मण भी तुम्हारे साथ थे। तुमने महाराज के सामने भरत को और अपने आप को बाई और दाई आख बताया था। यह सच्चाई अब मैं भली-भाति समझ रही हूँ। मैं अब जान गई कि तुम भरत को प्राणों से भी ज्यादा प्यार करते हो।'

कैकेयी कहती गई—'वत्स ! तुम्हारे राज्य-त्याग से सूर्यवश के एक नररत्न की परीक्षा हुई है। तुम्हारे वन आने पर लक्ष्मण ने भी सब सुखों का त्याग करके वन जाना पसद किया। भरत ने राजा होकर भी क्षण भर भी शाति नही पाई। शत्रुघ्न भी बेहद दुखी हो रहा है। चारों भाइयो में से एक भी अपना स्वार्थ नही देखता है। सभी एक दूसरे को सुखी करने के लिए अधिक से अधिक त्याग करने के लिए तैयार हैं। सब का सब पर अपार स्नेह है। तुम्हारा यह भ्रातृप्रेम मेरे कारण ही प्रकट हुआ है। इस दृष्टिकोण से मेरा पाप भी पुण्य-सा हो गया है और मुझे सतोष दे रहा है। भले ही मैंने अप्रशस्त कार्य किया है किन्तु फल उसका यह हुआ कि चिरकाल तक लोग भ्रातृप्रेम के लिए तुम लोगों का स्मरण करेंगे। कीचड़-कीचड ही है पर कमल उत्पन्न होने से कीचड की भी शोभा बढ़ जाती है। मेरा अनुचित कृत्य भी इस प्रकार अच्छा हो गया। मैं अच्छी हूँ या बुरी, जैसी भी हूँ सो हूँ। मगर तुम्हारा अन्त करण सर्वथा शुद्ध है। मेरी लाज आज तुम्हारे हाथ में है। अयोध्या लौटने पर ही उसकी रक्षा होगी, अन्यथा मेरे नाम पर जो धिक्कार दिया जा रहा है वह बद न होगा।'

कैकेयी मे अपनी भूल सुधारने का साहस था। इसी कारण उसने बिगड़ी बात बना ली। वह कहने लगी—'राम मैं तर्क नहीं

जानती । मुझे वाद-विवाद करना नहीं आता । मैं राजनीति से अनभिज्ञ हू । मेरे पास सिर्फ अधीर हृदय है । अधीर हृदय लेकर मैं तुम्हारे पास आई हूं । मैं माता हूं और तुम मेरे लडके हो, फिर भी प्रार्थना करती हू कि अब अयोध्या लौट चलो । 'गई सो गई अब राख रही को ।' बीती बात को बारम्बार याद करके वर्तमान की रक्षा न करना अच्छा नहीं है ।

हे राम ! इस परिवर्तनशील ससार मे एक सा कौन रहता है ? सूर्य भी प्रतिदिन तीन अवस्थाए धारण करता है । इसी प्रकार सभी कुछ बदलता रहता है । तो फिर तुम्हारी इस स्थिति मे परिवर्तन क्यो नहीं होगा ? मेरे भाग्य ने मेरे साथ छल किया था, इससे मुझे अपयश मिला, लेकिन मेरा भाग्य अब बदल गया है और इसी कारण मुझे अपनी भूल मालूम पडी है। अब मैं पहले वाली कैकेयी नही हूं। पुत्र ! मैं तुम्हारे निहोरे करती हू कि अब तुम अयोध्या वापिस लौट चलो ।

रामचद्रजी अभी तक माता की बातें सुन रहे थे । अब उन्होंने नम्रतापूर्वक मुस्कराते हुए कहा—'माता जी, बचपन से ही आपका मातृस्नेह मुझ पर रहा है और अब भी वह वैसा ही है। आप माता हैं, मैं आपका पुत्र हूं । माता को पुत्र के आगे इतना अधीर नही होना चाहिए । आपने ऐसा किया ही क्या है जिसके लिए इतना खेद और पश्चात्ताप करना पड़े ? राज्य कोई बड़ी चीज नही है और वह भी मेरे भाई के लिए ही आपने मागा था, किसी गैर के लिए नही । जब मैं और भरत दो नही हैं तब तो यह प्रश्न ही नही उठता कि कौन राजा है और कौन नहीं ? इतनी साधारण-सी बात को इतना अधिक महत्व मिल गया है । आप चिन्ता न करें । मेरे मन मे तनिक भी मैल नहीं है भरत ने एक जिम्मेवारी लेकर मुझे दूसरा काम करने के लिए स्वतन्त्र करदिया है ।'

'माता जी ! जहाँ मा-बेटे का सम्बन्ध हो वहा इतनी लम्बी बात-चीत की आवेश्यकता ही नही है । आपके सम्पूर्ण कथन का सार यही है कि मैं अवध को लौट चलू । लेकिन यह कहना माता के लिए उचित नही है । आप शान्त और स्थिर चित्त हो विचार करें कि ऐसी आज्ञा देना क्या उचित होगा ? आपकी आज्ञा मुझे सदैव शिरोधार्य है । माता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का कर्त्तव्य है । लेकिन माता ! तुम्हीं ने तो मुझे पाल पोस कर एक विशिष्ट साचे में ढाला है । मुझे इस योग्य बनाया है । इसलिए मैं तो आपकी आज्ञा पालन करूगा ही, मगर निवेदन यही है कि आप उस साचे को न भूलें जिसमे आपने मुझे ढाला है । मेरे लिए एक ओर आप है और दूसरी ओर सारा ससार है । सारे ससार की उपेक्षा करके भी मैं आपकी आज्ञा मानना उचित समझूगा ।'

'माताजी आपका आदेश मेरे लिए सब से बडा है और उसकी अवहेलना करना बहुत बडा पाप होगा । लेकिन यह बात आप स्वय सोच लें कि आपका आदेश कैसा होना चाहिए ? आप मुझसे अवध चलने को कहती हैं, यह तो आप अपनी आज्ञा की अवहेलना कर रही हैं । मैंने आपकी आज्ञा-पालन करने के लिए ही वनवास स्वीकार किया है । क्या अब आपकी ही आज्ञा की अवहेलना करना उचित होगा ? इस साचे में आपने मुझे ढाला ही नही है । रघुवश की महारानिया एक बार जो आज्ञा देती हैं फिर उसका कदापि उल्लघन नहीं करतीं ।'

आप कह सकती हैं कि क्या मेरा और भरत का यहा आना असफल हुआ ? लेकिन यह बात नहीं है । आपका आगमन सफल हुआ है । यहां आने पर ही आप को मालूम हुआ होगा कि आपका आदेश मेरे सिर पर है । पहले आप सोचती होंगी कि वन मे राम आदि दुखी हैं, यहा आने पर आपको मालूम हो गया कि हम तीनो यहा सुखी हैं । क्या आपको हम तीनो के चेहरे पर कही दुख की

रेखा भी दिखाई पडती है ? हमने ससार को यह दिखा दिया कि सुख अपने मन में है, कहीं बाहर से नहीं आता ।'

'माता ! आपने यहाँ आकर देख लिया कि राम, लक्ष्मण और जानकी दुखी नही हैं, वरन् सन्तुष्ट और सुखी हैं । अगर अब भी आपको विश्वास न हो तो हम फिर भी कभी विश्वास दिला देंगे कि हम प्रत्येक परिस्थिति मे आनन्दमय ही रहते हैं, कभी दुखी नही होते । सूर्यकुल मे जन्म लेने वालो की प्रतिज्ञा होती है कि वे प्राण जाते समय भी आनन्द मानें, लेकिन वचन-भग होते समय प्राण जाने की अपेक्षा अधिक दुख मानें । पिताजी ने भी यही कहा था, ऐसी दशा मे आप अयोध्या ले चलकर मेरे प्रण को भग करेंगी और मुझे दुख मे डालेंगी ? अगर आप सूर्यकुल की परपरा को कायम रहने देना चाहती हैं, और मेरे प्रण को भग नहीं होने देना चाहती तो अयोध्या लौटने का आग्रह न करें । साथ ही साथ आत्म-ग्लानि की भावना का भी परित्याग कर दें । मैं स्वेच्छा से ही वनवास कर रहा हू । इसमें आपका कोई दोष नही है । विशेषत. इस दशा में जब कि आप स्वय आकर अयोध्या लौट चलने का आग्रह कर रही हैं । तो उसमे आपका दोष कैसे हो सकता है ?

माताजी ! मैंने जो कुछ भी कहा है स्वच्छ अत करण से ही कहा है । आप उस पर विश्वास कीजिए । आप मेरी गौरवमयी माँ है । ऐसा मन मे विचार कर प्रसन्नतापूर्वक मुझे वनवास का आदेश दीजिए ।

इस प्रकार मातृप्रेम व वात्सल्य का उदाहरण कैकेयी ने उपस्थित कर भारतीय नारियों के लिए एक आदर्श स्थापित किया । विमाता होते हुए भी उसके हृदय मे स्नेह की धाराए सदा प्रवाहित होती थी । किन्ही परिस्थितियो मे या अज्ञानतावश चाहे कुछ समय के लिए माता बच्चे पर नाराज भी हो उठे, पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह उससे स्नेह नही करती । बाल्यकाल में माताओ के

उन्हीं सस्कारों का ही तो परिणाम था, जिनके कारण राम के ऐसे आदर्श व्यक्तित्व और चरित्र की नींव पड़ी। अगर माताएँ योग्य न होती, अशिक्षित, असस्कृत और मूर्ख होतीं तो उनसे क्या आशा की जा सकती थी कि वे रामचन्द्र जैसे पुत्र रत्न को पैदा करतीं? तीनों विमाताए सगी माताओं से किसी भी प्रकार कम न थीं, अत तीनों के सत्सकार चारों पुत्रो पर अकित थे।

नाना यातनाए सहकर भी रामचन्द्र ने विश्व को बता दिया कि—जब तक माता-पिता खाने-पीने को दें, अच्छा पहनने-ओढ़ने को दें, खूब सुखपूर्वक रखें, तब तक उनकी सेवा करने में कोई विशेषता नही है। विशेपता तो तब है जब माता-पिता द्वारा सभी कुछ छीन लेने पर भी पुत्र उनकी उसी प्रकार सेवा करे जैसी पहिले करता था। इस प्रकार सेवा करने वाला पुत्र वास्तव में सच्चा पुत्र है और भाग्यशाली है।

६—माता का उपकार

माँ बच्चे को जन्म देती है। नौ महीने उदर मे रखे हुए नाना तकलीफो का सामना करती है। पैदा होने के बाद तो उसके सकटो की गिनती ही नही रहती। फिर भी वह हसती-हसती पुत्र का मुह देखकर सब कुछ सहन करती है। माता का पुत्र पर असीम उपकार है। माता बालक को जन्म देती है अतएव कहा जा सकता है कि यह शरीर माता ने दिया है लेकिन बहुत से लोग माता-पिता के महान् उपकारों का विस्मरण करके पीछे से आई हुई स्त्री के मनोहारी हावभाव से मुग्ध होकर, उसकी सम्मोहिनी माया के जाल मे फसकर, माता-पिता के शत्रु बन जाते हैं और स्त्री की उंगली के इशारे पर नाचते हैं। वह जिस प्रकार नचाती है, पुरुष बन्दर की तरह उसी प्रकार नाचता है। कई लोग तो माता-पिता

को इतनी पीड़ा देते हैं कि सुनकर हृदय मर्माहत हो उठता है। उन्हें अपशब्द सुनाने, मारपीट करने तक की घटनाएं घटती हैं। यह सब बातें मनुष्य की कितने दर्जे की कृतघ्नता सूचित करती हैं ?

जिस माता ने अपने यौवन के सौन्दर्य की परवाह न करके, अपने हृदय के रस से-दूध से बालक के प्राणो की रक्षा की, जिसके उदर में रहने पर उसकी रक्षा के लिए सयम से रही, प्रसव के पश्चात् जिसने सब प्रकार की घृणा को ममता के ऊपर न्योछावर कर दिया, जो बालक पर अपना सर्वस्व निछावर करने को उद्यत रही, जिसकी बदौलत पुत्र पत्नी पाने योग्य बना, जिसने अपने पुत्र और पुत्रवधू से अनेकानेक मसूत्रे बांधे, उसी माता की वृद्धावस्था में जब दयनीय दशा होती है और वह भी अपने पुत्र के हाथ से, तब उस पूत को क्या कहा जा सकता है ?

इस प्रश्न का उत्तर मिलना आज कठिन है। पुरुषों ने स्त्रियो की आज जो अवहेलना की है, उस अवहेलना की छाया मे इस प्रश्न का उत्तर सूझना आज कठिन है।

अगर तटस्थता से विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि महिलावर्ग के प्रति कितना अन्याय किया जा रहा है ! पुरुषो ने स्त्री समाज को ऐसी परिस्थिति मे रखा है जिसमे वे निरी बेवकूफ रहना ही अपना कर्त्तव्य समझें। कई पुरुष तो स्त्रियो को पैर की जूती तक कह देने का साहस कर डालते हैं। लेकिन तीर्थंकर की माता को प्रणाम करके इन्द्र क्या बना गया है, इस पर विचार करो। इस पर भी विचार करो कि इन्द्र ने तीर्थंकर की माता को प्रणाम क्यो किया और तीर्थंकर के पिता को प्रणाम क्यो नही किया ?

इन्द्र कहता है—'हे रत्नकुक्षि धारिणी ! हे जगद्विख्याता ! हे महामहिमा मण्डिता माता ! आप धन्य हैं। आपने धर्म-तीर्थ क स्थापना करने वाले और भव-सागर से पार उतारने वाले, ससार मे सुख एव शान्ति की सस्थापना करने वाले त्रिलोकीनाथ को जन्म

कोमल शरीर को तूने अपना खिलौना बनाया। इससे अपना मनोरंजन किया। लाड-प्यार करके आनन्द उठाया। इस पर भी उपकार जतलाती हो?

माता ने कहा-मैंने तुझे पेट मे रक्खा सो?

बेटा—तुमने जान बूझकर पेट में थोडे ही रखा था। तुम अपने सुख के लिए प्रयत्न करती थी। इसमे तुम्हारा उपकार ही क्या है? फिर भी अगर उपकार जतलाती हो तो पेट का किराया ले लो।

यह आज की सभ्यता है। भारतीय संस्कृति आज पश्चिमी सभ्यता का शिकार बनी जा रही है और भारतीय जनता अपनी पूंजी को नष्ट कर रही है।

माता ने कहा—कोठरी की तरह तू मेरे पेट का भाडा देने को तैयार है, पर मैंने तुझ अपना दूध भी तो पिलाया है।

बेटा—हम दूध न पीते तो तू मर जाती। तेरे स्तन फटने लगते। अनेक बीमारियाँ हो जाती। मैंने दूध पीकर तुझे जिन्दा रखा है।

माता ने सोचा—यह बिगडैल बेटा ऐसे नही मानेगा। तब उसने कहा—अच्छा चल गुरुजी से इसका फैसला करा लें। अगर गुरुजी कहेंगे कि पुत्र पर माता-पिता का उपकार नही है तो मैं अब से कुछ भी नही कहूंगी। मैं माता हूँ। मेरा उपकार मान या न मान, मैं तेरी सेवा से मुंह नहीं मोड सकूंगी।

माता की बात सुनकर लड़के ने सोचा—शास्त्रवेत्ता तो कहते हैं कि मनुष्य कर्म से जन्म लेता है और पुण्य से पलता है। इसके अतिरिक्त गुरुजी माता-पिता की सेवा करने को एकान्त पाप भी कहते हैं। फिर चलने में हर्ज ही क्या है?

यह सोचकर लड़के ने गुरुजी से फैसला कराना स्वीकार कर लिया। वह गुरुजी के पास चला गया।

दोनो माता-पुत्र गुरु के पास पहुचे। वहां माता ने पूछा—'महाराज, शास्त्र में कही माता-पिता के उपकार का भी हिसाब बतलाया है या नहीं ? गुरु ने कहा—जिसमे माता-पिता के उपकार का वर्णन न हो वह शास्त्र-शास्त्र ही नहीं। वेद में माता-पिता के सम्बन्ध मे कहा है।

मातृदेवो भव, पितृदेवो भव।

ठाणांग सूत्र मे भी ऐसी ही बात कही गई है।

गुरु की बात मानकर मां ने पूछा—माता-पिता का उपकार पुत्र पर है या पुत्र का उपकार माता-पिता पर है ?

गुरु ने ठाणांग सूत्र निकाल कर बताया और कहा—बेटा अपने माता-पिता के ऋण से कभी उऋण नही हो सकता चाहे वह कितनी ही सेवा करे।

गुरु की बात सुनकर पुत्र अपनी माता से कहने लगा—देखलो, शास्त्र मे भी यही लिखा है न, कि सेवा करके पुत्र, माता-पिता के उपकार से मुक्त नहीं होता ! फिर सेवा करने से क्या लाभ है।

पुत्र ने जो निष्कर्ष निकाला, उसे सुनकर गुरु बोले-मूर्ख, माता का उपकार अनन्त है और पुत्र की सेवा परिमित है। इस कारण वह उपकार से मुक्त नहीं हो सकता। पावनेदार जब कर्जदार के घर तकाजा करने जाता है तब उसका सत्कार करना तो शिष्टाचार मात्र है। उस सत्कार से ऋण नही पट सकता। इसी प्रकार माता-पिता की सेवा करना शिष्टाचार मात्र है। इतना करने से पुत्र उनके उपकारों से मुक्त नहीं हो सकता। पर इससे यह मतलब नही निकलता कि माता-पिता की सेवा नहीं करना चाहिये। अपने धर्म का विचार करके पुत्र को माता-पिता की सेवा करना ही चाहिए। माता-पिता नें अपने धर्म का विचार करके तेरा पालन-पोषण किया है। नहीं तो क्या ऐसे माता पिता नहीं मिलते जो

अपनी सतान के प्राण ले लेते हैं ?

गुरु की बात सुनकर माता को कुछ जोर बधा। उसने कहा—अब सुन ले कि मेरा तुझपर उपकार है या नही ? इसके बाद उसने गुरुजी से कहा—महाराज, यह मुझसे कहता है कि तू ने पेट मे रक्खा है तो उसका भाडा ले ले। इस विषय में शास्त्र क्या कहता है ?

प्रश्न सुनकर गुरुजी ने शास्त्र निकाल कर बताया। उसमें लिखा था कि गौतम स्वामी के प्रश्न करने पर भगवान् ने उत्तर दिया कि इस शरीर मे तीन अग माता के, तीन अग पिता के और शेष अग दोनो के हैं। मांस, रक्त और मस्तक माता के हैं। हाड, मज्जा और रोम पिता के हैं। शेष भाग माता और पिता दोनो के सम्मिलित हैं।

माता ने कहा—बेटा! तेरे शरीर का रक्त और मास मेरा है। हमारी चीजें हमें देदे और इतने दिन इनके काम लेने का भाड़ा भी चुकता कर दे।

यह सब सुनकर बेटे की आख खुली। उसे माता और पिता के उपकारो का ख्याल आया तो उनके प्रति प्रबल भक्ति हुई। वह पश्चात्ताप करके कहने लगा—मैं कुचाल चल रहा था। कुसगति के कारण मेरी बुद्धि मलीन हो गई थी। इसके बाद वह गुरुजी के चरणो मे गिर पडा। कहने लगा—माता-पिता का उपकार तो मैं समझ गया पर उस उपकार को समझाने वाले का उपकार समझ सकना कठिन है। आपके अनुग्रह से मैं माता-पिता का उपकार समझ सका हू।

कहने का आशय यही है कि मातृत्व को समझने के लिए सर्व प्रथम माता-पिता के प्रति श्रद्धा की भावना लाओ।

भले ही पुत्र कितना भी पढ़ा-लिखा क्यों न हो, बुद्धि वैभव कितना ही विशाल क्यों न हो, समाज मे कितनी ही प्रतिष्ठा

क्यों न हो, फिर भी माता के समक्ष विनम्रता धारण करना पुत्र का कर्तव्य है। अगर पुत्र विनीत है तो उसके सद्‌गुणो का विकास ही होगा। प्रतिष्ठा मे वृद्धि ही होगी। ह्रास होने की तो कोई सभावना ही नही की जा सकती। पुत्र अगर माता-पिता का आदर करेगा तो लोग भी उसका आदर करेंगे।

जो अविनीत है, जो माता-पिता की अवज्ञा करता है और जो माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध चलता है, वह कुल के लिये अगार है। इसलिये वह अविनीत कहलाता है।

७—संस्कारों का आरोपण

लेकिन अविनय, अशिक्षा आदि दुर्गुणों को दूर करने का प्रयत्न सर्वप्रथम बाल्यावस्था में ही माता के द्वारा किया जाना चाहिये। बचपन के संस्कार जीवन भर के लिये होते हैं। माता के सभी अच्छे या बुरे सस्कार बच्चे पर पडे बिना नही रहते। माता अगर चाहे तो अपने सद्‌गुणों द्वारा बच्चे को गुणवान् बना सकती है।

ज्ञानियों का कथन है कि बालक का जितना सुधार बचपन में होता है उतना कभी नहीं होता। मान लीजिये किसी वृक्ष का अकुर अभी छोटा है। वह फल-फूल नही देता। उस अकुर से लाभ तो फल फूल—आने पर ही होगा, लेकिन फल-फूल आदि की समस्त शक्तियाँ उस अकुर में उस समय भी अव्यक्त रूप में मौजूद रहती हैं। अकुर अगर जल जाय तो फल—फूल आने की कोई क्रिया नहीं होती।

इसी प्रकार बालक में मनुष्य की सब शक्तियां छिपी हुई हैं। योग्य दिशा में उसका विकास होने पर समय पाकर उसकी शक्तियाँ खिल उठती हैं। मगर बालक को पालने में डालकर दबा रखने से उसका विकास नहीं होता। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक

जगह लिखा है कि "पाच वर्ष तक के बालक को सिले कपड़े पहनाने की आवश्यकता नही है। इस अवस्था में बालक को कपडों से लाद देने का परिणाम वही होता है जो अकुर को ढांक देने से होता है। बालक कपडा पहिनने से दबा रहता है। प्रकृति ने उसे ऐसी सज्ञा दी है कि कपडा उसे सुहाता नहीं और जबर्दस्ती करने पर वह रोने लगता है। लेकिन उसके रोने को मा-बाप उसी तरह नहीं सुनते जैसे भारतीयो के रोने को अंग्रेज नही सुनते थे। माताए अपने मनोरजन के लिये या बडप्पन दिखाने के लिये बच्चे को कपडो मे जकड देती हैं और इतने से सतुष्ट न होकर हाथ-पैरों में गहनों की वेडियां भी डाल देती हैं। पैरो में बूट पहना देती हैं। इस प्रकार जैसे उगते हुए अकुर को ढंक कर उसका सत्यानाश किया जाता है, उसी प्रकार बालक के शरीर को ढंक कर, जकड कर उसका विकास रोक दिया जाता है। अशिक्षित स्त्रिया बालक के लिये गहने न मिलने पर रोने लगती हैं, जबकि उन्हें अपना और बच्चें का सौभाग्य मनाना चाहिए।"

बच्चों के बचपन मे ही सस्कार सुधारने चाहिये। बडे होने पर तो वह अपने आप सब बातें समझने लगेंगे। मगर उनका झुकाव और उनकी प्रवृत्ति बचपन में पडे संस्कारो के अनुसार ही होगी।

आजकल बहुत कम माताएँ बच्चों को बचपन में दी जाने वाली शिक्षा के महत्व को समझाती हैं और अधिकांश माता-पिता शिक्षा को आजीविका का मददगार समझ कर, धनोपार्जन का साधन मानकर ही बच्चो को शिक्षा दिलाते हैं। इसी कारण वह शिक्षा के विषय में भी कजूसी करते हैं। लोग छोटे बच्चो के लिये कम वेतन वाले छोटे अध्यापक नियत करते हैं। किन्तु यह बहुत बडी भूल है। छोटे बच्चों मे अच्छे

सस्कार डालने के लिये वयस्क अनुभवी अध्यापक की आवश्यकता होती है।

एक यूरोपियन ने अपनी लडकी को शिक्षा देने के लिये एक विदुषी महिला नियुक्त की। उनसे एक सज्जन ने पूछा—आपकी लडकी तो बहुत छोटी है और प्रारंभिक पढ़ाई चल रही है, उसके लिये इतनी बडी विदुषी की क्या आवश्यकता है ? उस यूरोपियन ने उत्तर दिया—'आप इसका रहस्य नही समझ सकते। छोटे बच्चो में जितने जल्दी सस्कार डाले जा सकते हैं, बडो मे नहीं। यह बालिका अच्छा शिक्षण पाने से थोडे ही दिनों में बुद्धिमती बन जाएगी।'

प्राचीनकाल के शिक्षक विद्यार्थियों को यह समझाते थे कि माता-पिता का क्या दर्जा है और उनके प्रति पुत्र का क्या कर्तव्य है ? आज भी यह बात सिखाने की नितान्त आवश्यकता है।

बालक को सस्कार—सम्पन्न बनाने का उत्तरदायित्व, जैसा कि पहले कहा गया है, शिक्षको पर तो है ही, मगर पिता और विशेपकर ही नही पर अनिवार्य रूप से माता पर है। माता के सहयोग के बिना शिक्षक अपने प्रयत्न में पूरी तरह सफल नहीं हो सकता।

यह जो कहा गया है ठीक ही है कि सन्तान तो पशु भी उत्पन्न करते हैं। इसमें मनुष्य की कोई विशेषता नहीं। मनुष्य की विशेषता सन्तान का समुचित रूप से पालन-पोषण करके सुखकारी बनाने में है।

शिक्षक के साथ बालक के माता-पिता का सहयोग नितांत जरूरी है। मान लीजिये शिक्षक पाठशाला में बालक को सत्य बोलने की सीख देता है और स्वय भी सत्य बोलकर उसके सामने आदर्श उपस्थित करता है, मगर बालक जब घर पर

का विचार किया। राजा ने सोचा—शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिये क्षत्रिय पुत्र को भेजने से एक पथ दो काज होंगे। एक तो शत्रु वश मे आ जाएगा, दूसरे क्षत्रिय पुत्र की परीक्षा भी हो जाएगी।

इस प्रकार विचार कर राजा ने क्षत्रिय पुत्र को शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिये सेना के साथ भेज दिया। क्षत्रिय पुत्र धीर था। वह तैयार होकर शत्रु को जीतने के लिये चल दिया। उसने शत्रु की सेना को अपनी वीरता का परिचय दिया, परास्त किया और शत्रु राजा को जीवित कैद करके राजा के सामने उपस्थित किया। राजा क्षत्रिय-पुत्र का पराक्रम देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने उचित पुरस्कार देकर उसका सत्कार किया। सारे गाव मे क्षत्रिय पुत्र की वीरता की प्रशसा होने लगी। जनता ने भी उसका सम्मान किया। क्षत्रिय पुत्र प्रसन्न होता हुआ अपने घर को जाने के लिये निकला। रास्ते में वह विचार करने लगा—आज मेरी मा मेरी पराक्रम गाथा सुनकर बहुत प्रसन्न होगी। घर पहुच कर वह सीधा माता को प्रणाम करने व आशीर्वाद लेने गया। पर जब वह माता के पास पहुचा तो उसने देखा—माता रुष्ट है और पीठ देकर बैठी है। माता को रुष्ट व क्रुद्ध देखकर विचार करने लगा— मुझ से ऐसा कौनसा अपराध बन गया है कि माता क्रुद्ध और रुष्ट हुई है।

आजकल का पुत्र होता तो मनचाहा सुना देता, परन्तु उस क्षत्रिय पुत्र को तो पहले से ही वीरोचित शिक्षा दी गई थी कि :—

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।

अर्थात्—माता देव तुल्य है, पितादेव तुल्य है और आचार्य देव तुल्य है। अतएव माता-पिता और आचार्य की आज्ञा की अवज्ञा नही करनी चाहिये।

यह सुशिक्षा मिलने के कारण क्षत्रिय-पुत्र ने नम्रतापूर्वक माता से कहा—माँ मुझ से ऐसा क्या अपराध बन गया है कि आप मुझ पर इतनी क्रुद्ध हैं ? मेरा अपराध मुझे बताइये, जिससे मैं उसके लिये क्षमायाचना कर सकूं ।

माता बोली—जिसका पितृहन्ता मौजूद है उसने दूसरे शत्रु को जीता भी तो उससे क्या ?

क्षत्रिय पुत्र ने चकित होकर कहा—क्या मेरे पिता का घात करने वाला मौजूद है !

माता—हाँ वह अभी जीवित है ।

क्षत्रिय पुत्र—ऐसा है तो अभी तक मुझे बताया क्यों नहीं माँ ?

माता— मैं तेरे पराक्रम की जांच कर रही थी । अब मुझे विश्वास हो गया कि तू वीरपुत्र है । जब तू दूसरे शत्रु को परास्त कर चुका है तब अपने पिता का घात करने वाले शत्रु को भी अवश्य पराजित कर सकेगा । तेरा सामर्थ्य देखे बिना शत्रु के साथ भिड जाने को कैसे कहती ?

क्षत्रिय-पुत्र माता का कथन सुनकर उत्तेजित होकर कहने लगा—मैं अभी शत्रु को पराजित करने जाता हूँ । अपने पिता के वैर का बदला लिये बिना हर्गिज नहीं लौटूंगा । इतना कह कर वह उसी समय चल दिया ।

दूसरी ओर क्षत्रिय-पुत्र के पिता की हत्या करने वाले क्षत्रिय ने सुना कि—जिसे मैंने मार डाला उसका पुत्र क्रुद्ध होकर अपने पिता का वैर भंजाने के लिये मेरे साथ लडाई करने आ रहा है । यह सुनकर उस क्षत्रिय ने विचार किया—वह बडा वीर है और उसकी शरण में जाना ही हितकर है । इसी में मेरा कल्याण है । इस तरह विचार करके वह स्वयं जाकर क्षत्रिय पुत्र के अधीन हो गया । क्षत्रिय-पुत्र उस पितृघातक शत्रु को लेकर

माता के पास आया। उसने माता से कहा—इसी क्षत्रिय ने मेरे पिता की हत्या की है। इसे पकड कर तुम्हारे पास ले आया हूँ। अब जो तुम कहो वही दण्ड इसे दिया जाय।

माता ने अपने पुत्र से कहा—इसी से पूछ देख कि इसके अपराध का इसे क्या दण्ड मिलना चाहिये ?

पुत्र ने शत्रु से पूछा—बोलो, अपने पिता का बदला तुमसे किस प्रकार लू ?

शत्रु ने उत्तर दिया—तुम अपने पिता के वैर का बदला उसी प्रकार लो, जिस प्रकार शरण मे आए हुए मनुष्य से लिया जाता है।

क्षत्रिय-पुत्र की माता सच्ची मां और क्षत्रियाणी थी। उसका हृदय तुच्छ नही, विशाल था। माता ने पुत्र से कहा—बेटा ? अब इसे शत्रु नहीं, भाई समझ। जब यह शरण में आ गया है, तो शरणगत से बदला लेना सर्वथा अनुचित है। शरण में आया हुआ कितना ही बडा अपराधी क्यों न हो, फिर भी भाई के समान है। अतएव यह तेरा शत्रु नही, भाई है। मैं अभी भोजन बनाती हू। तुम दोनो साथ-साथ बैठ कर आनन्द से जीमो और प्रेमपूर्वक रहो। मैं यही देखना चाहती हूँ।

माता का कथन सुन कर पुत्र ने कहा—माताजी ! तुम पितृघातक शत्रु को भी भाई बनाने को कहती हो, पर मेरे-हृदय मे जो क्रोधाग्नि जल रही है उसे किस प्रकार शात करूँ।

माता ने कहा—पुत्र, किसी मनुष्य पर क्रोध उतार कर क्रोध शांत करना कोई वीरता नही है। क्रोध पर ही क्रोध उतार कर शात करना अथवा क्रोध पर विजय प्राप्त करना ही सच्ची वीरता है।

माता का आदेश पाकर पुत्र ने प्रसन्नतापूर्वक अपने पितृ-हन्ता शत्रु को गले लगाया। दोनों ने सगे भाई की तरह साथ-

साथ भोजन किया ।

इसे कहते हैं चतुर माता की सच्ची सीख ? पुत्र को सन्मार्ग पर चलाना ही तो सच्चा मातृत्व है ।

आजकल पुत्र को जन्म देने की लालसा का तो पार ही नहीं है, पर उसमे उत्तम सस्कार डालने की ओर शायद ही किसी का ध्यान जाता है । माताएँ पुत्र को पाकर ही अपने को धन्य मान बैठती हैं । पर पुत्र को जन्म देते ही कितना महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व सिर पर आ जाता है, यह कल्पना बहुत माताओं को नही है । पुत्र को जन्म देकर उसे सुसस्कृत न बनाना घोर नैतिक अपराध है । अगर कोई मां-बाप अपने बालक की आंखों पर पट्टी बाध दें तो आप उन्हें क्या कहेंगे ?

निर्दयी !

बालक को देखने की जो शक्ति है उसे रोक देना माता-पिता का धर्म नहीं है । इसके विपरीत उसके नेत्र में कोई रोग है, विकार है, तो उसे दूर करना उनका कर्त्तव्य है ।

यह बाह्य चर्मचक्षु की बात है, चर्म-चक्षु तो बालक के उत्पन्न होने के पश्चात् कुछ समय में अपने आप ही खुल जाते हैं, पर हृदय के चक्षु इस तरह नही खुलते । हृदय के चक्षु खोलने के लिये सत्सस्कारो की आवश्यकता पडती है । बालकों को अच्छी शिक्षा देने से उनके जीवन का निर्माण होता है ।

७—सन्तति-नियमन

इस जमाने में जननेन्द्रिय की लोलुपता ने प्रचण्ड रूप धारण किया है और इसके फलस्वरूप सन्तानोत्पत्ति मे वृद्धि हो रही है। सन्तानो की इस बढती को देखकर कई लोग यह सोचने लगे हैं कि गरीब भारतवर्ष के लिए सन्तान-वृद्धि एक असह्य भार है। इस भार से भारत को बचाने के लिए उपाय ईजाद किया गया है कि सन्तान की उत्पति के स्थान को ही नष्ट कर दिया जाय! न रहेगा बास, न बजेगी बाँसुरी।

यह उपाय सन्तति—नियमन या सन्तति निरोध कहलाता है। और इसी विषय पर मुझे अपने विचार प्रकट करने हैं। इस विषय का न तो मेरा अधिक अभ्यास है और न अध्ययन ही। पर समाचार पत्रों और कुछ पुस्तकों को पढकर मैं यह जान पाया हू कि कुछ लोग बडे जोर-शोर से कहते हैं कि—"बढती जाती हुई सन्तान को अटकाने के लिए शस्त्र या औषध द्वारा स्त्रियो की जनन-शक्ति का नाश कर दिया जाय, उनके गर्भाशय का आपरेशन कर डाला जाय, या फिर उनके गर्भाशय को इतना निर्बल बना दिया जाय कि सन्तान की पैदाइश हो ही न सके।" इस उपाय द्वारा सन्तति-निरोध करने की आवश्यकता बतलाते हुए वे लोग कहते हैं —

ससार आज बेकारी के बोझ से दबा जा रहा है। भारतवर्ष तो विशेष रूप से बेकारी की बीमारी का मारा कराह रहा है। ऐसी दुर्दशा में खर्च मे वृद्धि करना उचित कैसे कहा जा सकता है? इधर सन्तान की वृद्धि के साथ अनिवार्य रूप से व्यय

मे वृद्धि होती है। सन्तान जब उत्पन्न होती है तब भी खर्च होता है, उसके पालन-पोषण में खर्च होता है, उसकी शिक्षा-दीक्षा में भी खर्च उठाना पड़ता है। उस दशा में जबकि अपना और अपनी पत्नी का पेट पालना भी दूभर हो पड़ा है, सन्तान उत्पन्न करके खर्च मे वृद्धि करना आर्थिक सकट को अपने हाथो आमन्त्रण देना है। आर्थिक सकट के साथ अन्य अनेक कष्ट बढ़ जाते हैं। अतएव स्त्रियो की जनन-शक्ति नष्ट करके यदि सन्तानोंत्पत्ति से छुटकारा पा लिया जाय तो बहुत से कष्टों से बचा जा सकता है।

यह आधुनिक सुधारकों का, संतति-नियमन के कृत्रिम उपायों के प्रचारको की प्रधान युक्ति है। इस पर यदि गहरा विचार किया जाय तो साफ मालूम हो जाएगा कि यह युक्ति निस्सार है। ससार में बेकारी बढ गई है, गरीबी बढ गई है, और इससे दुःख बढ गया है, इस कारण सन्तति-नियमन की आवश्यकता है, यह सब तो ठीक है। किन्तु गरीबी और बेकारी की विपदा से बचने के लिए सन्तति-निरोध का जो उपाय बताया जाता है वह उपाय प्रत्येक दृष्टि से अत्यन्त ही हानिकारक, निन्दनीय और घृणित है। इस सम्बन्ध मे मैं जो सोचता हू उसे कोई माने या न माने, यह अपनी-अपनी इच्छा और संस्कार पर निर्भर है, पर मैं अपने विचार प्रकट कर देना चाहता हूँ। आजकल यह कहा जाता है कि यह विचार स्वातन्त्र्य का युग है। सबको अपने-अपने विचार प्रकट करने का अधिकार है। यदि यह सच है तो मुझे भी अपने विचार प्रकट करने का अधिकार है। अतएव इस सम्बन्ध में जो बात मेरे मन में आई है वह प्रकट कर देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

कल्पना करो एक अत्यन्त सुन्दर बगीचा है। इस बगीचे में भांति-भांति के वृक्ष हैं। इन वृक्षो में एक बहुत ही सुन्दर वृक्ष

यह एक दृष्टान्त है और सन्तति नियमन के सम्बन्ध में इसे इस प्रकार घटित किया जा सकता है —

यह ससार एक बगीचे के समान है। ससारी जीव इसी बगीचे के वृक्ष हैं। जीव-रूपी इन वृक्षों मे मानव वृक्ष सबसे श्रेष्ठ है। इस मानव-रूपी वृक्ष मे किसी कारण से अति सन्तान रूप फल बहुत लगते हैं और ये फल निस्सत्व और हानिकारक होने से भार-रूप प्रतीत होते हैं। अति सतति की बदौलत मनुष्य के फल-वीर्य का ह्रास हो रहा है, खर्च का भार बढ गया है, बेकारी बढ गई है और अतएव सन्तान भी दुखी हो रही है।

आज के सुधारक—जो अपने को ससार के और विशेषतः मानव समाज के हितैषी मानते है—इस दुरावस्था को समझने और उसे दूर करने के लिये उपायों पर विचार करने लगे।

इन सुधारकों में से एक कहता है—विज्ञान की बदौलत मैंने एक उपाय ऐसा खोज निकाला है, जिससे मनुष्य रूपी वृक्ष कायम रहेगा, उसके सुख सौन्दर्य को किसी प्रकार की क्षति न पहुचेगी, और साथ ही उस पर अति सतति-रूप भार भी न पड़ेगा। और वह उपाय यह है कि शस्त्र या औषध के प्रयोग से गर्भाशय का सफाया कर दिया जाय।

इस प्रकार सतति-नियमन के लिये एक व्यक्ति गर्भाशय का नाश करने की सम्मति देता है। दूसरा कहता है कि ऐसा करने से तो मनुष्य समाज ही समूल नष्ट हो जायगा, अतएव यह उपाय प्रयोजनीय है।

आजकल के सुधारक बढती हुई सतति का निरोध करने के लिये इसी को अतिम उपाय मानते हैं। बहुत से लोगो को यह उपाय पसद भी आ गया है और वे इसका प्रचार भी करते हैं। सुना तो यहा तक जाता है कि इस उपाय का प्रचार करने के लिए

सरकार भी सहायता दे रही है ।

लोग यह सोचते हैं कि इस उपाय का प्रयोग करने से हमारे विषय भोग में भी बाधा नहीं पड़ेगी और हमारे ऊपर संतान का बोझ भी न पड़ेगा । अति संतति की उलझन से भी छुटकारा मिल जायगा और आमोद-प्रमोद में भी कमी न करनी पड़ेगी । जान पड़ता है इसी विचार से प्रेरित होकर लोग इस उपाय का अवलम्बन करने के लिए ललचा उठे हैं ।

भगवान् अरिष्टनेमि के जमाने में जिस प्रकार जिह्वा लोलुपता का प्रचार हो रहा था उसी प्रकार आज जननेन्द्रिय अथवा स्पर्शनेन्द्रिय ने प्रायः सर्व साधारण को अपना दास बना लिया है । विषय-लोलुपता के कारण आज की जनता मे अपनी संतान के प्रति भी द्रोह की भावना उत्पन्न हो गई है और इसी कारण संतान को विषय–भोग में बाधक माना जा रहा है । इस विघ्न-बाधा को हटाकर, अपनी काम लिप्सा को निरकुश और निर्विघ्न बनाने के जघन्य उद्देश्य से प्रेरित होकर ही लोग उपर्युक्त उपाय काम में लाना पसन्द करते हैं । जहाँ विषय-भोग की वासना में वृद्धि होती है वहा इस प्रकार की कुत्सित मनोवृत्ति होना स्वाभाविक है । गीता मे कहा है—

ध्यायतो विषयान् पुंस सङ्गस्तेषूपजायते,
संगात्सञ्जायते काम: कामात् क्रोधोऽभिजायते ।
क्रोधाद् भवति सम्मोह सम्मोहात्स्मृतिविभ्रम,
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।

इन्द्रिय-लोलुपता किस प्रकार विनाश को जन्म देती है, इसका स्वाभाविक क्रम गीता मे इस प्रकार बताया गया है :—

विषयों का विचार करने से संग उत्पन्न होता है, संग से काम की उत्पत्ति होती है । काम से क्रोध, क्रोध से सम्मोह अर्थात् अज्ञान का जन्म होता है, अज्ञान से स्मृति का नाश होता है, स्मृति

के नाश से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और बुद्धि-भ्रष्ट हो जाने के फल स्वरूप सर्वनाश हो जाता है।

आज सतति-नियमन के लिए जिस दृष्टि को सन्मुख रखकर उपायो की आयोजना की जा रही है और जिन उपायो को कल्याणकारी समझा जा रहा है, उनका भावी परिणाम देखते हुए यही कहा जा सकता है कि यह सब विनाश का पथ है।

जन साधारण के विचार के अनुसार विषय-भोगों का त्याग नही किया जा सकता। इसी भ्रान्त विचार के कारण विषय-लालसा जागृत होकर विषय-भोग का सेवन किया जाता है। अधिक से अधिक स्त्री-सग करके विषयो का सेवन किया जाय, ऐसी इच्छा की जाती है। इस इच्छा की पूर्ति के लिए कामोत्तेजक गोलिया, याकूति गोलिया आदि जीवन को बर्बाद करने वाली चीजो का उपयोग किया जाता है। आजकल विषय-भोग की लालसा इस सीमा तक बढ गई है कि जीवन को मटियामेट करने वाली, कामवर्धक चीजो के विज्ञापनो को रोकने की ओर तो तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता, उल्टे संतति रोकने के लिए कृत्रिम उपायो का आश्रय लिया जाता है।

कहने का आशय यह है कि स्त्री-सग करने से कामवासना जागृत होती है और उससे क्रोध उत्पन्न होता है। जो कामवासना को चरितार्थ करने में बाधक हो उस पर क्रोध आना स्वाभाविक ही है। सतान पर क्रोध आने का यही प्रधान कारण है। इस भावना के कारण अपनी प्यारी सतान भी शैतान का अवतार प्रतीत होती है। यही कारण है कि सतान से खर्च में वृद्धि होती है, और वह भोग भोगने मे विघ्न उपस्थित करती है। इस कारण ऐसे उपायों की योजना की जाती है जिससे सतान पैदा ही न होने पाए। किन्तु यह वृत्ति अत्यन्त भयकर है। जिस दृष्टि को सन्मुख रखकर आज सतान पर क्रोध किया जाता है, उसके प्रति

द्रोह किया जा रहा है और उसकी उत्पत्ति का नाश किया जा रहा है, उस दृष्टि पर गहरा और दूरदर्शितापूर्ण विचार किया जाय तो, जान पड़ेगा कि यह दृष्टि धीरे-धीरें बढ़ती हुई कुछ भी काम न कर सकने वाले—अतएव भार-स्वरूप समझ लिये जाने वाले वृद्ध और अपाहिज पुरुषों के विनाश के लिये प्रेरित करेगी। इससे जिस प्रकार सतान के प्रति व्यवहार किया जा रहा है उसी प्रकार वृद्धो के प्रति भी निदयतापूर्ण व्यवहार करने की भावना उत्पन्न होगी। फिर स्त्रिया भी यह सोचने लगेंगी कि मेरा पति अब अशक्त और अयोग्य हो गया है। यह मेरे लिये अब भार-स्वरूप है और मेरी स्वतन्त्रता मे बाधक है ऐसी दशा में क्यो न उसका विनाश कर डाला जाय? पुरुष भी इसी प्रकार स्त्रियों को अयोग्य एव असमर्थ समझ कर उनके विनाश का विचार करेगा। इस प्रकार शस्त्र या ओषध का जो कृत्रिम उपाय, खर्च से बचने और संतति-नियमन के काम में लाया जाता है, वही उपाय स्त्री और पुरुषों के प्राणो का सहार करने के काम मे लाया जाने लगेगा। परिणाम यह होगा कि मानवीय सद्‌गुणों का नाश हो जायगा, समाज की शृङ्खला भग्न हो जायगी, हिसा—राक्षसी की चडाल—चौकडी मच जायगी और जो भयकर काल अभी दूर है वह एक दम नजदीक आ जायगा।

सन्तति-नियमन के भयकर और प्रलयकर उपाय से और भी अनेक अर्थ उत्पन्न हो सकते हैं। इस उपाय के विषय में स्त्रियां यह सोच सकती हैं कि सतान की बदोलत ही मेरे गर्भाशय का आपरेशन किया जाता है, अतएव आपरेशन की झझट से बचने के लिए सन्तान उत्पन्न होते ही क्यों न उसका गला घोट दू?

शस्त्र-प्रयोग से जब सन्तति की उत्पत्ति रोकी जा सकती है और इस प्रकार सतति के प्रति अन्त करण में बसने वाली स्वाभाविक ममता और दया को तिलाजली दी जा सकती है, तो यह क्या असमव है कि एक दिन ऐसा आ जाय जब लोग अपनी लूली-

लगड़ी या अविनीत संतान का भी वध करने पर उतारू हो जाएँ ?

इस प्रकार सतति-नियमन के लिए किये जाने वाले कृत्रिम उपायों के कारण घोर अनर्थ फैल जाएँगे और मानवीय अन्तःकरण में विद्यमान नैसर्गिक दया आदि सद्भावनाएँ समूल नष्ट हो जाएँगी।

यहा एक आशका की जा सकती है। वह यह कि जो सतान उत्पन्न हो चुकी हो उसे नष्ट करना तो पाप है, मगर सतान को उत्पन्न न होने देने के लिए गर्भाशय का आपरेशन कराना पाप कैसे कहा जा सकता है ?

इस आशका का समधान यह है। मान लीजिए एक मनुष्य किसी नौका में छेद कर रहा है और उस पर बहुत से मनुष्य सवार हैं। वह मनुष्य नौका पर सवार मनुष्यों को तो मार नहीं रहा है, सिर्फ नौका में छेद कर रहा है। तो क्या यह कहा जा सकता है कि वह सचमुच उन आदमियो के प्राण नही ले रहा है ? यदि यह नहीं कहा जा सकता है तो यह कैसे कहा जा सकता है कि उत्पत्तिस्थान को नष्ट करके अपने विषयभोग चालू रखने के लिए हिंसा नहीं की जा रही है ? इसके अतिरिक्त जब मनुष्य को परोक्ष हिंसा से घृणा नही होगी, वरन् जान-बूझकर परोक्ष हिंसा की जायगी, तो प्रत्यक्ष हिंसा करने मे भी घृणा उठ जायगी !

कहा जा सकता है कि इस बढ़ती जाने वाली सतान का निग्रह किस प्रकार करना चाहिए ? सतान का नियमन न किया तो पिल्लों की तरह सतान बढाते हुए चले जावें ? इस प्रश्न के उत्तर मे सबसे पहले हम यह कहना चाहते हैं कि विषयवासना को सदा के लिए ही शांत क्यों न कर दिया जाय ? काम-वासना में वृद्धि क्यों की जाय और स्त्री-प्रसंग क्यों किया जाय ? इस समस्या को हल करने के लिए भीष्म पितामह और भगवान् अरिष्टनेमि का

आदर्श सामने रखकर ब्रह्मचर्य का ही पालन क्यों न किया जाय ? ब्रह्मचर्य का पालन यदि पूर्ण रूप से किया जाय तो संतति नियमन की आवश्यकता ही प्रतीत नही होगी ।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य का आश्रय लेने से संतति-नियमन की समस्या सहज ही सुलझ जाती है । फिर उसके लिए हानिकारक उपायों का अवलम्बन करने की आवश्यकता नहीं रह जाती । संतति-नियमन के लिये ब्रह्मचर्य अमोघ उपाय है । पर विलासी लोग उसका उपयोग न करते हुये चाहते हैं कि न तो विषयभोग का परित्याग करना पड़े और न सन्तान ही उत्पन्न होने पावे । और इस दुरभिसन्धि की पूर्ति के लिए शस्त्र-प्रयोग आदि उपायों से जनन शक्ति का ही नाश करने की तरकीबें खोजते हैं । पर स्मरण रखना, यदि ब्रह्मचर्य का पालन न करके कृत्रिम उपायों द्वारा सन्तति-नियमन किया जायगा तो इससे भविष्य में अपार और असीम हानिया होगी । ब्रह्मचर्य का पालन न करते हुए संतान को कृत्रिम साधनों द्वारा रोका जायगा और पानी की भाँति वीर्य का दुरुपयोग किया जायगा तो निर्बलता मानव समाज को ग्रास लेगी और तब सन्तान की अपेक्षा मनुष्य स्वयं अपने लिए भार-रूप बन जायगा, ऐसा भार जिसे सहारना कठिन हो जायगा ।

सन्तति नियमन के लिए ब्रह्मचर्य ही अमोघ उपाय है— यही प्रशस्त साधन है । इस अमोघ उपाय की उपेक्षा करके— उसका तिरस्कार करके कृत्रिम साधनों से सन्तति नियमन करना और विषय भोग का व्यापार चालू रखना निसर्ग के नियमों का अतिक्रमण करना है । और नैसर्गिक नियमो का अतिक्रमण करके कोई भी व्यक्ति और कोई भी समाज सुखी नही हो सकता । यदि सन्तति-नियमन का उद्देश्य विषय-भोग का सेवन नही है, किन्तु आर्थिक और शारीरिक निर्बलता के कारण ही सन्तति-नियमन की

आवश्यकता का प्रतिपादन किया जाता है, तो भी ब्रह्मचर्य ही एक मात्र अमोघ उपाय है ।

कोई यह कह सकता है कि सन्तति नियमन के लिए ब्रह्मचर्य उत्तम उपाय तो है, पर विषय-भोग की इच्छा को रोक सकना शक्य नही है । ऐसी लाचारी की हालत में ब्रह्मचर्य का उपाय किस प्रकार काम में लाया जाय ?

किसी उपवास—चिकित्सक के पास कोई रोगी जाय और चिकित्सक से कहे कि अपने रोग का निवारण करना चाहता हूँ और उपवास-चिकित्सा-पद्धति को अच्छा भी मानता हू, पर उपवास करने में असमर्थ हू ! तो चिकित्सक उस रोगी को क्या उत्तर देगा ? निस्सदेह वह यही कह सकता है कि अगर उपवास नही कर सकते तो आपके रोग की औषधि इस चिकित्सालय मे नहीं है ! इसी प्रकार जब तुम विषय-भोग की इच्छा को जीत नहीं सकते, तो ब्रह्मचर्य के सिवाय और क्या इलाज है ? तुम ब्रह्मचर्य पालन नही करना चाहते और विषय-भोग की प्रवृति चालू रख कर सतति का नियमन करना चाहते हो तो, इसका अर्थ यही है कि तुम सतति-नियमन के सच्चे उपाय को काम में नहीं लाना चाहते, बल्कि विषय-वासना की पूर्ति मे तुम्हे सन्तान बाधक जान पडती है, इस-लिये उसका निरोध करना चाहते हो ।

खेद है कि लोगों के मन में यह भ्रम उत्पन्न हो गया है कि विषय-भोग की इच्छा का दमन करना असम्भव है । परन्तु जैसे नैपोलियन ने असम्भव शब्द को कोष मे से निकाल डालने को कहा था उसी प्रकार तुम अपने हृदय मे से काम भोग की इच्छा का दमन करने की असम्भवता को निकाल बाहर करो । ऐसा करने से तुम्हारा मनोबल सुदृढ बनेगा और तब विषय-भोग की कामना पर विजय प्राप्त करना तनिक भी कठिन न होगा ।

मर्यादित ब्रह्मचर्य का पालन करके उत्पन्न की हुई संतान

कितनी बलिष्ट होती है, इस बात को समझने के लिए हनुमान की कथा पर विचार करो। हनुमान हमे बल देंगे, इस भावना से लोग उसकी पूजा करते हैं, पर हनुमान की मूर्ति पर तेल या सिंदूर पोत देने से ही क्या बल की प्राप्ति हो सकती है ? हनुमान को जिस बल की प्राप्ति हुई थी वह ब्रह्मचर्य के प्रताप से हुई थी। वे शील के ही पुत्र थे। पवन, महासुन्दरी अजना का पाणिग्रहण करके उन्हें अपने घर लाये। फिर अजना के प्रति उनके हृदय मे किंचित् सन्देह उत्पन्न हो गया और इस कारण उन्होने अजना का परित्याग कर दिया। उन्होंने इस अवस्था मे अपने पर पूर्ण नियन्त्रण रक्खा। अजना ने यह समझ लिया था कि पतिदेव को मेरे विषय में शका उत्पन्न हो गई है और इसी कारण वे अपने ऊपर पूर्ण अकुश रखते हुए मुझ से अलग-अलग रहते हैं। यह समझ कर अजना ने भी अपने मन को वशीभूत करने का निश्चय कर लिया।

अजना की दासी ने एक बार अजना से कहा—पवनजी तुम्हारे लिए पति नहीं, प्रत्युत पापी हैं। वह जो पति होते तो क्या इस तरह अपनी पत्नी का परित्याग कर देते ?

अजना ने उत्तर दिया—दासी ! जीभ सभाल कर बोल। मेरे पति की निन्दा मत कर। वे सच्चे धर्मात्मा हैं। वे राजपुत्र हैं—चाहें तो अनेक कन्याओं का पाणिग्रहण कर सकते हैं। पर नहीं, मेरी खातिर वे अपने मन पर सयम रख रहे हैं। मेरे किसी पूर्वकृत पाप के कारण उन्हें मेरे विषय मे सन्देह उत्पन्न हो गया है। जब मेरा पाप दूर हो जायगा तो मेरे पति का सन्देह दूर हो जायगा और तब वे फिर मुझे पहले की तरह चाहने लगेंगे।

एक दिन वह था जब स्त्रिया अपने पति का प्रेम सम्पादन करने के लिए आत्म-समपर्ण करती थीं और आज यह दिन है कि पुनर्विवाह करने के लिए स्त्रियों को भरसक उत्तेजित किया जाता

है। उसके हृदय में काम-वासना की आग भड़काई जाती है। पुरुष स्वयं काम-वासना के गुलाम बन रहे हैं और इसी कारण आज विधवा-विवाह या पुनर्विवाह का प्रश्न खड़ा हो गया है। अगर विधवाओं की भांति पुरुष भी पत्नी की मृत्यु के पश्चात ब्रह्मचर्य का पालन करें और त्यागमय जीवन व्यतीत करें तो सहज ही प्रश्न हल हो सकता है। किन्तु स्त्री की मृत्यु के बाद पुरुष ऊपर से रोने का ढोंग भले ही करते हों पर नई स्त्री के आने के विचार से हृदय मे प्रसन्न होते हैं।

जैसे स्त्रियो के लिए अजना का आदर्श है, इसी प्रकार पुरुषो के लिए पवनकुमार का आदर्श है। पवनकुमार और अजना—दोनो ने बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया था। जैसे अजना बारह वर्ष तक ब्रह्मचारिणी रही उसी प्रकार पवनकुमार १२ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे। वह राजकुमार थे। चाहते तो एक छोड दस विवाह कर लेते अथवा आजकल की तरह दुर्व्यवहार कर सकते थे। पर उन्होने यह नहीं किया। उन्होंने सोचा जब मैं अपनी पत्नी को पतिव्रता देखना चाहता हूं तो मैं स्वयं दुराचार करके क्यों भ्रष्ट होऊं—मैं भी क्यों न पत्नीव्रती बनूं? मैं यह अनर्थ कैसे कर सकता हूं?

आज का पुरुष-वर्ग स्त्रियों की टीका करने में कमी नहीं रखता पर खुद कैसी-कैसी करतूतें कर रहा है, इस ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता। पुरुष समझता है, मुझे सब कुछ करने का अधिकार है, क्योंकि मैं पुरुष हूं! पर यह एकपक्षीय बात है। अतएव मैं यह कहता हूं कि स्त्री और पुरुष दोनों को ही शील का पालन करना चाहिए। शास्त्र में पुरुष के लिए स्वदार—सतोप और स्त्री के लिए स्वपति सतोप का पालन करें तो स्त्रियां स्वपति-सतोप व्रत का पालन क्यों न करेगी? पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन न हो सके तो भी यदि इस आंशिक व्रत का पालन किया जाय और

स्त्री-पुरुष सन्तोषपूर्वक मर्यादित जीवन व्यतीत करें तो सन्तति-नियमन का प्रश्न सहज ही हल हो सकता है।

बारह वर्ष बाद युद्ध मे जाते हुए पवनकुमार ने जगल मे पड़ाव डाला। वहीं पास मे किसी पेड़ के नीचे एक चकवी रो रही थी। पवनकुमार ने अपने मित्र प्रहस्त से उस चकवी के रोने का कारण पूछा। प्रहस्त ने कहा—रात में चकवा-चकवी का वियोग हो जाता है और इसी वियोग की वेदना से व्याकुल होकर यह चकवी रो रही है।

पवनकुमार ने प्रहस्त से कहा—जब यह चकवी केवल एक रात के वियोग से कल्पांत मचा रही है, तो मेरी पत्नी के दुख का क्या ठिकाना होगा जिसे मैंने बारह वर्ष से त्याग रक्खा है! मुझे उसके विषय में सन्देह उत्पन्न हो गया था और इसी कारण मैंने उसका त्याग कर दिया है।

प्रहस्त ने पवन से पूछा—अपनी पत्नी के प्रति आपको क्या सन्देह हो गया था? इस विषय मे आपने आज तक मुझ से कुछ भी जिक्र नहीं किया। जिक्र किया होता तो मैं आपके सन्देह का निवारण कर देता।

पवनकुमार ने अपना सन्देह प्रहस्त को बता दिया। प्रहस्त ने कहा—वह सती है। उस पर आपका यह सन्देह अनुचित है! आपका सन्देह सच्चा होता तो वह इतने दिनो तक घर में न बैठी रहती, वह कभी की मायके चली गई होती। आपने जिसे दूषण समझा और जिसके कारण आपको सन्देह हो गया है, वह दूषण नही, भूषण है—गुण है।

पवनकुमार सारी बात समझ गये। उनका सन्देह काफूर हो गया। उन्होंने प्रहस्त से कहा—मैंने एक सती-साध्वी स्त्री को बहुत कष्ट पहुचाया है। इस समय मैं समरागण मे जा रहा हू और कदाचित् मैं युद्ध में मारा गया तो यह दुख काटे की तरह मुझे

सदा ही सालता रहेगा । क्या ऐसा कोई उपाय नही है कि मैं रात भर उसके पास रह कर वापिस लौट सकूँ ? प्रहस्त ने कहा—है, क्यों नहीं, मैं ऐसी विद्या जानता हूँ ।

आज एरोप्लेन—वायुयान हैं, पर पहले आकाश में उड़ने की विद्या भी थी । इस विद्या के बल से प्रहस्त के साथ पवनकुमार अजना के निवास-स्थान पर आए । जिस समय पवनकुमार अजना के पास पहुच रहे थे, उस समय अजना की एक दासी उससे कह रही थी—जिसे तुम अपना सुहाग समझती हो, तुम्हारे उस पति ने तुम्हारा शकुन न लेकर तुम्हारा अपमान किया है । वास्तव में तुम्हारा पति अत्यन्त क्रूर है । मैं तो सोचती हूँ—वह युद्ध में अवश्य मारा जायगा ।

अजना और उसकी दासी के वार्तालाप से सहज ही यह समझा जा सकेगा कि वास्तव मे दासी और रानी मे कितना अन्तर होता है ! दासी के कथन के उत्तर मे अजना ने कहा—खबरदार, जो ऐसी बात मुंह से निकाली ! युद्ध में मेरे स्वामी अवश्य विजय प्राप्त करेंगे । मेरी भावना तो निरन्तर यही रहती है कि उन्हें शीघ्र ही विजय प्राप्त हो ।

दासी—जिसने तुम्हारा घोर अपमान किया है उसी को तुम विजयी चाहती हो ! कैसी भोली हो मालकिन !

अजना—मेरे पतिदेव के हृदय मे मेरे विषय में सन्देह उत्पन्न हुआ है । वे मुझे दुराचारिणी समझते हैं और इसी कारण युद्ध के लिए जाते समय उन्होने मेरा शकुन नहीं लिया है । मेरे पति महापुरुष और वीर हैं । उन्होने अपने पिताजी को युद्ध में नहीं जाने दिया और आप स्वय युद्ध में सम्मिलित होने गये हैं । वे ऐसे शूरवीर हैं और बारह वर्ष से ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं । ऐसे सच्चरित्र और वीर पुरुष की जीत नहीं होगी, तो किसकी होगी ?

इस प्रकार अजना और उसकी दासी मे चल रही बातचीत पवनकुमार ने शात चित्त से सुनी। पवनकुमार अजना की अपने प्रति अगाध निष्ठा देखकर गद्गद हो गये। प्रहस्त से उन्होंने कहा—मित्र ! मैंने इस सती के प्रति अक्षम्य अपराध किया है। अब किस प्रकार इसे अपना मुंह दिखाऊँ।

प्रहस्त ने कहा—थोडी देर और धैर्य धारण कीजिए। इतना कह कर प्रहस्त ने अजना के मकान की खिडकी खडखडाई। खिडकी की खडखडाहट सुनकर अजना गरज उठी—कौन दुष्ट है जो कुमार को बाहर गया देखकर इस समय आया है ? जो भी कोई हो, फौरन यहा से भाग जाय, अन्यथा उसे प्राणों से हाथ धोना पडेगा।

प्रहस्त ने उत्तर दिया—और कोई नहीं है। दूसरे किसकी हिम्मत है जो यहाँ आने का विचार भी कर सके। यह पवन-कुमारजी हैं और इनके साथ मैं इनका मित्र प्रहस्त हू। यह शब्द सुनते ही अजना के अग-अग में मानो बिजली दौड गई। उसकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। पर जब तक उसे खातिरी न हो गई, उसने किवाड न खोले। जब उसने खिडकी मे से देखकर यकीन कर लिया, तभी दरवाजा खोला।

अजना ने अर्घ लेकर अपने प्राण-पति पवनकुमार की आरती उतारी और फिर कुछ-कुछ लजाते हुए, सकुचाते हुए विनम्र वाणी से कहने लगी—'क्षमा करना नाथ, मैंने आपको बहुत कष्ट पहुचाया है।'

कष्ट किसने पहुचाया था ? पवनकुमार ने अजना को अथवा अजना ने पवनकुमार को ? वास्तव में तो पवनकुमार ने ही अजना को कष्ट दिया था। फिर भी अजना ने इस तरह की शिकायत न करते हुए उल्टा यही कहा कि—'मैंने आपको बहुत कष्ट दिया है ! मेरे कारण ही आपने एक निष्ठता के साथ बारह

वर्ष तक ब्रह्मचर्य पाला है। इस कष्ट के लिए मुझे क्षमा दीजिए। आपका सन्देह दूर हो गया है, यह जानकर आज मुझे असीम आनन्द की अनुभूति हो रही है।

पवनकुमार ने मन ही मन लजाते हुए कहा—'सती ? क्षमादान दो। अनजान में मैंने तुम सरीखी परम सती महिला को मिथ्या कलक लगाया है। मेरे इस घोर अपराध को क्षमा करो।'

अन्त में दोनों में ससार-सम्बन्ध हुआ। दोनों ने बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य पाला था, अतएव पवनकुमार के वीर्य से हनुमान जैसे बली बालक का जन्म हुआ।

आशय यह है कि ब्रह्मचर्यपूर्वक मर्यादित जीवन व्यतीत करने से सन्तान भी बलवान् होती है। अतएव सतति नियमन के सम्बन्ध में पवनकुमार का आदर्श सामने रखना चाहिए।

तुम कदाचित् भीष्म और भगवान् अरिष्टनेमि की तरह पूर्ण ब्रह्मचर्य नही रह सकते, तो पवनकुमार की भाँति ब्रह्मचर्यपूर्वक मर्यादित जीवन तो अवश्य बिता सकते हो। कामवासना पर काबू नहीं रखा जा सकता, इस भ्रमपूर्ण भावना का परित्याग करो। इस दुर्भावना के कारण ही विषय-वासना वेगवती बनती है।

मेरे सम्पूर्ण कथन का सार यही है कि इस समय सतति नियमन की आवश्यकता तो है, पर आजकल उसके लिए शस्त्र क्रिया या औषध का उपाय बताया जाता है, वह सच्चा हितकर उपाय नहीं है। यह उपाय तो प्रत्येक दृष्टि से लाभ के बदले हानि ही पहुंचाएगा। अतएव हानिकारक उपायों का उपयोग न करके सन्तति-नियमन के लिए ब्रह्मचर्य का अमोघ और कल्याणकारी उपाय काम मे लाना चाहिए। ब्रह्मचर्य के अवलम्बन से सन्तति का नियमन होगा और जो सन्तान होगी, वह स्वस्थ, सबल और सम्पन्न होगी। साथ ही तुम भी शक्तिशाली और चिरंजीवी बन सकोगे।

सन्तति-नियमन करके द्रव्य के अपव्यय या अधिक व्यय

से बचना चाहते हो—द्रव्य तुम्हें प्यारा है, तो असली धन—जीवन के मूल और शक्ति के स्त्रोत वीर्य—के अपव्यय से भी बचने का प्रयास करो। द्रव्य-धन की अपेक्षा वीर्य-धन का मूल्य कहीं अधिक है—बहुत अधिक है। फिर इस ओर दृष्टि-निपात क्यो नहीं करते ?

शस्त्र-क्रिया या औषध के प्रयोग द्वारा सन्तति-नियमन करने से अपनी हानि के साथ साथ परम्परा से दूसरो की भी हानि होगी इसके अतिरिक्त आजकल तो स्त्री-पुरुष की समानता का प्रश्न भी उपस्थित हो गया है। ऐसी दशा में, सम्भव है स्त्रियों की ओर से यह प्रश्न खडा कर दिया जाय कि सन्तति-नियमन के लिए हमारे गर्भाशय का ही आपरेशन क्यों किया जाय ? क्यो न पुरुषों को ही ऐसा बना दिया जाय जिससे सतान की उत्पत्ति ही न हो सके ! पुरुषों की उत्पादक शक्ति का ही विनाश क्यो न कर दिया जाय ?

सन्तति-नियमन के जिन कृत्रिम उपायो के कारण भविष्य में ऐसी भयानक स्थिति उत्पन्न होने की सम्भावना है, उन उपायों का प्रयोग न करना ही विवेकशीलता है। कदाचित सरकार सतति नियमन के लिए ऐसे कृत्रिम उपायो को काम में लाने के लिए कानून बना दे, तो सरकार के उस काले कानून को मानना या न मानना, तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। अगर तुम्हें भी सन्तति-नियमन के कृत्रिम उपाय अनुचित और हानिजनक जान पडते हों, तो इन उपायों का परित्याग करो और सन्तति-नियमन के लिए अमोघ उपाय ब्रह्मचर्य का पालन करो। इसी में, तुम्हारा समाज, का और अन्ततः विश्व का कल्याण है।

आज सतति निरोध के नाम पर स्त्री का गर्भाशय आपरेशन कराके निकलवा डालने का भी रिवाज चल पडा है। स्त्री का गर्भाशय निकलवा देने पर चाहे जितना विषय सेवन किया जाय,

कोई हर्ज नहीं, यह मान्यता आजकल बढती जा रही है लेकिन यह पद्धति अपनाने से आपके शील की तथा आपकी कोई कीमत न रहेगी। वीर्यरक्षा करने से ही मनुष्य की कीमत है। वीर्य को पचा जाने में ही बुद्धिमत्ता है।

आधुनिक डाक्टरो का मत है कि जवान आदमी शरीर मे वीर्य को नहीं पचा सकता। ऐसा करने से दूसरी हानि होने की सम्भावना रहती है। इस मान्यता के विपरीत हमारे ऋषि-मुनियों का अनुभव कुछ जुदा है। शास्त्र में ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये नववाड बतलाई हुई हैं जिनकी सहायता से वीर्य शरीर में पचाया जा सकता है।

अमेरिकन तत्ववेता डाक्टर थौर एक वार अपने शिष्य के साथ जगल मे गया था। शिष्य ने उनसे पूछा कि यदि कोई आदमी अपने वीर्य को शरीर मे न पचा सके तो उसे क्या करना चाहिए? थौर ने उत्तर दिया कि ऐसे व्यक्ति के लिये जीवन भर में एक वार स्त्री प्रसग करना अनुचित नहीं है। ऐसा करना वीर का काम है। जिस प्रकार सिह जीवन में एक वार सिहनी से मिलता है, वैसे ही जो जीवन में एक बार स्त्रीसग करता है वह वीर पुरुष है। शिष्य ने पूछा यदि ऐसा करने पर भी मन न रुके तो क्या करना चाहिए? थौर ने उत्तर दिया कि साल मे एक वार स्त्री प्रसग करना चाहिए। फिर शिष्य ने पूछा-यदि इस पर भी मन न रुके तो क्या करना? गुरु ने कहा कि मास मे एक बार स्त्री से मिलना चाहिये। यदि इस पर भी मन न रुके तो क्या करना चाहिये? पूछने पर थौर ने उत्तर दिया कि फिर मर जाना चाहिये।

आज समाज की क्या दशा है? आठम चौदस को भी शील पालने की शिक्षा देनी पडती है। आठम चौदस की प्रतिज्ञा लेकर लोग ऐसे भाव दिखलाते हैं मानो हम साधुओ पर कोई उप-

कार करते हैं। सच्चा श्रावक स्वस्त्री का आगार होने पर भी अपनी स्त्री के साथ भी सन्तोष से काम लेगा। जहां तक होगा बचने की कोशिश करेगा। सब सुधारों का मूल शील है। आप यदि जीवन में शील को स्थान देंगे तो कल्याण होगा।

जब स्त्री गर्भवती होती है तब उसके दो हृदय होते हैं। एक खुद का और दूसरा बालक का। दो हृदय होने के कारण उसकी इच्छा को दोहद कहा जाता है। उसकी इच्छा गर्भ की इच्छा मानी जाती है। जैसा जीव गर्भ में होता है वैसा दोहद भी होता है। दोहद के अच्छे-बुरे होने का अन्दाजा लगाया जा सकता है। श्रेणिक को कष्ट देने वाला उसका पुत्र कोणिक जब गर्भ में था तब उसकी माता को अपने पति श्रेणिक के कलेजे का मांस खाने की इच्छा उत्पन्न हुई थी। दुर्योधन जब गर्भ में था, उसकी माता को कौरव वंश के लोगों के कलेजे खाने की इच्छा हुई थी। गर्भ में जैसा बालक होता है वैसे ही दोहद होता है। दोहद पर से अन्दाजा लगाया जा सकता है कि गर्भस्थ बालक कैसा होगा। बालक के भूत और भविष्य का पता दोहद से लग सकता है। आजकल सांसारिक प्रपञ्चों का बोझा मगज पर अधिक होता है अत स्वप्न याद नही रहा करते। रात्रि मे नदी के बहाव का शब्द जोर से सुनाई देता है इसका अर्थ यह नही होता है कि रात में नदी जोर का शब्द करती है। वह सदा समान रूप से बहती है। किन्तु उस वक्त वातावरण में शान्ति होने से शब्द स्पष्ट सुनाई देता है। स्वप्न के विषय में भी यही बात है। शास्त्र में सब बातें हैं। यदि उनको ठीक तरह से समझने की कोशिश की जाय तो ज्ञात होगा कि उनमें भूत भविष्य का ज्ञान करने का भी तरीका छिपा हुआ है।

आजकल संतान वृद्धि के कारण लोग संतति नियमन करना चाहते हैं। यह अच्छी बात है। किन्तु दुःख है कि संतति-नियमन

का वास्तविक मार्ग ब्रह्मचर्य का पालन करना है उसे छोडकर लोग कृत्रिम उपायो को काम में लाते हैं। अपने विषय भोग को छोडना नही चाहते मगर सन्तति निरोध चाहते हैं। यह प्रशस्त मार्ग नहीं है। इसमें दया भाव नही है। सतान उत्पन्न होने की क्रिया ही न करना निरोध का ठीक रास्ता है।

गर्भ रह जाने के बाद उसकी सभाल न करना निष्करुणा है। धारिणी रानी को जब गर्भ था वह अधिक ठडे अधिक गर्म अधिक तीखे कडुवे कसायले खट्टे मीठे पदार्थों का भोजन न करती। ऐसी चीजों पर उसका मन भी दौड जाता फिर भी गर्भ की रक्षा के लिए वह अपनी जबान पर काबू रखती थी। वह न अधिक जागती न सोती। न अधिक चलती और न पडी रहती।

ब्रह्मचर्य का पालन न करने से गर्भ रह जाय तब यह उत्तर दे देना कि बालक के भाग्य में जैसा होगा वैसे देखा जायगा, नगाईपूर्ण उत्तर है। इस उत्तर में कर्त्तव्य का ख्याल नहीं है। किसी को पांच रुपये देने हैं। वह लेने वाले कह दे कि तेरे भाग्य मे होगा तो मिल जायगा नही तो नही मिलेंगे। यह उत्तर व्यवहार मे नगाई का उत्तर गिना जाता है। इसी प्रकार पहले अपने ऊपर काबू न रखना और बाद मे कह देना कि जैसा नसीब में होगा देखा जायगा, मूर्खता सूचित करता है, केवल मूर्खता ही नहीं किन्तु निर्दयता भी साबित होती है।

९—पर्दा

पाश्चात्य और बहुत से पूर्वी देशों में भी बहुत प्राचीनकाल से समाज मे स्त्रियों की स्थिति पुरुषों की अपेक्षा सदैव नीची ही रही। उन्हें पुरुषो के ही एक अधिकार की वस्तु समझा जाता रहा। भारतवर्ष में भी अत्यन्त प्राचीन काल को छोड दिया जाय तो भी यही स्पष्ट होगा कि यद्यपि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता, का सिद्धान्त मान्य था फिर भी उनकी हालत पुरुषो सरीखी नही थी। उन्हे पति की आज्ञा मानना, पति चाहे जैसा व्यसनी हो उसकी सेवा करना, उसके लिये सर्वस्व समपण करना ही श्रेष्ठ था। यद्यपि पुरुष भी पत्नी के प्रति अपने कर्त्तव्य के लिए स्वच्छंद न थे पर फिर भी स्त्रियो के प्रति कुछ नीची दृष्टि अवश्य थी। अन्य देशों मे तो स्त्रियो को बिलकुल पुरुष की जायदाद ही समझा जाता था। उसके अधिकार में अन्य वस्तुओ की तरह वह भी एक थी। वह अपनी मर्जी से चाहे जितनी शादिया कर सकता था। जब उसकी इच्छा हो उन्हें छोडकर अन्य पुरुषो को दे सकता था। किन्ही अन्य सुन्दर स्त्रियों को चुराने की प्रथा भी थी। युद्धादि के बाद अन्य वस्तुओं की लूट के साथ-साथ स्त्रियों को भी लूटा जाता था। उनके साथ खुले आम व्यभिचार होता था। घोडा-गाय आदि की तरह ही स्त्रियो को रखा जाता रहा। अपनी वस्तुओं को जैसे छिपाकर रखा जाता है उसी प्रकार औरतो को भी बडे यत्न से परदों और बुरखों में छिपाकर रखा जाता था। सुन्दर स्त्रियों को तो और भी सबकी दृष्टि से बचा कर रखे जाने का

प्रयत्न होता था। यही उनकी परतन्त्रता का एक रूप परदे के रूप मे अब तक बना हुआ है।

स्त्रियो को दासी समझने के विचार कोई नए नहीं, लम्बे समय से ऐसा दृष्टिकोण चला आ रहा है। बौद्ध साहित्य मे भी स्त्रियों की हालत बहुत गिरी हुई रखी गई थी। बड़ी मुश्किल से बाद में सघ के अन्दर स्त्रियो के प्रवेश की आज्ञा मिलने पर बुद्ध ने कहा था कि यह उचित नहीं रहेगा। इस प्रवेश से सघ का पतन शीघ्र हो जाएगा। पारसियों के धर्म ग्रन्थों के अनुसार पत्नी को प्रात.काल उठकर पति से नौ बार यह पूछना चाहिए कि मैं क्या करूं ? मुसलमानो को चार स्त्रियां तक एक साथ रखने की स्वतन्त्रता है। पुरुषो की प्रतियोगिता में उनके अधिकार आधे माने गए हैं। इसी प्रकार यहूदी और ईसाई धर्म मे भी स्त्रियों को पुरुषो के मुकाबले में बहुत कम अधिकार दिए गए। ईसाईमत में तो स्त्रियो में आत्मा भी नही मानी गई। उनके धर्मानुसार पुरुषों को स्त्रियो पर शासन करने का अधिकार है और स्त्रियो का कर्त्तव्य उनसे शासित होना है। प्रथम महायुद्ध से पहिले तक उन्हें पादरी बनने की आज्ञा न थी।

स्त्रियों को बहुत समय तक परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड कर रखा गया। परदा उसी का ध्वंसावशेष है। परदा रखना पूर्ण रूप से स्त्रियों पर अविश्वास रखना है। अपनी स्थायी वस्तु समझकर उसे दूसरों की दृष्टि से बचाकर रखना परदे का कार्य था। उन्हें इस प्रकार रखा जाना घोर अन्याय है। अभी तक हमारा समाज इन भावों से मुक्त नहीं हो पाया। फल स्वरूप यह प्रथा अब तक विद्यमान है।

कुछ समय से स्त्रियों में जागृति की भावना फैली जा रही है। वे स्वतन्त्र रूप से अपने अधिकारों की मांग कर पुरुषों के दासत्व को तोड़ने के लिए प्रयत्नशील है। योरोप में स्वतन्त्रता

प्राप्ति के लिए काफी आन्दोलन किए गए थे। पहले उन्हें चुनाव आदि में वोट देने का अधिकार नही था पर धीरे-धीरे लडते हुए उन्हें बहुत से अधिकार प्राप्त हो गए। अत पाश्चात्य स्त्रियो की हालत इस लिहाज से अच्छी है, उसके मुकाबले में भारतीय महिलाओं की स्थिति उतनी ठीक नही है। यद्यपि उन्हें सभी राजनैतिक अधिकार प्राप्त हैं फिर भी पहिले की अज्ञानता अभी गई नहीं है। टर्की और अफगानिस्तान की महिलाओं ने भी बुरखों का विरोध किया है और वे अपने अधिकारों की प्राप्ति की सोचने लगी हैं।

परदे का अर्थ केवल मुख पर कपड़े का परदा रखना मात्र नहीं, पर मानवोचित अधिकारों से है। अगर मुख का परदा हटा भी दिया गया पर उन्हे गुलामी से मुक्ति न मिली तो उसकी उपयोगिता ही क्या रही? परदे का अर्थ है स्त्रियो के स्वतन्त्र रूप का कोई अस्तित्व ही न रहना। उसका परदा हटाना इसलिए महत्वपूर्ण है कि वह दासता को दूर कर स्त्रियों को स्वतन्त्ररूप से पुरुपो के मुकाबले में कार्य करने की क्षमता दे। समाज में जैसे अधिकार पुरुषों को हैं स्त्रियो को भी वैसे ही दिए जाय। उनकी स्थिति बिल्कुल नीच न रखी जाए! सक्षेप में परदा हटाना सदियों से चली आती हुई दासता के बधन को हटाना है।

परदे के कारण हमारा समाज अपग हो गया है। पुरुष और स्त्री समाज के दो अभिन्न अग हैं। सामाजिक उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि दोनों का सम्बन्ध परस्पर सहानुभूति और सहयोग पूर्ण रहे। परदे के कारण स्त्री और पुरुषों को भिन्न-भिन्न-सा कर दिया है। दोनों के बीच कोई सम्बन्ध नही। मिलकर कोई कार्य नहीं कर सकते। किसी समस्या पर दोनों गम्भीरता से विचार भी नहीं कर सकते। अभी एक स्त्री अपने निकट सम्बन्धियो के अतिरिक्त किसी से बात भी नहीं कर सकती, मिलकर

कोई कार्य करना तो अलग रहा । कोई पुरुष अपनी रिश्तेदार स्त्रियों के अलावा अन्य स्त्रियो से बात नही कर सकता । अगर किसी स्त्री ने किसी अन्य पुरुष से कुछ देर बातें करली तो उसका सम्बन्ध अनुचित समझा जायगा । उस पर व्यभिचारिणी होने का आरोप लगाया जायगा । कोई पुरुष अपने पवित्रतम प्रेम का भी परिचय किसी स्त्री को नही दे सकता । इस प्रकार अभी तक स्त्रियों और पुरुषों का कार्यक्षेत्र सर्वथा अलग रहा है । उनका समाज भी भिन्न रहा । दोनो की सम्मति और सहयोग से कोई कार्य नही किया जाता । पति पत्नी, पिता-पुत्री और भाई–बहन के अतिरिक्त स्त्री-पुरुषो का कोई संबंध ही नहीं रहा । और यह भी रिश्तेदारी तक ही सीमित रहा । इनके अलावा सब रिश्ते नाजायज समझे जाते हैं हमारे समाज मे इन विचारो से बहुत संकुचितता उत्पन्न हो गई है । जहा स्त्री पुरुषो मे जरा भी मिलना–जुलना सभा–सोसाइटियों में हुआ कि वहीं पर लोग कलियुग का स्मरण करने लगते हैं । पति-पत्नी का साथ मे कहीं बाहर भ्रमण करने जाना भी बहुत बुरा समझा जाता है । इसे निर्लज्जता और उच्छृ खलता के सिवाय और किसी का रूप नही दिया जाता ।

परदा प्रथा की पुष्टि मे सबसे महत्वपूर्ण तर्क यह दिया जाता है कि इसके न होने से स्त्रियों में सदाचार न रहेगा । लेकिन यह कथन घोर असत्य है । स्त्रियों के प्रति घोर अन्याय इसमें स्पष्ट है । भारतवर्ष मे जिन प्रदेशों में पर्दा नहीं है वहां पर्दा वाले प्रदेशो से कम सदाचार नही देखा जाता । योरोपीय देशो मे बिलकुल पर्दा नही है, स्त्रियां पुरुषों की तरह स्वतन्त्र घूमती-फिरती हैं । वे सभी पुरुषो से अच्छी तरह मिलती-जुलती हैं पर यह कहना अनुचित न होगा कि उनका भी चरित्र भारतीयो की अपेक्षा हीन नही । यहां छिपे–छिपे जितने दुराचार होते हैं वहां उतने नहीं होते । अफ्रिका के स्त्री-पुरुष नग्न रहते हैं पर आश्चर्य है कि वहां

के पुरुष पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करते हैं। अगर यह कहा जाय कि बिना परदा के पुरुष वर्ग संयम में नहीं रह सकेगा तब पुरुषों को ही परदे में रखना उचित होगा। उन्हें दुराचार से बचाने का यही एकमात्र उपाय है। उनकी कमजोरी और शिथिलाचार से स्त्री वर्ग हानि क्यों उठाए ? उन्हे परदे में रखना सरासर अन्याय है। क्या आवश्कता है कि उन्हें भेड़-बकरियो की तरह ही नहीं बल्कि उससे भी बुरी अवस्था में बाडे मे बंद कर रखा जाय ?

इस संबंध में इतना ही कहना उचित है कि पुरुषों को स्वेच्छापूर्वक स्त्रियों पर से परदा उठाने में मदद करनी चाहिए। इससे उनका अंकुश स्त्रियो पर रहेगा पर अगर स्वेच्छा से ऐसा न किया गया तो जबर्दस्ती स्त्रियां परदा उतार देंगी और स्वतन्त्र होने पर पुरुषों का अधिकार उन पर नहीं रहेगा। महिला समाज जागृत हो रहा है, वह अधिक समय तक पशु बना रहेगा या नहीं, यह एक सन्देहास्पद वस्तु है। जब तक वे पुरुषों के अधिकार में हैं वे जैसा चाहें रख सकते हैं। स्वतन्त्र होते ही वे अपने आपको मनुष्य अनुभव करने लगेंगी। उस समय पुरुषों की सत्ता उन पर नहीं चलेगी। पहले से ही वे सहानुभूतिपूर्वक उन्हें उचित सुविधाएं देंगे तो ठीक रहेगा।

जो लोग यह कहते हैं कि पर्दा प्राचीनकाल से बड़े-बूढ़ों के जमाने से चला आया है, उन्हे सोचना चाहिए कि अगर बड़े-बूढ़ों के कायदो पर अच्छी तरह विचार करते और उसके अनुसार आचरण करते तो तुम्हारी यह हालत नहीं होती। जितनी विचारशीलता से उन्होंने यह प्रथा चलाई थी उतनी आज होती तो इन परिस्थितियों में पर्दा उठाने में क्षण भर का भी विलम्ब न होता। भिन्न-भिन्न परिस्थितियो के अनुसार रीति-रिवाजों में परिवर्तन करते रहने में ही बुद्धिमत्ता है। कोरी लकीर पीटने से ही कुछ

हाथ नहीं आता।

पुराने समय में लज्जा स्त्रियों का आभूषण समझा जाता था। विनय उसका श्रेष्ठ गुण था। परदे की प्रथा तो पहिले बिलकुल न थी। मुसलमानो के समय के पश्चात् पर्दा प्रारम्भ हुआ। उस समय की परिस्थितियो और आज की परिस्थितियों में भिन्नता है। यह आवश्यक नहीं कि उस समय जो वस्तु उपयुक्त हो वही आज भी। लोग इस दृष्टि से नहीं सोच पाते? उनके दिमाग में इतना आता है कि पर्दा हमारे बडे बूढों ने चलाया था। जो काम उन्होंने किया, जो चीज उन्होंने अपने दिमाग से सोची उस समय वही ठीक थी। उनके ऊँचे विचारो और ऊँचे आदर्शों की ओर तो किसी की दृष्टि नही जाती और तुच्छ से तुच्छ बातों पर गुड के मकोड़ो सरीखे चिपटते हैं।

पर्दा उठाने का अर्थ निर्लज्जता नही और न अविनय है। कौन इन्कार करता है कि वधू को सास, श्वसुर की विनय रखना चाहिए, उनका माता, पिता सरीखा आदर करना चाहिए, पर क्या बिना मुँह ढंके उनका आदर नही किया जा सकता। पर्दा उठा देने पर स्त्रियों को वर्तमान के उपयोग में लाने वाले निर्लज्जतापूर्ण बारीक वस्त्रों का, जिसमें आज उनके सिर का एक-एक बाल दिखाई देता है, त्याग करना पडेगा। पर्दा उठा देने से पर्दे की बहुत सी पोलें अपने आप ही समाप्त हो जाएगी। क्या इतने बारीक वस्त्र प्राचीनकाल की स्त्रियाँ पहनती थीं?

अगर पर्दा एकदम बिलकुल नही छूट सकता तो उसका कम से कम रूपांतर तो अवश्य ही करने योग्य है। दिल्ली तथा युक्तप्रांत में भी पर्दा है, मगर मारवाड़ जैसा पर्दा नही है। स्त्रियों को बन्द कर रखने से ही लज्जा की रक्षा नहीं हो सकती, यह बात भली भांति समझने योग्य है।

पर्दे से होने वाली हानियाँ किसी से छिपी नही। समय की

गति रोकी नहीं जा सकती। पर्दे का हटना अकेली स्त्रियों की गुलामी दूर करने के लिए ही आवश्यक नहीं, समाज और राष्ट्र की उन्नति के लिए भी अत्यन्त आवश्यक हो गया है।

१—आभूषण

आभूषण स्त्रियों की अत्यन्त प्रिय वस्तु है। आज से ही नहीं पर प्राचीनकाल से ही आभूषण स्त्रियों का शृङ्गार है। हां; उनकी बनावटों अथवा रूपों मे भले ही परिवर्तन होता रहा है।

यही कारण है कि अनेक स्त्रियां तो जेवरों के पीछे इस तरह पागल रहती हैं कि भले ही गृहस्थी में उन्हें और सब सुख हों पर जेवर अगर नहीं हैं तो कुछ नहीं है। इस प्रकार की स्त्रियां आए दिन सास-ससुर अथवा पति से गहने के लिये झगडती रहती हैं।

कुछ जातियों में तो इतना अधिक जेवर पहिनने का रिवाज है कि वह गहना उसके लिये बेड़ी के समान हो जाता है। हाथ-पांव में गड्ढे पड जाते हैं, फिर भी उनका मोह उनसे नहीं छूटता। वे दुनिया भर में उनका प्रदर्शन कर उस भारी वजन को ढोती फिरती हैं। प्रदर्शन इसलिए कि अधिक गहना पहन कर दूसरों को दिखाना एक प्रकार की इज्जत समझती हैं। इज्जत का जेवर से अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध समझा जाता है। इसलिये अधिक गहना पहनने वाली औरत को प्रायः डाह की नजरों से देखा जाता है।

आभूषण इसलिये पहिने जाते हैं कि बहुत दिनों से पहिनने

का रिवाज चला आया है। किसी से कम या बिलकुल न पहि-नने पर भी औरतें आपस मे एक दूसरे की नुक्ताचीनी किया करती हैं।

स्त्रियां आपस में गहने से ही एक दूसरी का मूल्य आंका करती हैं। जो ज्यादा गहना पहने होती है सब उससे बात करने के लिए उत्कण्ठित रहती हैं और जो गरीबनी नही पहन सकती है उससे बात करने की भी आवश्यकता नहीं समझती।

अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है कि इन आभूषणो के पीछे औरतें दुनिया भर के कुकृत्य करती हैं। रात-दिन घरों में कलह मचाए रहती हैं। पति के दिन-रात पूरी मेहनत करने के बाद भी, जब घर खर्च भी वह मुश्किल से चला पाता है, एक न एक गहने की फरमाइश किये रहती हैं।

पेट काट—काट कर भी गहने बनवाने मे स्त्रिया सुख का अनुभव करती हैं। वे यह नहीं सोचती कि अधिक गहने पहनने की अपेक्षा अगर उसी पैसे से शरीर को बनाने वाली पौष्टिक चीजों को खाया-पिया जाय तो जीवन-डोरी कुछ और बढ़ सकती है और नही भी बढ़े तो भी जब तक जीवन है शरीर पूर्ण स्वस्थ रहकर उसका साथ दे सकता है।

'सर्वे गुणाः काचनमाश्रयन्ति' सब गुण सोने के गहनों में ही हैं, ऐसा स्त्रियां समझती हैं। मगर यह नही समझती कि सत्य बोलना, प्रेम से बोलना, तथा सब की सेवा करना, यही नारी का सच्चा आभूषण है।

पतिव्रता फाटा लता, नही गला मे पोत।
भरी सभा मे ऐसी दीपे हीरन की सी जोत॥

भावार्थ—पतिव्रता फटे चिथडे पहने हो और गले में पोत भी न हो तो भी हीरे की ज्योति सदृश दीप्ति को प्राप्त होती है।

गहना-कपड़ा नारी का सच्चा आभूषण नहीं है। नारी का

श्रेष्ठ आभूषण शील है। जब सीता वन में रही तब उसने क्या गहना पहना था ? द्रौपदी ने विराट नगर मे राजा के यहाँ सैरध्री नामक दासी बनकर रानियों की रानी होते हुए भी सिर गूथने का छोटी से छोटी दासी का काम किया था। आज ऐसी सती-साध्वी देवियो के सामने सारा ससार सिर झुकाता है।

तात्पर्य यह है कि बाहरी सुन्दरता के पीछे मत पडो। बढिया गहने और कपड़े नारी का आभूषण नही है। इनसे शरीर का ऊपरी सौन्दर्य भले ही कुछ बढ़ जाय, मगर आत्मा की सुन्दरता का ह्रास होता है।

नारी की सुन्दरता बढ़ाने के लिए शील का आभूषण काफी है उन्हें और आभूषणों का लालच नही होना चाहिए। बाहरी सुन्दरता मन को बिगाडने वाली होती है और मन की पवित्रता अतःकरण को शुद्ध करने वाली होती है। बाह्य सुन्दरता अनेक कष्टों का निमन्त्रण करती है, अनावश्यक व्ययजनक होती है। आंतरिक सुन्दरता अनेक कष्टो का निवारण करती है व पैसा भी खर्च नहीं होता। प्रत्येक स्त्री को चाहिए कि आत्मा की शोभा बढ़ाने का सतत प्रयत्न करे। मन की पवित्रता को कायम रखते हुए जीवन को उज्जवलतारूपी सुन्दर आभूषण से अलकृत करे। इस मासपिंड (शरीर) की सजावट में क्या पड़ा है ? नारी की सच्ची महत्ता और पूजा शील से होगी। शील आभूषणों का भी आभूषण है। गहनों में सुन्दरता देखने वाली नारी आत्मा के सद्-गुणाभूषण को कभी नही देख पाती। त्याग, सयम और सादगी मे जो सुन्दरता है वह बाहरी आभूषणों में कहाँ ?

रामचन्द्रजी जब वनवास गए, तब सीता भी उन्हीं के साथ वन को चली गई। भरत उस समय अपने ननिहाल में थे। वहाँ से आने पर जब उन्हे मालूम हुआ कि राम, लक्ष्मण और सीता वन को चले गये तब उन्होंने अपनी माता कैकयी को बहुत कठोर

शब्दो में फटकारा और रामचन्द्रजी वगैरह को वापिस लाने के लिए प्रजाजनो के साथ वन को रवाना हुए। वहाँ पहुचने पर उन्होंने रामचन्द्रजी से लौट चलने का अत्यन्त ही आग्रह किया पर रामचन्द्रजी राजी नहीं हुए। निरुपाय हो उन्होंने भाभी सीता को ही अयोध्या लौट चलने के लिए आग्रह किया और कहा—देवि! भैया अगर नही चलते हैं तो कृपया आप ही अयोध्या लौट चलिये। मुझे आपके इतने सुकुमार शरीर को वन में इतने कष्ट सहन करते हुए देखकर अत्यन्त दुख होता है। और सबसे बडा दुख होता है आपका वेष देखकर। नाना प्रकार के रेशमी वस्त्रों से युक्त और अनेको रत्नजडित आभूषणो से अलकृत आपके शरीर को इन तापसी वस्त्रो में छिपा हुआ देखकर मुझे अवर्णनीय दुख होता है।

सीता अपने प्रिय देवर को सान्त्वना देती हुई बोली— आप मेरा वेष देखकर चिन्ता करते हैं, मगर यह भी आपकी भूल है। मेरे वल्कल वस्त्रों को मत देखो, मेरे ललाट पर शोभित होने वाली सुहाग बिन्दी की ओर देखो! यह सुहाग-बिन्दी मानो कहती है— मेरे रहते अगर सभी रत्न-आभूषण चले जाय तो हर्ज की क्या बात है? और मेरे न रहने पर रत्न-आभूषण बने भी रहे तो किस काम के? मेरे कपाल पर सुहाग का चिन्ह मौजूद है, फिर आप किस बात की चिन्ता करते हैं? सुहाग चिन्ह होते हुए भी अगर आप आभूषणों के लिए मेरी चिन्ता करते हैं तो आप अपने भाई की कद्र कम करते हैं। यह सुहाग बिन्दी आपके भाई के होने से ही है। क्या आप अपने भाई की अपेक्षा रत्नो को भी बड़ा समझते हैं। आपका ऐसा समझना उचित नहीं हैं।

भरत! आप प्रकृति की ओर देखिये! जब रात गहरी होती है तो ओस के बूद पृथ्वी पर गिर कर मोती के गहने बन जाते हैं। लेकिन उषा के प्रकट होते ही प्रकृति उन गहनो को पृथ्वी पर गिरा देती है। जैसे प्रकृति यह सोचती है कि इन गहनों

का शृङ्गार तभी तक ठीक था, जब तक उषा प्रकट नहीं हुई थी। अब उषा की मौजूदगी मे इनकी क्या आवश्यकता है ? यही बात मेरे लिये भी है। जब तक वन-वासरूपी उषा प्रकट नहीं हुई थी, तब तक भले ही आभूषणो की आवश्यकता रही हो, अब तो सौभाग्य को सूचित करने वाली इस सुहाग बिन्दी में ही समस्त आभूषणों का समावेश हो जाता है। यही मेरे लिये सब शृङ्गारों का शृङ्गार है। इससे अधिक की मुझे आवश्यकता नही है। ऐसी स्थिति में आप क्यों व्याकुल होते हैं ? आपको मेरा सुहाग देखकर ही प्रसन्न होना चाहिए।

बहिनो से यही कहना है कि सीताजी ने जिन गहनों को हसकर त्याग दिया था; उन गहनों के लिए तुम आपस में कभी मत लडो। जब आत्मा सद्गुणों से अलकृत होता है तो शरीर को विभूषित करने की आवश्यकता ही नही रहती। सीता और राम के प्रति आपके हृदय में इतनी श्रद्धा क्यो है ? उन्होने त्याग न किया होता तो जो गौरव उन्हें मिला है वह कभी मिल सकता था ? त्याग के विना कोई किसी को नही पूछता।

कदाचित् कहा जाय कि घर में नगे हाथ अच्छे नही लगते तो यही कहना पडेगा कि ऐसा कहने वाले की दृष्टि दूषित है। गहनों मे सुन्दरता देखने वाला आत्मा के सद्गुणों के सौन्दर्य को देखने मे अन्धा हो जाता है। त्याग, सयम और सादगी मे जो सुन्दरता है, पवित्रता है, सात्विकता है, वह भोगों में कहाँ ? मैं बहिनों को सम्मति देता हू कि घर वालों की ऐसी बातो की पर-वाह न करके गहनों के मोह को त्याग दें और सादगी के साथ रहें।

बाहरी चमकदमक को सुन्दर रूप मत समझो। जिस रूप को देखकर पाप काँपता है और धर्म प्रसन्न होता है, वही सच्चा सुरूप है—सौन्दर्य है।

असली सौन्दर्य आत्मा की वस्तु है। आत्मिक सौंदर्य की सुनहरी किरणें जो बाहर प्रस्फुटित होती हैं, उन्हीं से शरीर की सुन्दरता बढ़ती है।

मेरा बहनों से कहना है कि तुम लोग चमडी को बड़ी मानती हो या आभूषणों को ? अनेक विशिष्ट गुणो वाली चमडी को भूलकर जो लोग आभूषणों के प्रलोभन में पड जाते हैं वे ठूँस-ठूँस कर आभूषण पहनने से चमडी को पहुचने वाली हानि की ओर ध्यान नहीं देते। आभूषणों का वजन सहन न होने पर भी इतने आभूषण शरीर पर लादे जाते हैं, कि बेचारी चमडी की दुर्दशा हो जाती है। स्त्रियाँ झूठे बड़प्पन के लोभ में फंसकर अनावश्यक आभूषण पहनती हैं। परिणाम यह आता है कि चमडी के विशिष्ट गुण नष्ट हो जाते हैं और वे दिनोंदिन निर्बलता की शिकार बनती जाती हैं।

कल्पना कीजिये, किसी गृहस्थी में दो बाइयाँ है। एक हीरे की चूडियाँ पहन कर, सुगंधित इत्र-तैल लगाकर, सुन्दर और सुकोमल वस्त्र पहन कर झूने में झूल रही है। भोजन के समय भोजन करती है और बिलास मे डूबी रहती है। उसी गृहस्थी में दूसरी बाई कर्मशीला है। वह शृंगार की परवाह नही करती। नाज नखरों में दिल नहीं लगाती। घर को साफ-सुथरा रखती है। बच्चों की अशुचि मिटाकर उन्हें नहलाती है, स्वच्छ वस्त्र पहनाती है उनके भोजन की उत्तम व्यवस्था करती है।

आप इन दोनों में किसे अच्छा समझती हैं ? किसे जीवन-दात्री मानती हैं ?

इस प्रकार जीवन मे बाह्य शारीरिक सौन्दर्य और विलास को प्रधानता देने वाले का दुनियाँ में कोई मूल्य नहीं। मूल्य तो आध्यात्मिक पवित्रता और स्वच्छता का है। जो जितना ही शरीर से उदासीन और हृदय से पवित्र होगा उसी का जीवन सफल

और मूल्यवान है। पवित्र जीवन ही उसका वास्तविक सौन्दर्य है।

सीता के सम्बन्ध में बुद्धिमती स्त्रियाँ कहती हैं—सीता ने क्षमा का नौलडा हार पहन रखा है। ऐसा ही हार हमें पहनना चाहिए। यद्यपि कैकयी की वर-याचना के फलस्वरूप उनके पति को और उनको वन जाना पड रहा है, फिर भी इनके चेहरे पर रोष की लेशमात्र भी कोई चिन्ह नहीं दिखाई देता। इसकी मुद्रा कितनी शान्त और गभीर है! अगर इनमें धैर्य नहीं होता तो वह तुम्हारी तरह रोने लगती। अगर वह अपनी आँख टेढ़ी करके कह देती कि मेरे पति का राज्य लेने वाला कौन है! तो किसका साहस था कि वह राज्य ले सके। सारी अयोध्या उनके पीछे थी। लक्ष्मण उनके परम सहायक थे और वे अकेले ही सब के लिए काफी थे। सीता चाहती तो मिथिला से फौज मगवा सकती थी। लेकिन नहीं, सीता ने क्षमा का हार पहन रखा है। ऐसा हार हमें भी पहनना चाहिए।

सीता के हाथ में आज केवल मगल-चूडी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। मगर उन्होंने अपने हाथों मे इस लोक और परलोक को सुधारने का चूडा पहन रखा है। ऐसा ही चूडा हमे भी पहनना चाहिए। उभय लोक के सुधार का मगलमय चूडा न पहना तो न मालूम अगले जन्म में कैसी बुरी गति मिलेगी।

आजकल मारवाड में आभूषण पहनने की प्रथा बहुत बढ़ी है। बोर तो अनार हो गया है। बोर तो बोर (बेर) के बराबर ही हो सकता है, पर बढते-बढते वह अनार से भी बाजी मार रहा है। जेवरों की वृद्धि के साथ ही विकार में भी प्रायः वृद्धि होने लगती है।

बुद्धिमती स्त्रियाँ कहती हैं—सीताजी ने गुरुजनो की आज्ञा-पालन रूपी बोर अपने मस्तक पर धारण किया है। ऐसा ही बोर स्त्रियों को धारण करना चाहिए। उन्होंने कैकयी जैसी सास का

भी मान रक्खा है। अगर हम जरा-सी बात पर भी बड़ों का अपमान करें तो हमारा यह बोर पहनना वृथा हो जायगा।

अच्छी सीख ने करणफूल,
कानरा करां।
भूठा बारला बनाव,
देख क्यो वृथा लड़ा।
हिया माय अमोल,
खान खोल पैर ला।
सब बाहर का बनाव,
वा पै वारणां करां॥

बहिनो! सीता ने मणि जड़े कर्णफूल त्याग कर उत्तम शिक्षा के जो कर्णफूल पहने हैं, उन्हे ही हमे पहनना चाहिए। सीता विदेहपुत्री है और विदेह आत्मज्ञानी है। सीता ने उन्ही की शिक्षा ग्रहण की है।

मैं जब गृहस्थावस्था मे था, तब की बात है। मेरे गांव में एक बूढे ने विवाह करना चाहा। एक विधवा बाई की एक लड़की थी। बूढे ने वृद्धा के सामने विवाह का प्रस्ताव उपस्थित किया। मगर उसने और उसकी लडकी दोनों ने उसे अस्वीकार कर दिया। कुछ दिनो बाद उस बूढ़े की रिश्तेदार कोई स्त्री उस बाई के पास आई और उसे बहुत-सा जेवर दिखला कर बोली—तुम्हारी लड़की का विवाह उनके साथ हो जायगा तो इतना जेवर पहिनने को मिलेगा। लालच में आकर विधवा ने अपनी लड़की का विवाह उस बूढे के साथ कर दिया।

मेवाड़ की भी एक ऐसी ही घटना है। एक धनी वृद्ध के साथ एक कन्या का विवाह होना निश्चित हुआ। समाज सुधारकों ने लड़की की माता को ऐसा न करने के लिये समझाया। लड़की की माता ने कहा कि पति मर जायगा तो क्या हुआ, मेरी लड़की

गहने तो खूब पहिनेगी।
आप ही बताइये ? उक्त दोनो विवाह किसके साथ हुआ ?
'धन के साथ'
'पति के साथ तो नही ?'
नही।
धन ही इन कन्याओं का पति बना ?

बहिनो ! तुम्हें जितनी चिन्ता गहनों की है उतनी इन गहनों का आनन्द उठाने वाली आत्मा की है ? तुम्हें गहनों का जितना ध्यान रहता है, कम से कम उतना ध्यान अपनी आत्मा का रहता है ? आभूषणों को ठेस न लगने के लिए जितनी सावधान रहती हो उतनी आत्मधर्म को ठेस न लगने देने के लिये रहती हो ?

अच्छा यह बताओ, जवाहरात पैरिस मे अधिक हैं या हिन्दुस्तान में ? अमेरिका और इंग्लेण्ड में माणिक-मोती ज्यादा हैं या भारत में ?

पेरिस में जवाहरात ज्यादा हैं और भारत से ज्यादा माणिक, मोती अमेरिका, इंग्लेण्ड में हैं। मगर पैरिस के तथा अमेरिका और इंग्लेण्ड के अनेक स्त्री-पुरुष अपने बालको को भारत में लाते हैं। उन्हें तो हमने कभी आपकी भांति जवाहरात से लदा हुआ नही देखा। इसका क्या कारण है ?

कारण यह है कि वे पसन्द नहीं करते बच्चों को आभूषण पहनाना।

देखो कि वे तो पसन्द नही करते पर हम भारतवासी गहनों के लिये प्राण दिये रहते हैं ! कैसी विचित्र बात है ?

बच्चे और आभूषण—

हमारे यहां आभूषण इतने अधिक पसन्द किये जाते हैं कि

जिनके यहाँ सच्चे माणिक-मोती नहीं हैं वे बहिनें अपने बच्चों को सिंगारने के लिए खोटे जेवर पहनाती हैं पर पहनाये बिना नहीं मानतीं। कहीं-कहीं तो लोक दिखावे के लिए आभूषणों की थोड़े दिनों के लिए भीख माँगी जाती है और उन आभूषणों से हीनता का अनुभव करने के बदले महत्त्व का अनुभव किया जाता है! क्या यह घोर अज्ञान का परिणाम नहीं है? आभूषण न पहनने वाले यूरोपियन क्या हीन दृष्टि से देखे जाते हैं? फिर आपको ही क्यों अपनी सारी महत्ता आभूषणों में दिखाई देती है?

आभूषणों से लादकर बच्चों को खिलौना बनाना आप पसंद करते हैं, पर उनके भोजन की ओर अक्षम्य उपेक्षा रखते हैं। यह कैसी दोहरी भूल है? जरा अपने बच्चों का खाना किसी अंग्रेज बच्चे के सामने रखिये। वह तो क्या उसका बाप भी भोजन नहीं खा सकेगा, क्योंकि हमारा भोजन इतना चटपटा होता है कि बेचारे का मुँह जल जाय।

बच्चों को आभूषण पहनाने का आपका उद्देश्य क्या है? इसके दो ही उद्देश्य हो सकते हैं। एक तो बालक को सुन्दर दिखाना अथवा अपनी श्रीमन्ताई प्रकट करना। मगर यह दोनों उद्देश्य भ्रमपूर्ण हैं। बालक स्वभाव से ही सुन्दर होता है। वह निसर्ग का सुन्दरतम उपहार है। उसके नैसर्गिक सौन्दर्य को आभूषण दबा देते हैं, विकृत कर देते हैं। जिन्हें सच्चे सौन्दर्य की परख है वे ऐसे उपायों का अवलंबन नहीं करते। विवेकवान् व्यक्ति जड़ पदार्थ लादकर चेतन की शोभा नहीं बढ़ाते। जो लोग आभूषणों में सौन्दर्य निहारते हैं, कहना चाहिए कि उन्हें सौन्दर्य का ज्ञान ही नहीं है। वे सजीव बालक की अपेक्षा निर्जीव आभूषण को अधिक चाहते हैं। उनकी रुचि जड़ता की ओर आकृष्ट हो रही है।

अगर अपनी श्रीमन्ताई प्रकट करने के लिए बालक को

आभूषण पहना कर खिलौना बनाना चाहते हो तो स्वार्थ की हद हो गई ! अपनी श्रीमन्ताई प्रकट करने के लिए निर्दोष बालक का जीवन क्यों विपत्ति मे डालते हो ? जिसे अपनी धनाढ्यता का अजीर्ण है, जो अपने धन को नहीं पचा सकता वह किसी अन्य उपाय से बाहर निकाल सकता है। उसके लिए अपनी प्रिय सतान के प्राणो को सकट में डालना क्या उचित है ?

बच्चो को आभूषण पहनाने से मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अनेक हानिया होती हैं। परन्तु एक प्रत्यक्ष हानि तो आप सभी जानते हैं। गहनो की बदौलत कई बालकों की हत्या होती है। हत्या की घटनाएँ आये दिन घटती रहती हैं। फिर भी आप अपना ढर्रा नहीं छोडते यह कितने आश्चर्य की बात है ? आपका विवेक कहाँ है ? वह कब जागृत होगा ?

१०—विधवा बहिनों से

आपके घर मे विधवा बहिनें, शीलदेवियाँ है। इनका आदर करो। इन्हें पूज्य मानो। इन्हे खोटे दुःखदायी शब्द मत कहो। यह शीलदेवियाँ पवित्र हैं, पावन हैं। यह मगलरूप हैं। इनके शकुन अच्छे हैं। शील की मूर्ति क्या कभी अमगलमय हो सकती है ?

समाज की मूर्खता ने कुशीलवती को मंगलमयी और शीलवती को अमगला मान लिया है। यह कैसी भ्रष्ट बुद्धि है ?

याद रक्खो, अगर समय रहते न चेते और विधवाओं को

जिनके यहाँ सच्चे माणिक-मोती नहीं हैं वे बहिनें अपने बच्चों को सिंगारने के लिए खोटे जेवर पहनाती हैं पर पहनाये बिना नहीं मानतीं। कहीं—कहीं तो लोक दिखावे के लिए आभूषणों को थोड़े दिनों के लिए भीख माँगी जाती है और उन आभूषणों से हीनता का अनुभव करने के बदले महत्व का अनुभव किया जाता है। क्या यह घोर अज्ञान का परिणाम नहीं है? आभूषण न पहनने वाले यूरोपियन क्या हीन दृष्टि से देखे जाते हैं? फिर आपको ही क्यों अपनी सारी महत्ता आभूषणों में दिखाई देती है?

आभूषणों से लादकर बच्चों को खिलौना बनाना आप पसंद करते हैं, पर उनके भोजन की ओर अक्षम्य उपेक्षा रखते हैं। यह कैसी दोहरी भूल है? जरा अपने बच्चों का खाना किसी अंग्रेज बच्चे के सामने रखिये। वह तो क्या उसका बाप भी भोजन नहीं खा सकेगा, क्योंकि हमारा भोजन इतना चटपटा होता है कि बेचारे का मुँह जल जाय।

बच्चों को आभूषण पहनाने का आपका उद्देश्य क्या है? इसके दो ही उद्देश्य हो सकते हैं। एक तो बालक को सुन्दर दिखाना अथवा अपनी श्रीमन्ताई प्रकट करना। मगर यह दोनों उद्देश्य भ्रमपूर्ण हैं। बालक स्वभाव से ही सुन्दर होता है। वह निसर्ग का सुन्दरतम उपहार है। उसके नैसर्गिक सौन्दर्य को आभूषण दबा देते हैं, विकृत कर देते हैं। जिन्हें सच्चे सौन्दर्य की परख है वे ऐसे उपायों का अवलंबन नहीं करते। विवेकवान् व्यक्ति जड़ पदार्थ लादकर चेतन की शोभा नहीं बढ़ाते। जो लोग आभूषणों में सौन्दर्य निहारते हैं, कहना चाहिए कि उन्हें सौन्दर्य का ज्ञान ही नहीं है। वे सजीव बालक की अपेक्षा निर्जीव आभूषण को अधिक चाहते हैं। उनकी रुचि जड़ता की ओर आकृष्ट हो रही है।

अगर अपनी श्रीमन्ताई प्रकट करने के लिए बालक को

आभूषण पहना कर खिलौना बनाना चाहते हो तो स्वार्थ की हद हो गई ! अपनी श्रीमन्ताई प्रकट करने के लिए निर्दोष बालक का जीवन क्यों विपत्ति मे डालते हो ? जिसे अपनी धनाढ्यता का अजीर्ण है, जो अपने धन को नहीं पचा सकता वह किसी अन्य उपाय से बाहर निकाल सकता है । उसके लिए अपनी प्रिय संतान के प्राणों को संकट में डालना क्या उचित है ?

बच्चों को आभूषण पहनाने से मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अनेक हानिया होती हैं । परन्तु एक प्रत्यक्ष हानि तो आप सभी जानते हैं । गहनों की बदौलत कई बालको की हत्या होती है । हत्या की घटनाएँ आये दिन घटती रहती हैं । फिर भी आप अपना ढर्रा नही छोडते यह कितने आश्चर्य की बात है ? आपका विवेक कहाँ है ? वह कब जागृत होगा ?

१०—विधवा बहिनों से

आपके घर में विधवा बहिनें, शीलदेवियाँ है । इनका आदर करो । इन्हें पूज्य मानो । इन्हें खोटे दुखदायी शब्द मत कहो । यह शीलदेवियाँ पवित्र हैं, पावन हैं । यह मगलरूप है । इनके शकुन अच्छे हैं । शील की मूर्ति क्या कभी अमगलमय हो सकती है ?

समाज की मूर्खता ने कुशीलवती को मंगलमयी और शीलवती को अमगला मान लिया है । यह कैसी भ्रष्ट बुद्धि है ?

याद रक्खो, अगर समय रहते न चेते और विधवाओं को

मान-रक्षा न की, उनका निरन्तर अपमान करते रहे, उन्हें ठुक-
राते रहे तो शीघ्र ही अधर्म फूट पड़ेगा । आदर्श धूल में मिल
जायगा और आपको संसार के सामने नतमस्तक होना पड़ेगा ।

विधवा या सुहागिन बहिनों के हृदय में कुविचार उत्पन्न
होने का प्रधान कारण उनका निकम्मा रहना है । जो बहिन काम
काज में फँसी रहती हैं, उन्हे कुविचारों का शिकार होने का अव-
काश नही मिलता ।

विधवा बहिनों के लिए चर्खा अच्छा साधन माना गया है,
पर आप लोग तो उसके फिरने में वायुकाय की हिंसा का महापाप
मानते हैं । आपको यह विचार कहाँ है कि अगर विधवाएँ निकम्मी
रह कर इधर-उधर भटकती फिरेंगी और पापाचार का पोषण
करेंगी तो कितना पाप होगा ।

बहिनो ! शील आपका महान् धर्म है । जिन्होंने शील का
पालन किया है, वे प्रात.स्मरणीय बन गई हैं । आप धर्म का पालन
करेंगी तो साक्षात् मगलमूर्ति बन जायेंगी ।

बहिनो ! स्मरण रक्खो—तुम सती हो, सदाचारिणी हो
पवित्रता की प्रतिमा हो ! तुम्हारे विचार उदार और उन्नत होने
चाहिए । तुम्हारी दृष्टि पतन की ओर कभी नहीं जानी चाहिए ।
बहिनो ! हिम्मत करो, धैर्य धारण करो । सच्ची धर्मधारिणी
बहिन में कायरता नहीं हो सकती । धर्म जिसका अमोघ कवच
है, उनमें कायरता कैसी ?

विधवा बहिनों से मेरा यही कहना है कि अब परमेश्वर से
नाता जोड़ो । धर्म को अपना साथी बनाओ । संयम से जीवन
व्यतीत करो । ससार के राग-रंगों को और आभूषणों को अपने
धर्मपालन में विघ्नकारी समझ कर उनका त्याग करो । इसी में
आपकी प्रतिष्ठा है । आप त्यागशील देवियाँ हैं । आपको गृहस्थी
के ऐसे प्रपंचों से दूर रहना चाहिए, जिनसे आपके धर्मपालन में

बाधा पहुंचती है।

आप अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए सोना पहनना कर्त्तव्य समझती हैं, पर यह बहुत बुरी चाल है यह चाल विधवा-धर्म के विरुद्ध है। मानव की प्रतिष्ठा, फिर वह चाहे स्त्री हो या पुरुष, उसके सद्गुणों पर अवलम्बित है। वही नारी की वास्तविक प्रतिष्ठा है। आभूषणों से अपनी प्रतिष्ठा का दिखावा करना अपने सद्गुणो का अपमान करना है। आप यह सोचती हैं कि बिना आभूषणो के विधवा अच्छी नहीं लगती, इसलिए आभूषण पहनती हैं। पर मैं कहता हूं—विधवा बहिन के मुखमण्डल पर जब ब्रह्मचर्य का तेज विराजमान होगा तो उसके सामने आभूषणों की आभा फीकी पड़ जाएगी। चेहरे की सौम्यता बलात् उसके प्रति आदर का भाव उत्पन्न किये बिना नहीं रहेगी। उसके तप, त्याग और सयम से उसके प्रति असीम श्रद्धा का भाव प्रकट हुए बिना नहीं रहेगा। इसमें क्या 'प्रतिष्ठा' नहीं है? सच पूछे तो यही उत्तम गुण उसकी सच्ची प्रतिष्ठा के कारण होगे। ऐसी अवस्था में कृत्रिम प्रतिष्ठा के लिए उसे वैधव्य-धर्म के विरुद्ध गहने आदि की आवश्यकता नहीं रहेगी। इसलिए मैं कहता हूं आत्मा के सद्गुणो का सत्यानाश करने वाली इन रीतियो का आप बिल्कुल त्याग कर दें और संयम से जीवन बिताए।

११—विविध विषय

१—सच्चा शृङ्गार

वहनो री कर लो ऐसो सिंगार,
जिससे होओ भव-जल पार ।
अङ्ग-शुचि कर फिर कर मज्जन, वस्त्र अनूपम धारो,
राग-द्वेष को तन मन जल से, विद्या वसन सवारो ।

वहिनो, यह जन्म हमे बाह्य शृङ्गार सजने के लिए नहीं मिला है । कल्याण होगा तो भाव-शृङ्गार से ही होगा । स्त्री का पहला शृङ्गार शरीर का मैल उतारना है । मैल उतारने के बाद स्नान करना और फिर वस्त्र धारण करना शृङ्गार माना जाता है । लेकिन इतने में ही शृङ्गार की इतिश्री नहीं हो जाती । ऐसा शृङ्गार तो वेश्या भी करती है ।

मैं नहीं कहता कि गृहस्थ लोग शरीर पर मैल रहने दें, पर जल से शरीर का मैल उतारते समय यह मत भूल जाओ कि शरीर की तरह हृदय का मैल धोने की भी बडी आवश्यकता है । केवल जल-स्नान से आत्मा की शुद्धि मानने वाले लोग भ्रम में हैं । मन का मैल उतारे बिना न तो शुद्धि हो सकती है और न मुक्ति मिल सकती है । इसलिए कहा जाता है कि पानी से मैल उतारने मात्र से कुछ न होगा, मन का मैल उतारो ।

केवल जल से मैल उतार लेने से कुछ नही होगा, मन के

राग-द्वेषरूपी मैल को साफ करो ।

स्त्रियों मे राग-द्वेष के कारण ही आपस में झगड़े होते हैं। जो स्त्रियां राग-द्वेष से भरी हैं वे अपने बेटे को तो बेटा मानती हैं पर देवरानी के बेटे को बेटा नहीं समझती । उनमें इतना क्षुद्रतापूर्ण पक्षपात होता है कि अपने बेटे को तो दूध के ऊपर की मलाई खिलाती हैं और देवरानी या जिठानी के लड़के को नीचे का सारहीन दूध देती हैं । जो स्त्री इस प्रकार राग-द्वेष के मल से भरी है वह सुख-चैन कैसे पा सकती है ? राग द्वेष को हटा कर मन, वचन की शुद्धता मे स्नान करना ही सच्ची शुद्धि है ।

जो स्त्री ऊपर के कपड़े तो पहने है मगर जिसने आत्मा की सम्यग्दृष्टि रूपी वस्त्रों को उतार फेंका है वह ऊपरी वस्त्रो के होते हुए भी नंगी सी ही है । जिसके ऊपर विद्यारूपी वस्त्र नहीं हैं, उसकी शोभा सुन्दर वस्त्रों से भी नहीं हो सकती । कृत्य-अकृत्य के ज्ञान को विद्या कहते हैं और स्त्री के लिए यह विद्या ही सिंगार है । अविद्या के साथ उत्तम वस्त्र तो और भी ज्यादा हानिकारक होते हैं ।

किसी स्त्री का पति परदेश में था । उसने अपनी पत्नी को पत्र भेजा । पत्नी पढी लिखी नही थी । वह किसी से पत्र पढ़वाने का विचार कर रही थी कि बढ़िया वस्त्रो से सुसज्जित एक महापुरुष उधर होकर निकले । स्त्री पत्र लेकर उनके पास पहुंची । वह पढ़ा लिखा नही था साथ ही, मूर्ख भी था । वह सोचने लगा—पत्र क्या खाक पढ़ूं ! मेरे लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर है । उसे अपनी दशा पर इतना दुःख हुआ कि उसकी आंखों से आंसू बहने लगे । स्त्री ने सोचा—पत्र पढ़ कर ही यह रो रहा है । जान पड़ता है कि मेरा सुहाग लुट गया ! यह सोच कर वह स्त्री भी रोने लगी । स्त्री का रोना सुन कर पड़ोस की

स्त्रियाँ भी आ पहुंची और वह सभी अपनी समवेदना प्रकट करने के लिए सुर से सुर मिलाने लगीं। कोहराम मच गया।

पड़ौस के कुछ पुरुष भी आये। उन्होंने पूछा क्या बात हुई? अभी तो पत्र आया था कि मजे में हैं और अचानक क्या हो गया? क्या कोई पत्र आया है? पत्र उन्हें दिखलाया गया। पत्र में लिखा था—हम मजे में हैं और इन दिनों चार पैसे कमाये हैं। जब पड़ौसियों ने यह समाचार बतलाया तो घर वालों का रोना बन्द हुआ।

अब विचारने की बात यह है कि विद्या के बिना उत्तम वस्त्र धारण करने से क्या परिणाम आता है? एक आदमी की अविद्या के प्रताप से ही स्त्री को रोना पड़ा और जलील होना पड़ा। अत.

केश संवारहु मेल परस्पर न्याय की मांग निकार।
धीरज रूपी महावर धारहु यश की टीकी लिलार॥

स्त्रियाँ स्नान करके केश संवारती हैं। केश सुहाग के लिए हैं। मस्तक के केश संवार कर रह जाना ही ठीक नहीं है किन्तु परस्पर में मेल रखना ही सच्चा केश सवारना है। देवरानी-या जेठानी से या ननन्द-भौजाई से लड़ाई झगड़ा करके केश सवारने का क्या महत्व है? केश संवार कर लड़ाई में चिपट जाने वाली स्त्रिया चुडैल कहलाती हैं। वास्तव में परस्पर मेल—मिलाप से रहना ही केश संवारना है। आपस मे मेलरूपी केश संवार कर न्याय की मांग निकालो। अर्थात् परस्पर मेल होने पर भी अन्याय की बात मत कहो। न्याय की बात कहो। न किसी का हक छीनो, न खाओ। हो सके तो अपना हक छोड़ दो। इतना नहीं बन सकता तो कम से कम दूसरे का हक हजम मत करो। जो स्त्रियां ऐसा करती हैं, समझना चाहिए कि उन्हीं की मांग निकाली हुई है। ऐसी देवियों को देवता भी नमस्कार करते हैं।

स्त्रियाँ पैरों में महावर लगाती हैं। किन्तु सच्चा महावर क्या है? हृदय मे धैर्यरूपी महावर लगाओ। इसी प्रकार ललाट पर यश का तिलक लगाओ। कम से कम ऐसा कोई काम मत करो जिससे लोक में अपयश होता हो। इस लोक और परलोक मे निन्दा करने वाला कार्य न करना ही स्त्रियों का सच्चा तिलक है।

स्त्रियाँ अपना सिंगार पूरा करने के लिए गाल पर कस्तूरी या काजल की एक बिन्दी लगाती हैं। वह तिल कहलाता है। किन्तु वास्तव मे अपना एक भी क्षण व्यर्थ न जाने देना ही सच्चा तिल लगाना है। गन्दे विचारो में समय जाने से ही अनेक खराबियाँ होती हैं।

परोपकार की मिस्सी लगाओ। केवल दांत काले करने से क्या लाभ है? एक स्त्री अपनी मिस्सी की शोभा दिखलाने के लिए हंसती रहती है और दूसरी हंसती नही है किन्तु परोपकार मे लगी रहती है। इन दोनो में से परोपकार करने वाली ही अच्छी समझी जायगी। जो निठल्ली बैठी दात निकाला करती है, उसे कोई भली नही कहेगा, चाहे मिस्सी कितनी ही बढिया क्यों न लगी हो! वास्तव में परोपकार की मिस्सी लगाना ही सच्चा सिंगार है।

पतिव्रता के काजल में भी शक्ति होती है। शिशुपाल ने अपनी भौजाई से कहा था—मैं बनडा बना हूँ भाभी, मेरी आँखों में काजल आँज दो। उसकी भौजाई ने कहा—रुक्मिणी को ब्याहने का तुम्हे अधिकार नही है, क्योंकि वह तुम्हें चाहती नहीं है। जो चाहती ही नहीं उसे ब्याहने का अधिकार पुरुष को नहीं है। ऐसी हालत में मैं तुम्हे काजल नहीं आंजूंगी। मैंने काजल आँज दिया और तुम वहाँ से कोरे आ गये तो मेरे काजल का अपमान होगा।

अरगजा अर्थात् सौन्दर्य बढ़ाने वाला सुगन्धित द्रव्य, जिसे स्त्रियां लगाती हैं, ज्ञान का होना चाहिए। अर्थात् किस अवसर पर क्या करना चाहिए, इसका ज्ञान होना ही सच्चा अरगजालेपन है। इस प्रकार का सिंगार करके शम, दम, संतोष के आभूषण पहनना चाहिए और अपने घर पर आये हुए का अपमान न होने देना ही मेहदी लगाना होना चाहिए।

सुना है, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की जन्मगांठ के अवसर पर कलेक्टर आदि प्रतिष्ठित अतिथि उनके घर आये हुए थे। विद्यासागर की माता के हाथ में चांदी के कड़े थे। माता जब उन अतिथियों के सामने आई तो उन्होने कहा—विद्यासागर की माता के हाथों मे चांदी के कड़े शोभा नही देते। माता ने उत्तर दिया—अगर मैं सोने के कडे पहनती तो अपने पुत्र को विद्यासागर नहीं बना सकती थी। हाथो की शोभा सोने के कड़े से नहीं, दान देने से बढती है। कहा भी है—

दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन

अर्थात्—हाथ की शोभा दान से है, कंकण पहनने से नहीं। हाथों की शोभा मेंहदी लगाने से नहीं होती, बल्कि घर पर आए हुए गरीबों को निराश व अपमानित न करके उन्हें दान देने से होती है।

शुभ विचारों की फूलमाला धारण करनी चाहिए, वनस्पति के फूलों की माला पहनना तो प्रकृति की शोभा को नष्ट करना है। इसी प्रकार मुख मे पान बीडा दबा लेने से स्त्री की प्रतिष्ठा नहीं बढती। प्रतिष्ठा बढाने के लिए स्त्री को विनय सीखना चाहिए।

भारत की स्त्रियों में विनय की जैसी मात्रा पाई जाती है, अन्य देशो मे नहीं है। यूरोप की स्त्रियों में कितनी विनयशीलता है, यह बात तो उस फोटू को देखने से मालूम हो जायगी जिसमे

रानी मेरी कुर्सी पर डटी हैं और बादशाह जार्ज उनके पास नौकर की भांति खड़े हैं ! भारत की स्त्रियों मे इतनी अशिष्टता शायद ही मिले।

इस सब सिंगार पर सत्संगति का इत्र लगाना चाहिए। कुसंगति से यह सब पूर्वोक्त सिंगार भी दूषित हो जाता है। कैकयी भरत की माता होने पर भी मंथरा की संगति के कारण बुरी कहलाई।

२—कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य

आज कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के विषय मे बड़ी उल्टी-समझ हो रही है। लोगो ने न जाने किस प्रकार अपनी कुछ धारणाएं बना ली हैं। बाजार से घी लाने में पुण्य है और घर पर गाय का पालन करके घी उत्पन्न करने मे पाप है, ऐसा कई लोग समझते हैं। मगर विचारणीय यह है कि बाजार का घी क्या आकाश से टपक पड़ा है ? बाजार का घी खरीदने से कितने जानवरों की हिंसा का भागी होना पड़ता है, इस बात पर आपने कभी विचार किया है ?

यह सभी जानते हैं कि एक रुपये का जितना विदेशी घी आता है उतने देशी घी के दो रुपये लगते हैं। पर विदेशी घी में किन-किन वस्तुओं की मिलावट होती है, वह स्वास्थ्य को किस प्रकार बिगाड़ता है, इस बात का भली-भांति अध्ययन किया जाय तो नफे-टोटे की बात मालूम हो जायगी।

जिस देश वाले भारतवर्ष से हजारो मन मक्खन ले जाते हैं लाखो मन गेहूं ले जाते हैं, वही लोग जब आधी कीमत पर वही वस्तुएं लाकर हमें देते हैं तो समझना चाहिए कि इसमें कुछ रहस्य अवश्य है। क्या वे दिवालिया बनने के लिए व्यापार

करते हैं ?

घर पर उत्पन्न हुए घी से बाजार के घी मे अधिक पाप क्यो है, इस प्रश्न पर ऊपरी दृष्टि से विचार मत कीजिए। आप उस शास्त्र पर नजर रखते हुए विचार कीजिए जो धनुष-बाण बनाने में घोर आरम-समारभ का होना बतलाता है। विदेशी घी तैयार करने के लिए कितने बडे-बडे कारखाने खडे किये जाते हैं और उसके लिए कितने पशुओं का वध किया जाता है, इस बात का जब आपको पूरा पता लग जाएगा तब सहज ही आप जान सकेंगे कि थोड़ा पाप किसमें है और अधिक पाप किसमें है।

बहुत से भाई कहते हैं कि मैं गायें पालने का उपदेश देता हूँ। वह कहते हैं—महाराज गायें पलवाते हैं, पर मैं क्या उपदेश देता हूँ, क्या कहता हूँ और किस आधार से कहता, हूँ इस बात को वे समझने का कष्ट नही उठाते। उन्हें कौन समझाए कि साधु का कर्त्तव्य जुदा होता है और गृहस्थ का धर्म जुदा है। दोनों की परिस्थितियाँ इतनी भिन्न हैं कि उनका कर्त्तव्य एक नहीं हो सकता। साधु कभी सावद्य भाषा का प्रयोग नही करता।

शास्त्र में प्रतिपादित कर्त्तव्य क्या है और आधुनिक श्राविकाएँ उसे किस रूप मे समझती हैं, इस बात का विचार करने से आश्चर्य होने लगता है। कोई-कोई श्राविका चक्की न चलाने की प्रतिज्ञा लेती है। वह समझती है—'चक्की नही चलाऊँगी तो पाप से बच जाऊगी।' मगर उन्हे यह विचार नहीं आता कि आटा तो खाना ही पड़ेगा, फिर वह पाप से कैसे बच जायगी ?

मैं तो यहां तक कहता हू कि मशीन से आटा पिसवाने की अपेक्षा हाथ से पीसकर खाने में कम पाप होता है। इसका कारण यह है कि हाथ से पीसने में यतना रखी जा सकती है। पीसते समय गेहू आदि मे कोई जीव-जन्तु गिर जाय तो उसे बचाया

जा सकता है। चक्की में पाटों के बीच में छिपे हुए जीवों की रक्षा की जा सकती है। हाथो से इतना अधिक आटा नही पीसा जाता कि उसका बहुत अधिक संग्रह हो जाय।

३–मशीन का आटा

अभी कुछ दिनों पहले तक गृहस्थ बहिनें अपने हाथ से आटा पीसती थी। धनाढ्य और निर्धन का इस विषय में कोई भेद नही था। शरीर के लिए किसी न किसी प्रकार के शारीरिक व्यायाम की जरूरत होती है। नीरोग रहने के लिए यह अत्यावश्यक है। अपने हाथ से आटा पिसने से बहिनों को अच्छा व्यायाम हो जाता था और वे कई प्रकार के रोगों से बची रहती थीं। परन्तु आजकल हाथ की चक्की घरों से उठ गई और उसका स्थान पनचक्की ने ग्रहण कर लिया है। बहिनें आलसी हो गई हैं। वे अपने हाथ से काम करने मे कष्ट मानती हैं और धीरे-धीरे बड़प्पन का भाव भी उन्हें ऐसा करने के लिए रोकने लगा है। इसका एक परिणाम तो प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है कि बहिनो ने अपना स्वास्थ्य खो दिया है। आज अधिकांश बाइयां निर्बल, निसत्व और तरह–तरह के रोगो से ग्रस्त हैं। प्रसव के समय अनेक बहिनों को भारी कष्ट उठाना पड़ता है। इसका एक प्रधान कारण आलस्यमय जीवन है, जिसकी बदौलत वे शारीरिक श्रम से वंचित रहती हैं। इतना सब होते हुए भी, उनकी आँखें नहीं खुलती यही आश्चर्य है।

शारीरिक रोगों के अतिरिक्त पनचक्की के कारण और भी अनेक हानियाँ होती हैं। पनचक्की आटे का असली सत्व तो आप खा जाती है और सिर्फ आटे का नि.सत्व कलेवर बाकी

रखती है। संसार में कहावत है—जिस वस्तु पर डाकिन की दृष्टि पड़ जाती है, वह सत्व-रहित हो जाती है। डाकिन के सम्बन्ध में यह कहना तो सिर्फ वहम मात्र है, लेकिन पनचक्की तो प्रत्यक्ष ही अन्न का सत्व खा जाती है। पनचक्की में पिस कर निकला हुआ आटा जलता हुआ होता है और ठंडा होने पर ही काम में आता है। वह जलता हुआ आटा मानो कह रहा है कि—'मेरा सत्व चूस लिया गया है और मैं बुखार चढ़े हुए मनुष्य की तरह कमजोर हो गया हूं।'

पनचक्की का आटा खाने मे आपको सुभीता भले ही मालूम होता हो, लेकिन किसी भी दृष्टि से वह लाभप्रद नहीं है। संस्कार की दृष्टि से भी वह अत्यन्त हेय है। बम्बई में सुना था कि मछली बेचने वाले लोग जिस टोकरी में मछलियां रख-कर बेचते हैं, उसी टोकरी में गेहूं लेकर पनचक्की में पिसाने ले जाते हैं। मछली वाली टोकरी के गेहू जिस चक्की में पिसते हैं उसी में दूसरे गेहू पिसते हैं। लोग यों तो छुआछुत का बड़ा ध्यान रखते हैं लेकिन पनचक्की मे वह छुआछूत भी पिस कर चूरा-चूरा हो जाती है। क्या मछली वाली टोकरी के गेहू का आटा पनचक्की में रह कर आप लोगों के आटे मे नही मिलता होगा! और वह आटा बुरे संस्कार नही डालता होगा?

आप डाक्टरो की राय लेंगे तो वह आपको बतलायेंगे कि पनचक्की का आटा हानिकारक है।

इसके सिवाय हाथ की चक्की से अल्प-आरम्भ से काम चलता था, लेकिन पनचक्की से महा-आरम्भ होता है।

पनचक्की से गृहस्थ-जीवन की एक स्वतन्त्रता नष्ट हो गई और परतन्त्रता पैदा हो गई है।

४–बिना छना पानी

गर्मी और वर्षा के कारण आटे में भी कीड़े पड़ जाते हैं, जल में भी कीड़े पड़ जाते हैं और ईंधन में भी। लोग धर्म-ध्यान तो करते हैं, परन्तु इन जीवो की रक्षा करने के लिए हिंसा के घोर पाप से बचने में न मालूम क्यो आलस्य करते हैं? बड़े-बड़े मटकों में भरा हुआ पानी कई दिनो तक खाली नही होता। पहले से भरे हुए पानी में दूसरा पानी डालते रहते हैं। कदाचित् पहले का पानी आरम्भ में छान कर भरा गया हो, तो भी उसमें जीव उत्पन्न हो जाते हैं। एक बार छना हुआ जल सदा के लिए छना हुआ जल नहीं रहता। अतएव ऊपर से नया पानी डाल देने से वह भी बिना छना पानी हो जाता है। उसे व्यवहार में लाना हिंसा का कारण है। अगर जल छानने की यतना मर्यादा पूर्वक की जाय, तो अहिंसा धर्म का भी पालन हो और स्वास्थ्य की भी रक्षा हो। आप सामायिक आदि धर्म–ध्यान तो करते हैं, पर कभी इस पर ध्यान देते हैं कि आपके घर में पानी छानने के कपड़े की क्या दशा है?

पहनने-ओढ़ने के कपड़ों की सफाई करते हैं, परन्तु पानी छानने के कपड़े की ओर ध्यान नहीं जाता। सेठ-सेठानी की पेटियां कपड़ों से भरी रहती हैं, फिर भी पानी छानने के कपड़े में तो कजूसी ही की जाती है। आप स्वय इस ओर ध्यान नहीं देते। नौकरों के भरोसे छोड़ देते हैं। इस कारण जल की पूरी तरह यतना नहीं होती।

लोगों ने इस प्रकार की छोटी-छोटी बातों में भी विधि का नाश कर डाला है। केवल जल न छानने के कारण ही—बिना छना जल पीने से ही बहुत रोग होते हैं, ऐसा डाक्टरों का मत है।

विना छना जल न पीने से अहिंसा बढेगी, रोगों से रक्षा होगी और दया का पालन होगा। जो आदमी विना छना जल भी न पीयेगा, उनके हृदय में कभी मछली पकडने की भावना उत्पन्न नहीं होगी।

५—रात्रिभोजन

जल छानने के साथ ही भोजन मे भी विवेक रखने की आवश्यकता है। रात्रि-भोजन अत्यन्त ही हानिकारक है। क्या जैन और क्या वैष्णव सभी ग्रन्थों मे रात्रि-भोजन को त्याज्य माना गया है। जिसने रात्रि भोजन त्याग दिया है, वह एक प्रकार से तपस्या करके अनेक रोगों से बच रहा है। रात्रि-भोजन त्यागने से बहुत लाभ होता है। प्लेग के कीडे का जोर दिन मे उतना नही होता, जितना रात्रि मे होता है। रात्रि में प्लेग के कीडे प्रबल होते हैं, दिन में सूर्य की किरणो से या तो वह नष्ट हो जाते हैं या प्रभावशील हो जाते हैं। डाक्टरो और शास्त्रकारों का कथन है कि जो भोजन रात्रि मे रहता है-उसमें अनेक प्रकार के किटाणु पैदा हो जाते हैं। इस प्रकार रात्रि का भोजन सब प्रकार से अभक्ष्य होता है। मगर खेद है कि कई भाई चार पहर के दिन मे तो भोजन नही कर पाते और रात्रि मे ही फुर्सत पाते हैं।

रात्रि-भोजन की बुराइयाँ इतनी स्थूल हैं कि उन्हे अधिक समझने की आवश्यकता नहीं जान पडती। रात्रि में चाहे जितना प्रकाश किया जाय, अँधेरा रहता ही है। बल्कि प्रकाश को देख कर बहुत-से कीड़े आ जाते हैं और वे भोजन में गिर जाते हैं। अगर एकदम अँधेरे में भोजन किया जाय तो आकर गिरने

वाले जीव जन्तुओं का पता लग ही नहीं सकता । इस प्रकार दोनों अवस्थाओं में रात्रि-भोजन करने वाले अक्ष्मयभक्षण और हिंसा के पाप से नही बच सकते । रात्रि–भोजन के प्रत्यक्ष प्रतीत होने वाले दोषों का दिग्दर्शन कराते हुए आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है—

मेधां पिपीलिका हन्ति, यूका कुर्याज्जलोदरम् ।
कुरुते मक्षिका वान्ति, कुष्ठरोग च कोलिक ॥
कण्टको दारुखण्ड च, वितनोति गलव्यथाम् ।
व्यञ्जनान्तर्निपतितस्तालु, विध्यति वृश्चिक. ॥
विलग्नश्च. गले नाल. स्वरभङ्गाय जायते ।
इत्यादयो दृष्टदोषा सर्वेषां निशिभोजने ॥

—योगशास्त्र, तृतीय प्रकाश

अर्थात्—रात्रि में विशेष प्रकाश न होने के कारण अगर कीडी भोजन के साथ पेट में चली जाय, तो वह मेधाशक्ति (बुद्धि) का नाश करती है । जूं गिर जाय तो जलोदर नामक भयकर रोग होता है । मक्खी से वमन होता है । कोलिक (जीव विशेष) से कोढ होता है । कांटा या लकडी की फास भोजन के साथ खाने में आ जाय तो गले में पीडा हो जाती है । कदाचित् बिच्छू व्यजनो में मिल जाय तो वह तालू को फोड डालता है । बाल से स्वरभग होता है । इस प्रकार के अनेक दोष रात्रि-भोजन करने से उत्पन्न होते हैं ।

पूर्वोक्त शारीरिक दोषों के अतिरिक्त रात्रि-भोजन हिंसा का कारण तो है ही । इस विषय मे कहा है—

जीवाण कुंथुमाईण घायण भायणधोयणाईसु ।
एवमाइ रयणिभोयणादोसे को साहिउ तरइ ॥

अर्थात्—जो लोग रात्रि में भोजन करते हैं, उनके यहां रात्रि में भोजन पकाने का भी विचार नहीं रहता और ऐसी स्थिति

में वर्तन धोने आदि कामों में कुथुवा आदि जीवों की घोर हिंसा होती है। रात्रि-भोजन में इतने अधिक दोष हैं कि कहे नहीं जा सकते।

रात्रि-भोजन के दोषो के उदाहरण खोजने से सैकड़ों मिल सकते हैं। जिस रात्रि-भोजन को अन्य लोग भी निषिद्ध मानते हैं, उसका सेवन अहिंसा और सयम का अनुयायी जैन किस प्रकार कर सकता है ? एक उदाहरण लीजिए।

जैनी रात को नही खाते हैं, सुन चातुर भाई।
हठ करके किसी ने खाया, वग्रा नसीहत पाई॥
रामदयाल सागर में हकीम था, उसकी थी नारी।
प्यास लगी पानी की उसको, रात थी अन्धियारी॥
मकड़ी उसमें पडी आन कर, जहरी थी भारी।
जहरी मकडी गई पेट मे, हो गई दुखियारी॥
पेट फूला और सूजी सारी,
वैद औषधि करी तयारी।
नहीं लागे कारी॥
छह महीने में मुई निकाली, सागर मे भाई॥हठ०॥

आप इस कविता की शाब्दिक त्रुटियों पर ध्यान न देकर उसके भावों पर ध्यान दीजिए। रात्रि भोजन से होने वाली हानियो के उदाहरण पहले के भी हैं और आज भी अनेक सुने जाते हैं। सागर के हकीम ने रोगों पर हिकमत चलाई, लेकिन रात्रि का भोजन नहीं त्यागा। नतीजा यह हुआ कि उसे अपनी स्त्री से हाथ धोना पडा। आजकल के वैज्ञानिक भी रात्रि-भोजन को राक्षसी भोजन कहते है। रात्रि में पक्षी भी खाना-पीना छोड़ देते हैं। पक्षियों में नीच समझे जाने वाले कौवे भी रात में नहीं खाते। हाँ चमगीदड रात्रि को खाते हैं, परन्तु क्या आप उन्हें अच्छा समझते हैं ? आप उनका अनुकरण करना पसन्द करते

हैं ?

साराश यह है कि रात्रि-भोजन अहिंसा और स्वास्थ्य दोनो का ही नाशकर्ता है, अतएव सब भाईयों और बहिनों को धर्म की ओर साथ ही शरीर की रक्षा के लिए रात्रि-भोजन का त्याग करना चाहिए।

कुछ दिन हुए एक समाचार-पत्र में एक घटना पढी थी। वह इस प्रकार थी—एक व्यक्ति के यहाँ कुछ मित्र आये। मित्र लोग आधुनिक शिक्षा के सभी फनो से युक्त थे। बम्बई की तरफ के लोगों में चाय का विशेष तौर पर सत्कार होता है। रात्रि के दस-ग्यारह बजे का समय था। उस व्यक्ति ने आगुन्तक मित्रों के लिए चाय बनाई। सब ने रुचि के साथ चाय पी ली। लेकिन एक भला आदमी ऐसा था जो रात को कुछ खाता-पीता नही था। उसने चाय नही पी। दूसरे आदमियों ने बहुत आग्रह किया, दबाव डाला। उससे कहा गया—'यार! इतना पढ़-लिख करके भी धर्म-कर्म के ढोंग में पडे हो! यह धर्म तो विष की पुडिया है। धर्म ने और साधुओं ने ही सब खराबी कर रखी है। भाई, बीडी, चाय पी लो थकावट मिट जायगी। तबीयत हरी हो जायगी।

चाय के विज्ञापनों में लिखा रहता है कि गर्म चाय थका-वट मिटाती है, स्फूर्ति देती है, आदि-आदि। इस प्रकार के विज्ञा-पनों द्वारा चाय का प्रचार किया जाता है। मगर कौन विचार करता है कि चाय से क्या-क्या हानिया होती हैं? विज्ञापनों द्वारा लोगों को किस प्रकार भुलावे में डाला जाता है!

बहुत आग्रह करने पर भी उस एक पुरुष ने चाय पीना स्वीकार नहीं किया। शेष सब चाय पीकर सो गये। वह लोग जो सोये सो सदा के लिए ही सोये। सवेरा होने पर भी नहीं उठे। बिस्तरो पर उनके निर्जीव शरीर पड़े थे। अपने मित्रों को

मरा हुआ देखकर चाय न पीने के कारण जीवित रहने वाला बहुत घबराया । उसने सोचा कहीं—मुझ पर ही कोई आफत न आ पड़े । थाने में इत्तला करने पर पुलिस तहकीकात करने आई । उस जीवित बचने वाले ने कहा—यह सब लोग चाय पी-पी कर सोये थे । जान पड़ता है, चाय में ही कोई विषैली चीज मिली होगी । इनकी मृत्यु का और कारण मालूम नहीं होता । पुलिस-अफसर ने चायदानी देखी तो मालूम हुआ कि चायदानी की नली में एक छिपकली जमी हुई थी, जो चाय के साथ उबल गई और उसके जहर से सभी पीने वाले अपने प्राणों से हाथ धो बैठे ।

कोद (बिडवाल) की ठकुरानी ने दिन भर एकादशी का व्रत किया और रात को फलहार करने लगी । ठकुरानी ने केवल एक ही ग्रास खाया था कि भयकर रोग हो गया । अनेक प्रकार की चिकित्सा करने पर भी वह न बच सकी ।

अस्तगते दिवानाथे आपो रुधिरमुच्यते ।
अन्न मांससम प्रोक्तं, मार्कण्डेयमहर्षिणा ॥

यहां सूर्य डूबने के पश्चात अन्न को मांस और पानी को रुधिर के समान बतलाया गया है । यह चाहे अलकारिक भाषा हो फिर भी कितने तीखे शब्दों में रात्रि के भोजन-पान का त्याग बतलाया गया है ! अतएव रात्रि-भोजन के अनेक विध दोषों का विचार करके आप उसका त्याग करें ।

६—चाय

चाय का प्रचार बहुत हो गया है । चाय का प्रचलन हो भले गया हो मगर समझदार लोगों का कहना है कि चाय हानि

करने वाली चीज है। अतएव इस पाप को भी त्यागने की आवश्यकता है। यह मत देखो कि इसका प्रचार बहुत लोगों में हो गया है। यह भी मत सोचो कि सभ्य कहलाने वाले लोग इसका सेवन करते हैं। जब यह निश्चित है कि चाय हानिकारक है तो फिर कोई भी उसका सेवन क्यो न करे, वह हानिकारक ही रहेगी। जिस हानि करने वाली चीज का अधिक प्रचार हो जाता है, उसी का निषेध किया जाता है। कहा जाता है कि उबलते हुए पानी मे दूध डालने से उसका सत्व नष्ट हो जाता है। कई स्थानों पर चाय का व्यवहार बन्द करने के लिए होटलों पर टैक्स बढा दिया गया है, लेकिन इसका कोई अभीष्ट परिणाम नहीं आया। होटल वाले पैसे बचाने के लिए दूध के बदले भ्रष्ट चीजें डाल देते हैं और इस प्रकार वे तो अपने टैक्स की पूर्ति कर लेते हैं परन्तु ग्राहकों को मूर्ख बनना पडा है।

सरकारी आदेश से ऐसी चीजों के बन्द होने की अपेक्षा प्रजा स्वयं समझ कर बन्द कर दे तो कितना अच्छा हो! अगर आप लोग विचार करें तो राज्य-सत्ता की भी सहायता मिल सकती है और चाय के पाप से आपका छुटकारा हो सकता है।

इस देश में चाय का इतना अधिक प्रचलन हो गया है कि बहिनें भी चाय पीने लगी हैं और यह कोई बुरा काम नहीं समझा जाता। मैंने तो यहा तक सुना है कि उपवास करने वाली बाइयां पारणा करते समय पहले चाय लेती हैं। यह बडी भयकर बात समझिए। जब स्त्री और पुरुष दोनों ही चाय के शौकिन हो जाएँ तो फिर चाय को डर ही किसका रहा! घर में उसका स्वच्छन्द विहार होगा और यह बाल-बच्चों को भी चूसे बिना नहीं रहेगी। अतएव इस दुर्व्यसन का त्याग करने के सम्बन्ध में भी विचार करना चाहिए।

७–सच्ची लज्जा

आजकल की बहुत-सी स्त्रियां घूंघट पर्दा आदि से ही लज्जा की रक्षा समझती हैं, किन्तु वास्तव में लज्जा कुछ और ही है। लज्जावती अपने अंग-अंग को इस प्रकार छिपाती है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। लज्जावती कैसी होती है, यह बात उदाहरण से समझ लीजिये—

एक लज्जावती बाई पतिव्रता धर्म का पालन करती हुई अपना जीवन बिताती थी। उसने यह निश्चय किया था कि मेरे साथ जो भी कोई रहेगी उसे भी मैं ही शिक्षा दूंगी। उसकी शिक्षा से मुहल्ले की बहुत-सी स्त्रियाँ सदाचारिणी बन गईं।

उसी मुहल्ले में एक और औरत थी, जिसका स्वभाव इससे एकदम विपरित था। यह पूर्व को तो वह पश्चिम को जाती थी। वह अपना दल बढाने के लिए स्त्रियो को भरमाया करती। उस पतिव्रता की निन्दा करती, उसकी संगति को बुरा बतलाती और कहती—'अरी, उसकी संगत करोगी तो जोगिन बन जाओगी। खाना-पीना और मौज करना ही तो जीवन का सबसे बडा लाभ है।

कुछ स्त्रिया उस निर्लज्जा और धूर्ता स्त्री की भी बातें सुनने वाली थीं, पर ऐसी थी कम ही। सदाचारिणी की बातें सुनने वाली बहुत थीं। यह देखकर उसे बडी ईर्ष्या होती और उसने उस सदाचारिणी की जड खोद फैंकने का निश्चय कर लिया।

वह सदाचारिणी बाई बडी लज्जावती थी, मगर ऐसी नहीं कि घर में ही बन्द रहे और बाहर न निकले। वह अपने काम करने के लिए बाहर भी जाती थी। जब वह बाहर निकलती तो निर्लज्जा उसे कहती—'मैं तुझे अच्छी तरह जानती हू कि तू

कैसी है । बडी बगुला भगत बनी फिरती है, लेकिन तेरी जैसी दूसरी कहीं शायद ही मिले ।'

निर्लज्जा ने दो-चार वार लज्जावती से ऐसा कहा । लज्जा-वती ने सोचा—क्षमा रखना तो उचित है, पर ऐसा करने से—चुपचाप सुन लेने से तो लोगों को शका होने लगेगी । एक बार ऐसा ही प्रसग उपस्थित होने पर उसने रुक कर कहा— तेरा मार्ग अलग है और मेरा मार्ग अलग है । मेरा—तेरा कोई लेन-देन नहीं, फिर विना मतलब अपनी जबान क्यों बिगाडती हो ?'

लज्जावती का इतना कहना था कि निर्लज्जा भडक उठी । वह कहने लगी—'तू मीठी-मीठी बातें बनाकर अपने ऐब छिपाती है और जाल रचती है । पर मैं तेरे सारे ऐब ससार के सामने खोल कर रख दू गी ।'

यह सुनकर लज्जावती को भी कुछ तेजी आ गई । उसने उस कुलटा को कहा—'तुझे मेरे चरित्र को प्रकट करने का अधिकार है, मगर जो यद्वा-तद्वा ऊल-जलूल कहा तो तेरा भला न होगा ।'

पवित्रता की यह युक्तिपूर्ण बात सुनकर लोगों पर अच्छा प्रभाव पडा । लोगों ने उससे कहा—'बहिन, तुम अपने घर जाओ । यह कैसी है, सभी जानते हैं ।' लोगो की वात सुनकर पतिव्रता अपने घर चली गई । यह देखकर कुलटा ने सोचा—'हाय ! वह भली और मैं बुरी कहलाई । अब इसकी पूछ और बढ जायगी और मेरी वदनामी बढ जायगी । ऐसे जीवन से तो मरना ही भला ! मगर इस प्रकार मरने से भी क्या लाभ है ? अगर उसे कोई कलक लगाकर उसके प्राण ले सकूँ तो मेरे रास्ते का कांटा दूर हो जाए । मगर कलक क्या लगाऊँ ? और कोई कलक लगाने पर तो उसका साबित करना कठिन हो जायगा । क्यों न मैं अपने लडके को ही मार डालू और दोष उसके माथे मढ दू । लोगों

को विश्वास हो जायगा और उसका भी खात्मा हो जायगा।'

इस प्रकार क्रूरतापूर्ण विचार करके उसने अपने लडके के प्राण ले लिये। लडके का मृत शरीर उस सदाचारिणी के मकान के सामने कुएँ में फैंक आई। इसके बाद रो-रो कर, बिलख २ कर अपने लडके को खोजने लगी। हाय! मेरा लडका न जाने कहाँ गायब हो गया है! दूसरे लोग भी उसके लडके को ढूंढने लगे। आखिर वह लोगो को उसी कुए के पास लाई जिसमे उसने लडके का शव फैंका था। लोगों ने कुए को ढूंढा तो उसमें से बच्चे की लाश निकल आई। लाश निकलते ही दुराचारिणी उस सदाचारिणी का नाम ले-लेकर कहने लगी—हाय! उस भगतन की करतूत देखो। उस पापिनी ने मुझ से बैर भजाने के लिए मेरे लडके को मार डाला! डाकिन ने मेरा लाल खा लिया! हाय! मेरे लड़के को गला घोट कर मार डाला।'

आखिर न्यायालय में मुकदमा पेश हुआ। दुराचारिणी ने सदाचारिणी पर अपने लडके को मार डालने का अभियोग लगाया। सदाचारिणी को भी न्यायालय में उपस्थित होना पडा। उसने सोचा—बडी विचित्र घटना है। मैं उस लडके के विषय में कुछ नहीं जानती, फिर भी मुझ पर हत्या का आरोप है। खैर कुछ भी हो, अभियोग का उत्तर देना ही पडेगा।

कुलटा स्त्री ने अपने पक्ष के समर्थन मे कुछ गवाह भी पेश किये। सदाचारिणी से पूछा गया—'क्या तुमने इस लडके की हत्या की है?'

सदाचारिणी—नही, मैंने लडके को नही मारा, किसने मारा है, वह भी मैं नही जानती और न मुझे किसी पर शक ही है।

मामला बादशाह के पास पहुँचाया गया। बादशाह बडा बुद्धिमान और चतुर था। उसने सदाचारिणी को भली-भाति देखा और सोचा—कोई कुछ भी कहे, सबूत कुछ भी हो पर यह

निश्चित मालूम होता है कि इसने लड़के की हत्या नहीं की।

बादशाह का वजीर भी बड़ा बुद्धिमान् था। उसने कहा—इस मामले में कानून की किताबें मददगार नहीं होंगी। यह मेरे सुपुर्द कीजिये। मैं इसकी जांच करूंगा।

बादशाह ने वजीर को मामला सौंप दिया। वजीर दोनों स्त्रियों को साथ लेकर घर आया। वह सदाचारिणी को साथ लेकर एक ओर जाने लगा। सदाचारिणी ने वजीर से कहा—मैं अकेली परपुरुष के साथ एकांत में कदापि नहीं जा सकती। फिर वह चाहे सगा बाप ही क्यों न हो। आप जो पूछना चाहें, पूछ सकते हैं।

वजीर ने धीमे स्वर में कहा—तुम एक बात मेरी मानों तो मैं तुम्हें बरी कर दूंगा।

सदाचारिणी—आपकी बात सुने बिना मैं नहीं कह सकती कि मैं उसे मान ही लूंगी। अगर धर्म विरुद्ध की बात नहीं हुई तो मान लूंगी, अन्यथा जान देना मन्जूर है।

वजीर—मैं तुम्हारा धर्म नहीं जाने दूंगा, तब तो मानोगी।

सदाचारिणी—अगर धर्म न जाने योग्य बात है तो साफ क्यों नहीं कहते ?

वजीर—तुम्हारे खिलाफ यह आरोप है कि तुमने लड़के को मारा है। न मारने की बात केवल तुम्हीं कहती हो, पर तुम्हारी बात पर विश्वास कैसे किया जाय ? अपनी बात पर विश्वास कराना है तो नंगी होकर मेरे सामने आ जाओ। इससे मैं समझ लूंगा कि तुमने मेरे सामने जैसे शरीर पर पर्दा नहीं रक्खा उसी प्रकार बात कहने मे पर्दा न रक्खोगी।

सदाचारिणी—जिसे मैं प्राणों से भी अधिक समझती हूं, उस लज्जा को नहीं छोड़ सकती और आपका भी यह कर्त्तव्य नहीं

है। आप चाहे तो शूली पर चढा सकते हैं—फांसी पर लटकाने का आपको अधिकार है, परन्तु लज्जा का त्याग मुझ से न हो सकेगा।

इतना कह कर वह वहाँ से चल दी। वजीर ने कहा—'देखो, समझ लो। न मानोगी तो मारी जाओगी।' सदाचारिणी ने कहा—'आपकी मर्जी। यह शरीर कौन हमेशा के लिए मिला है। आखिर मनुष्य मरने के लिए ही तो पैदा हुआ है।

वजीर ने सोच लिया—'यह स्त्री सच्ची और सती है।'

इसके बाद वजीर ने कुलटा को बुलाकर वही कहा—'तुम मेरी एक बात मानो तो तुम जीत जाओगी।'

कुलटा—मैं तो जीती हुई हूँ ही। मेरे पास बहुत से सबूत हैं।

वजीर—नही, अभी सन्देह है। वह बाई हत्यारिणी नही है।

कुलटा—आप इसके जाल मे तो नही फँस गये? वह बडी धूर्ता है।

वजीर—यह सदेह करना व्यर्थ है।

कुलटा—फिर आप उस हत्यारिणी को निर्दोष कैसे बतलाते हैं?

वजीर—अच्छा मेरी बात मानो।

कुलटा—क्या?

वजीर—तुम मेरे सामने कपडे खोल दो तो मैं समझूंगा कि तुम सच्ची हो।

कुलटा अपने कपडे खोलने लगी। वजीर ने उसे रोक दिया और जल्लाद को बुलाकर कहा—'इसे ले जाकर बेंत लगाओ।

जल्लाद उसे बेरहमी से पीटने लगा। वह चिल्लाई—ईश्वर के नाम पर मुझे मत मारो। जल्लाद ने पूछा—'तो बता,

लड़के को किसने मारा है ?' कुलटा ने सच्ची बात स्वीकार कर ली । मार के आगे भूत भागता है, यह कहावत प्रसिद्ध है ।

वजीर ने अपना फैसला लिखकर बादशाह के सामने पेश कर दिया । कहा—लड़के की हत्या उसकी मां ने ही की है ।

बादशाह ने कहा—यह कौन मान सकता है कि माता अपने पुत्र को मार डाले ! लोग अन्याय का सन्देह करेंगे ।

वजीर ने कहा—यह कोई अनोखी बात नहीं है । धर्म-शास्त्र के अनुसार पहला धर्म लज्जा है । जहा लज्जा है, वहीं दया है । मैंने दोनो की लज्जा की परीक्षा की । पहली बाई ने मरना स्वीकार लिया, मगर लाज तजना स्वीकार न किया । वह धर्मशीला है । इस दूसरी ने मुझे भी कलंक लगाया और फिर लाज देने को तैयार हो गई । यह देखकर उसे पिटवाया तो लड़के की हत्या करना स्वीकार कर लिया ।

सारा मामला बदल गया । सच्चरित्रा बाई के सिर मढ़ा हुआ कलंक मिट गया । बादशाह ने सच्चरित्रा को धन्यवाद देकर कहा—'आज से तुम मेरी बहिन हो ।'

लज्जा के प्रताप से उस बाई की रक्षा हुई । वह लाज तज देती तो उसके प्राण भी न बचते । बादशाह ने कुलटा को फासी की सजा सुनाई और सदाचारिणी ने कहा—'बहिन ! तुम जो चाहो, मुझ से माग सकती हो ।'

सदाचारिणी बाई ने उठकर कहा—'आपके अनुग्रह के लिए आभारी हू । मैं आपके आदेशानुसार यही मांगती हूँ कि यह बाई मेरे निमित्त से न मारी जाय । इस पर दया की जाय ।'

बादशाह ने वजीर से कहा—तुम्हारी बात बिल्कुल सत्य है । जिसमें लज्जा होगी, उसमे दया भी होगी । इस बाई को देखो । अपने साथ बुराई करने वाली की भी कितनी भलाई कर रही है ।

बादशाह ने सदाचारिणी बाई की बात मानकर कुलटा को क्षमादान दे दिया। कुलटा पर इस घटना का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसका जीवन एकदम बदल गया।

सारांश यह है कि लज्जा एक बड़ा गुण है। जिसमें लज्जा होगी, वह धर्म का पालन करेगा।

८—अपने दोष देखो

दूसरे के अवगुण देखने से काम नहीं चलेगा। अपने २ अवगुण देखने से ही कल्याण का मार्ग मिल सकता है। दूसरो के अवगुण देखना स्वयं एक अवगुण है। दुनियाँ के अवगुणों को अपने चित्त मे धारण करोगे तो चित अवगुणों का खजाना बन जायगा। इसके अतिरिक्त अवगुण आपके लिए ऐसे साधारण हो जाएँगे कि आप उन्हे शायद हेय भी समझना छोड दें। दुनियां के प्रत्येक मनुष्य में अगर कुछ अवगुण होगे तो कुछ गुण भी होगे। आप अपनी दृष्टि ऐसी उज्जवल बनाइए कि आपको दूसरे के गुण दिखाई दें। मगर अवगुणो की तरफ दृष्टि मत जाने दीजिए। हाँ, अवगुण देखने हैं तो अपने ही अवगुण देखो। अपने अवगुण देखने से उन्हें त्यागने की इच्छा होगी और आप सद्‌गुणी बन सकेंगे।

अगर परमात्मा के दर्शन करने हैं तो सीधे मार्ग पर आकर यह विचार करो—मैं अपराधी हू। मेरे अवगुणो का पार नही है। प्रभो ! मुझ से यह अवगुण कब छूटेंगे ?

इस प्रकार अपने दोष देखते रहने से हृदय निर्दोष बनेगा और परमात्मा का दर्शन होगा। कोई आदमी चित्र बनाना न जानता होगा तब भी यदि वह काच पास मे रख कर किसी वस्तु के सामने करेगा तो उस वस्तु का प्रतिबिंब उस काच में

आ जायगा । अगर काच ही मैला होगा तो फोटो नहीं आएगा । अतएव अगर और कुछ न बन पडे तो हृदय को काच की तरह स्वच्छ रक्खो । इससे परमात्मदर्शन हो सकेगा ।

६–द्रौपदी की विदाई

शुभ मुहूर्त में द्रौपदी का विवाह हुआ । द्रुपद और कृष्ण ने पांडवो को खूब सम्पत्ति दहेज मे दी । द्रौपदी अन्य रानियों के साथ अपनी सास कुन्ती के पास गई ।

द्रौपदी के परिवार वालों को और खास तौर पर उसकी माता को विदाई के समय कितना दु.ख हुआ होगा, यह बात भुक्तभोगी गृहस्थ ही समझ सकते हैं । लडकी की विदाई का करुण दृश्य देखा नही जाता । कन्या का वियोग हृदय को हिला देता है । साधारण घरो में भी कन्या की विदाई के समय कोलाहल मच जाता है तो राजकुमारी द्रौपदी की विदाई का किन शब्दो मे वर्णन किया जा सकता है ।

द्रौपदी की माता ने द्रौपदी को दिलासा देते हुए कहा— बेटी, जैसे मैं अपने पिता का घर छोड कर यहां आई हूं, उसी प्रकार तू भी घर छोडकर ससुराल जा रही है । यह तो लोक की परम्परा ही है । इसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता । तेरी जैसी पुत्री पाकर मैं निहाल हुई हू, अब अपने कुल की लाज रखना तेरे हाथ की बात है । तूने मेरे स्तनों का दूध पिया है, इसलिए ऐसा कोई काम मत करना जिससे मेरा मुह काला हो । अपने जीवन मे कोई भी अपवाद न लगने देना ।

अच्छी माता ऐसी ही शिक्षा देगी । वह बतलाएगी कि तुझे पति, सास, ससुर और नौकरो-चाकरों के साथ कैसा शिष्टतापूर्ण

व्यवहार करना चाहिए'। कोई समझदार माता अपनी लड़की को यह नही समझाएगी कि—अब तुम रानी हो सो मनमानी करना।

खेद है कि आजकल की अशिक्षित माताएं अपनी पुत्रियों को उलटा पाठ पढाती हुई कहती हैं—देख बेटी, हमने तुझे बेचा नहीं है। तेरे बदले मे कुछ भी लिया नही है। इसलिए सासू आदि से बने तो ठीक, नही तो जामाता को अलग दुकान करा देंगे।' ऐसी शिक्षा गीतो द्वारा भी दी जाती है। आरम्भ में ही इस प्रकार के बुरे सस्कार डालने के कारण लडकी का भविष्य बुरी तरह बिगड जाता है।

द्रौपदी की माता ने उसे सीख दी कि—बेटी, अपने घर की आग बाहर मत निकालना। इसी तरह बाहर को आग घर में मत लाना। जो देने लायक हो उसे देना, जो न देने योग्य हो उसे न देना। इसी प्रकार दोनो को देना तथा घर की अग्नि आदि देवों की पूजा करना।

यह बातें आलकारिक ढग से कही गई हैं। घर की आग बाहर मत निकालना और बाहर की आग घर में मत लाना, इस कथन का अर्थ यह है कि कदाचित् घर में क्लेश हो जाय तो दूसरों के आगे इसका रोना मत रोना। उसे बाहर प्रकट नहीं करना बल्कि घर मे ही बुझा देना। इसी प्रकार बाहर की लडाई घर में न आने देना। दूसरो की देखादेखी अपने घर में कोई बुराई न आने देना।

आज भारतीय बाहर की—यूरोप की आग अपने घरों में ले आये हैं। यूरोप की अनेक बुराइया आज भारत में घर कर रही हैं। इसी कारण भारतीय जीवन मलीन और दुखमय बनता जा रहा है। भारत की उज्जवल संस्कृति नष्ट हो रही है और उनका स्थान एक ऐसी सस्कृति ले रही है जिसके गर्भ मे घोर अशांति, घोर असतोष, घोर नास्तिकता और विनाश ही भरा हुआ है।

द्रौपदी को मिली हुई शिक्षा भारतीयों के लिए इस समय बहुत उपयोगी साबित हो सकती है।

'देने योग्य को देना' का अर्थ यह है कि व्यवहार में किसी को उधार देना ही पडता है। ऐसा उधार देते समय आने पर या किसी और प्रकार से देने का समय आने पर जो देने योग्य हो उसे अवश्य देना। किन्तु उसे देना जो उधार लेकर भाग न जाय और न लडने पर ही आमादा हो जाय।

'न देने योग्य को न देना' इसका आशय यह है कि जो लेकर देना ही न सीखा हो उसे मत देना। यह हमारी वस्तु वापिस लौटा देगा या नहीं, यह बात सोच-विचार कर ही किसी को देना और जो दी हुई वस्तु का दुरुपयोग करता हो उसे भी मत देना। जैसे—बालक ने चाकू मांगा और उसे दे दिया तो वह अपना हाथ काट लेगा। रोष में आकर किसी ने अफीम मागी और उसे दे दी तो वह आत्महत्या कर लेगा। इसलिए देने से पहले सुपात्र-कुपात्र का ध्यान रखना। न देने से तो ऐसे को थोडा ही दुःख होगा मगर दे देने से घोर अनर्थ हो सकता है और फजीता अलग होता है।

कुछ लोगों की ऐसी आदत होती है कि वस्तु मौजूद रहते भी झूठ बोलते हैं—कह देते हैं मेरे पास नही है। इस प्रकार झूठ बोल कर कुपात्र बनने की क्या आवश्यकता है? देने का मन न हो तो सच-सच क्यों नहीं कह देते कि हम देना नही चाहते! अपनी वस्तु के लिए जो कुपात्र है उसे कुपात्र न कह कर स्वय झूठ बोलने के कारण कुपात्र बनना अच्छी बात नही है। हा, योग्य को न देना और अयोग्य को देना मूर्खता है।

इससे आगे कहा है - योग्य और अयोग्य दोनों को देना इसका अर्थ यह है कि कोई भूखा आदमी रोटी पाने की आशा से तुम्हारे द्वार पर आवे तो उस समय योग्य-अयोग्य का विचार न

करना। उसे रोटी दे देना ही धर्म है। करुणा के समय कुपात्र-सुपात्र का विचार मत करना। करुणा करके सभी को देना। नीति मे कहा है—

> अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते।
> स तस्मै दुष्कृत दत्वा पुण्यमादाय गच्छति॥

जिसके घर से अतिथि—अभ्यागत निराश होकर लौट जाता है, वह पाप का भागी होता है।

ग्रामों में कई-एक भद्र लोग ऐसे देखे गये हैं कि उनके घर से रोटी न ली जाय तो वे रोने लगते हैं। उन्हे यह विचार तो होता नहीं कि साधु सदोष आहार नही लेते—निर्दोष ही लेते हैं। वे केवल यही जानते हैं कि साधु हमारे घर आये और खाली हाथ लौट गये। यही विचार कर वे रोने लगते हैं। जो अतिथि कष्ट का मारा आपके द्वार पर आया है वह दया पाने की आशा से आया है। उसे निराश कर देना उचित नहीं है। अगर आप निराश करेंगी तो नीतिकार के कथनानुसार उसका पाप आपने ले लिया है और आपका पुण्य उसने ले लिया है।

पुण्य—पाप का लेन-देन कैसे हो सकता है? इसका उत्तर यह है—वह आपको पुण्यवान् समझ कर आपके पास आया था। आपने उसे गालियां सुनाई, पीट दिया या कटुक वचन सुना दिये। उसने दीनता एव नम्रता के साथ आप से याचना की और आपने उसे झिड़क दिया। तो वह अतिथि अपनी नम्रता से पुण्य लेकर जाता है और आपको पापी बना जाता है।

द्रौपदी की माता ने उसे इस प्रकार की शिक्षा दी। वहा जो दूसरी स्त्रियां मौजूद थीं वे समझती थी कि महारानी हम सभी को शिक्षा दे रही हैं। द्रौपदी की माता तथा अन्य सभी कुटुम्बी-जनों की आँखें आंसुओं से भरी हुई थीं।

जब कन्या पीहर से ससुराल जाती है तो पीहर को देख

करके वह सोचती है—मैं इस घर के आँगन में खेली हूँ और आज यही घर छूट रहा है। अदृष्ट मुझे और कहीं ले जा रहा है। जीवन मे जिन्हे अपना माना था वे पराये बनते जा रहे हैं और जिन्हें देखा नही, जाना नही, उन्हें आत्मीय बनाना होगा! स्त्री जीवन की यह कैसी विचित्रता है! मानो एक ही जीवन में स्त्री के दो, एक दूसरे से भिन्न जीवन हो जाते हैं। क्षण भर में 'ममता, का क्षेत्र बदल जाता है।'

तत्व की दृष्टि से देखा जाय तो जो बात स्त्री के जीवन में घटित होती है, यह मनुष्य मात्र के जीवन में यहा तक की जीवमात्र के जीवन में घटित होती है। अन्तर है तो केवल यही कि स्त्री जीवन की परिवर्त्तन घटना आंखों के सामने होती है, जब कि दूसरों की आखों से ओझल होती है इतना अन्तर होने पर भी असली चीज दोनो जगह समान है। इसे कोई इकार नहीं कर सकता। आज जिन्हें तुम अपना मान रहे हो, वे क्या अनादि काल से तुम्हारे हैं? और अनन्त काल तक तुम्हारे रहेंगे।

भक्तजन कहते हैं—हम भी कन्या हैं। ससार हमारा ससुराल है और ईश्वर का घर पीहर है। कर्म की प्रेरणा से आत्मा को ससार में निवास करना पडता है। जैसे कन्या ससुराल मे आकर अपने पीहर को नही भूलती, उसी प्रकार ससार में रह कर भी भगवान को भूलना उचित नहीं है।

कुन्ती, माद्री और गांधारी को यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि पुत्रवधू द्रौपदी आ रही है। उन सब को विदित हो चुका है कि द्रौपदी कोई साधारण वधू नहीं है। स्वयवर मे उसकी चेष्टाएँ देखकर उन्होंने उसका महत्व जान लिया है। इस कारण पुत्रवधू के आगमन को जान कर उनकी प्रसन्नता का पार न रहा। दूसरी ओर द्रौपदी की माता के दिल की वेदना को कौन जान सकता है? सर्वज्ञ उस वेदना को जान सकते हैं पर अनुभव वह

नहीं करते । अनुभव तो वही स्त्री कर सकती है जो स्वय माता हो और जिसने अपनी प्राणप्यारी कन्या को विदाई दी हो ! द्रौपदी की माता सोचने लगी—जिसके लिए भारत के बड़े-बड़े राजा दौड कर आये थे, वही आज जा रही है । यह घर सूना हो रहा है और साथ ही मेरा हृदय भी ।

द्रौपदी तथा उसकी माता आदि के आने पर कुन्ती आदि खडी हो गई। सब का यथायोग्य आदर-सत्कार किया, भेंट की । उचित आसन दिया । तब कुन्ती ने द्रौपदी की माता से कहा—महारानीजी, आपने अपनी कन्यारूपी लक्ष्मी से हमे खरीद लिया है। आपकी उदारता की कितनी सराहना की जाय जो कन्या और धन-सम्पत्ति लेकर आप स्वय देने के लिए पधारी हैं । आपने हमें बहुत सम्मानित किया है । बहुत उपकृत किया है ।

द्रौपदी की माता ने कहा—समधिनजी, कन्या का दान करना कोई ऐहसान की बात नही है । यह तो समाज का अटल विधान है । ऐहसान तो आपका है, जो आपने इसे स्वीकार किया है । देना तो मेरे लिए अनिवार्य था मगर लेना आपके लिए अनिवार्य नही था । फिर भी आपने अनुग्रह करके मेरी कन्या को ग्रहण कर लिया है । यह मेरे ऊपर आपका उपकार है ।

कुन्ती—आप बहुत गुणवती हैं, इसी से आप ऐसा कहती है । नही तो द्रौपदी जैसी लक्ष्मी को पाने के लिए कौन लालायित नहीं होता ?

द्रौपदी की माता ने द्रौपदी की ओर मुह फेर कर और एक गहरी साँस लेकर कहा—बिटिया ! देख, तू बडभागिनी है कि तुझे ऐसी सास मिली है ।

फिर वह कुन्ती से कहने लगी—आप हमारी बड़ाई न करें । आपने हमे जो दिया है वह कम नहीं है । आपने मेरी लडकी को सुहाग दिया है । स्वयवर-मडप में हमारी लाज रख ली है ।

आप अपने विनीत कुमारों के साथ हमारे यहाँ पधारी। यह सब आपकी कृपा बहुत है। आपके साथ सम्बन्ध होने से अब देव भी हमें छल नहीं सकते—जीत नहीं सकते। आपका वश धन्य है, जिसमें ऐसे-ऐसे वीररत्न उत्पन्न हुए है।

इसके बाद द्रौपदी की माता आदि लौटने को तैयार हुई। फिर नेत्रों के मेघ बरसने लगे। सब के हृदय गदगद् हो गए। अन्त में द्रौपदी सब को प्रणाम करके अपनी सास के पास खड़ी हो गई।

कुन्ती ने द्रौपदी को आशीर्वाद देते हुए कहा—हे पुत्री! हे कुलवधू, तेरा सुहाग अचल रहे। तेरी गोद भरी रहे। तू पाण्डवों के घर वैसी है जैसी हरि के यहां लक्ष्मी, इन्द्र के यहाँ इन्द्राणी और चन्द्र के यहाँ रोहिणी। तुम्हारे पति सार्वभौम शक्ति के विजेता और तुम सदैव उनकी सहायिका रहो। हे वधू! तू मेरे कुल की समस्त सम्पत्ति की स्वामिनी है, परन्तु मेरे घर जो मुनि या दीन दुखी या भिखारी आवें उनके यथायोग्य सत्कार में कमी मत रखना। पुण्य की रक्षा करना और उसे सम्पदा की तरह बढ़ाना।

मेरे घर किसी अतिथि का अनादर न हो। आज से हम तेरे भरोसे है। तू घर के सब छोटे—बड़ों का आशीर्वाद लेना। हे द्रौपदी! ऐसा समय आवे कि तेरे पुत्र हों और वधू तेरे जैसी गुणी हो। जिस प्रकार आज मैं तुझे आशीर्वाद दे रही हूँ, उसी प्रकार तू भी उन्हे आशीर्वाद देना।

बहिनों! कन्या को किस प्रकार विदा देनी चाहिये और नववधू का किस प्रकार स्वागत करके उसे क्या सिखाना चाहिए, यह बात इस प्रकरण से सीखो।

१०– आदर्श भाभी

सीता राम से कहने लगी—नाथ ! आपको राज्य मिल रहा है। इस विषय में गहराई के साथ विचार करने की आवश्यकता है। कम से कम देवरों के सम्बन्ध में तो विचार करना ही चाहिए। अब तक आप चारों भाई साथ रहते और खाते-पीते थे। लेकिन अब जो हो रहा है, उससे बराबरी मिट जाएगी। यह भ्रातृभाव में फर्क डालने वाली व्यवस्था है। इसलिए मैं कहती हूँ कि आपको मिलने वाला राज्य कहीं सयोग से वियोग में तो नहीं डाल देगा ?

सीता की बात सुनकर राम बोने—वाह सीता ! मेरे दिल मे जो बात आ रही थी वही तुमने भी कही है ! मैं भी इसी समस्या पर विचार कर रहा हूँ।

भिन्न–सा करके कोशलराज
राज देते हैं तुमको आज।
तुम्हें रुचता है वह अधिकार,
राज्य है प्रिये भोग या भार।

सीता कहती है—'मेरे श्वसुर आपको राज्य क्या दे रहे हैं मानो भाईयों को आपस में अलग-अलग कर रहे हैं–जुदाई दे रहे हैं। क्या आपको ऐसा रुचिकर है ? आप उसे चाहते हैं ? आप राज्य को प्रिय वस्तु समझते हैं या भार मानते हैं ?'

सीता की भांति आज की बहिने भी क्या देवरो के विषय में ऐसा सोचती हैं ? राज्य तो बडी चीज है, क्या तुच्छ से तुच्छ वस्तुओ को लेकर ही देवरानी-जेठानी में महाभारत नहीं मच जाता ? भाई-भाई के बीच कलह की वेल नहीं बो देतीं ? क्या जमाना

था वह, जब सीता इस देश में उत्पन्न हुई थी ? सीता जैसी विचारशील सती के प्रताप से यह देश धन्य हो गया है। आज क्या स्थिति है ? किसी कवि ने कहा है—

एक उदर का नीपज्या, जामण जाया वीर।
ओरत का पाले पड्या नहि तरकारी मे सीर॥

बहिनो ! अगर धर्म को जानती हो तो बात का विचार रक्खो कि भाई-भाई मे भेद न पड़ने पावे।

सीता ने राज्य प्राप्ति के समय भी इस बात का विचार किया था। वह राज्य को भार मान रही है। मगर आज क्या भाई और क्या भौजाई, जरा जरा सी बात के लिए छल कपट करते नहीं चूकते।

रामचन्द्र सीता से कहने लगे—प्रिये ! तुम वास्तव में असाधारण स्त्री हो। बड़े भाग्य से मुझे मिली हो। स्त्रियों पर साधारणतया यह दोषारोपण किया जाता है कि वे पुरुष को गिरा देती हैं, पुरुष को ऊर्ध्वगामी नहीं बनने देतीं उसके पख काट डालती हैं, और यहां तक कि पुरुष को नरक में ले जाती हैं। मगर जानकी तुम अपवाद हो। पुरुष की प्रगति में बाधा डालने वाली स्त्रियां और कोई होगी, तुम तो मेरी प्रगति ही हो ! तुम मेरी सच्ची सहायिका हो। जो काम मुझ से अकेले न हो सकता, वह तुम्हारी सहायता से कर सकूंगा।

जानकी ! मैं स्वय राज्य को भार मानता हूँ। वह वास्तव में भार ही है। मैं राज्य पाना दड पाना समझता हूं। अगर वह सौभाग्य की बात समझी जाय तो सिर्फ इसलिए कि राज्य के द्वारा प्रजा की सेवा करने का अवसर मिलता है। जो राजा न होकर भी प्रजा की सेवा कर सकता है, उसे राज्य की आवश्यकता ही क्या है ? सभव है, मेरे सिर पर यह भार अभी न आवे, कदाचित् आया भी तो मैं अपने भाईयो के साथ लेशमात्र भी भेदभाव

नहीं करूंगा। हम जिस प्रकार रहे, उसी प्रकार रहेंगे। अवध का राज्य क्या, इन्द्र का पद भी मुझे अपने भाइयों से अलहदा नहीं कर सकता।

११–बारीक वस्त्र

जो स्त्रियाँ शील को ही नारी का सर्वोत्तम आभूषण समझती हैं, उनके मन में बढ़िया वस्त्र और हीरा मोती के आभूषणों की क्या कीमत हो सकती है; उन्हें इन्द्राणी बना देने का प्रलोभन भी नही गिरा सकता। शील का सिंगार सजने वाली के लिए यह तुच्छ—अति तुच्छ है। सच्ची शीलवती अपने शील का मूल्य देकर कदापि उन्हें लेना नहीं चाहेगी।

और बारीक कपड़े! निर्लज्जता का साक्षात् प्रदर्शन हैं। कुलीन स्त्रियों को यह शोभा नही देते। खेद है कि आजकल बारीक वस्त्रों का चलन बढ गया है। यह प्रथा क्या आप अच्छी समझते हैं!

मगर आज तो यह बडप्पन का चिन्ह बन गया है। जो जितने बड़े घर की स्त्री, उसके उतने ही बारीक वस्त्र। बड़प्पन मानो निर्लज्जता में ही है? क्या बारीक वस्त्र लाज ढक सकते हैं? इन बारीक वस्त्रों की बदौलत भारत की जो दुर्दशा हुई है, उसका बयान नही किया जा सकता।

मोटे कपड़े मजदूरी करना सीखाते हैं और महीन कपड़े मजदूरी करने से मना करते हैं। महीन कपडा पहनने वाली बाई अपना बच्चा लेने में भी सकोच करती है इस डर से कि कही धूल न लग जाय। इस प्रकार बारीक वस्त्रों ने सन्तान-प्रेम भी छुड़ा दिया है।

१२—पति को सीख

एक होशियार वकील भोजन करने बैठा था। इतने मे उसका एक मुवक्किल आया और उसने पच्चास हजार रुपये के नोट वकील के सामने रख दिये। वकील ने अपनी चतुराई का गर्व प्रकट करते हुए अपनी पत्नी की ओर निगाह फेरी। मगर पत्नी मुंह के आगे हाथ लगा कर रुदन कर रही थी। वकील ने रोने का कारण पूछा। कहा—'क्यो अपने घर किस बात की कमी है ? देखो, आज ही पचास हजार आये हैं। मैं कितना होशियार हूं और मेरी कितनी ज्यादा कमाई है, यह सब जानते बूझते भी तुम रो रही हो ?'

वकील की पत्नी ने कहा—मैं तुम्हें देखकर रो रही हूं।

वकील - क्यो मैंने कोई बुरा काम किया है ?

वकील-पत्नी—आपने सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा बनाया है। यह क्या कम खराब काम है ? आप पचास हजार लेकर फूले नहीं समाते, मगर जिसके एक लाख डूब गये और एक लाख घर से देने पडे, उसके दुख का क्या पार होगा ? मुझे नहीं मालूम था कि आप इस प्रकार पाप का पैसा पाकर आनन्द मान रहे हैं।

वकील—हमारा धन्धा ही ऐसा है। ऐसा न करें तो काम कैसे चले ?

पत्नी—आप सत्य को असत्य बनाते हैं, इसके बदले सत्य को सत्य बनाने की वकालात क्यो नही करते ? सच्चा मुकदमा ही लें तो क्या आपका काम नहीं चलेगा ? मैं चाहती हूं कि आप प्रतिज्ञा ले लें भविष्य में कोई भी झूठा मुकदमा आप हाथ में नहीं

लेंगे ।

पत्नी की बात वकील के गले उतर गई । वकील ने प्रतिज्ञा की । उसने अपने मुवक्किल से कहा आप यह रुपया ले जाइए और किसी प्रकार अपने प्रतिवादी को सन्तुष्ट कीजिए । दरअसल आज उसे कितना दुख हो रहा होगा ? आज मैं अपने वाक्चातुर्य से न्यायाधीश के सामने झूठ को सच्चा और सच्चे को झूठा सिद्ध करने में सफल भी हो जाऊँ किन्तु जब परलोक में मुझे पुण्य-पाप का हिसाब देना पडेगा तब क्या उत्तर दूंगा ? कहा भी है :—

होयगो हिसाब तब मुख से न आवे ज्वाब ।
'सुन्दर' कहत लेखा लेगो राई-राई को ॥

वकील की बात सुनकर मुवकिल भी चकित रह गया और कहने लगा—वास्तव में वकील-पत्नी एक सत्यमूर्ति है जिसने पचास हजार को भी ठोकर लगा दी ।

बहिनों, अन्याय के पथ पर चलने वाले पति को इस प्रकार सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करो ।

१३—गर्भवती का कर्त्तव्य

आजकल के अधिकांश नर-नारियों को गर्भ संबधी ज्ञान नहीं होता परन्तु भगवती सूत्र मे इस विषय की चर्चा की गई है । वहाँ यह बतलाया गया है कि—हे गौतम ! माता के आहार पर ही गर्भ के बालक का आहार निर्भर है । माता के उदर में रस-हरणी नालिका होती है । उसके द्वारा माता के आहार से बना रस बालक को पहुंचता है और उसी से बालक के शरीर का निर्माण होता है ।

बहुत सी गर्भवती स्त्रियाँ भाग्य के भरोसे रहती हैं और गर्भ के विषय की जानकारी नही करती । इस अज्ञान के कारण कभी-कभी गर्भस्थ बालक और गर्भवती स्त्री दोनो को हानि उठानी पडती है । बालक को आँखों देखते काटना या मारना तो कोई सहन नही करता पर अज्ञान के कारण बालक की मौत हो जाती है और माता के प्राण सकट में पड जाते हैं यह सहन कर लिया जाता है ।

गौतम स्वामी ने प्रश्न किया है— गर्भ का बालक मल-मूत्र का त्याग भी करता है ? भगवान ने उत्तर दिया है—गर्भ का बालक माता के भोजन मे से रसभाग को ही ग्रहण करता है । उस सार रूप रसभाग को भी इतनी मात्रा में ग्रहण करता है कि उसके शरीर के निर्माण मे ही सारा लग जाता है । गर्भस्थ बालक आहार के खलभाग को लेता ही नहीं है । अतएव उसे मलमूत्र नहीं आता ।

भगवान् के कथन का सार यह है कि गर्भ के बालक का आहार माता के आहार पर ही निर्भर है । माता यदि अत्यधिक खट्टा, मीठा या चरपरा खाएगी तो उससे बालक को हानि पहुचे बिना नही रहेगी । जैसे कैदी का भोजन जेलर के जिम्मे होता है जेलर के देने पर ही कैदी भोजन पा सकता है अन्यथा नही । इस प्रकार पेट रूपी कारागार में रहे हुए बालक रूपी कैदी के भोजन की जिम्मेवारी माता पर है । गर्भस्थ बालक की दया न करने वाले मा—बाप घोर निर्दय है, बालक के घातक हैं । कोई-कोई कहते हैं कि श्रेणिक की रानी धारिणी ने अपने गर्भ की रक्षा की सो यह मोह अनुकम्पा का पाप हुआ । लेकिन धारिणी के विषय में शास्त्र का पाठ है कि धारिणी रानी गर्भ की अनुकम्पा के लिए भय, चिन्ता और मोह नही करती है । क्योंकि क्रोध करने से बालक क्रोधी होता है, भय करने से बालक डरपोक बन जाता है और

मोह करने से लोभी होता है। इसीलिए धारिणी ने सब दुर्गुणों का त्याग कर दिया था। आश्चर्य तो यह है कि अनुकम्पा के विरोधी इन दुर्गुणों के त्याग को भी दुर्गुण कहते हैं ! मोह के त्याग को भी मोह—अनुकम्पा कहने वाले समझदार (!) लोगों को कौन समझा सकता है ?

जो स्त्रियाँ गर्भवती होकर भी भोग का त्याग नहीं करती हैं वे अपने पैरों पर आप ही कुल्हाडी मारती हैं। इस नीचता से बढकर और कोई नीचता नही हो सकती। नैतिक दृष्टि से ऐसा करना घोर पाप है और वैद्यक की दृष्टि से अत्यन्त अहितकर है। पतिव्रता का अर्थ यह नही है कि वह पति की ऐसी आज्ञा का पालन करके गर्भस्थ बालक की रक्षा न करे। माता को ऐसे अवसर पर सिहनी बनना चाहिए, शक्ति बनना चाहिए और ब्रह्मचर्य का पालन करके बालक की रक्षा करनी चाहिए।

गर्भवती स्त्री को भूखा रहने का धर्म नही बतलाया गया है। किसी शास्त्र में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता कि किसी गर्भवती स्त्री ने अनशन तप किया था। जब तक बालक का आहार माता के आहार पर निर्भर है तब तक माता को यह अधिकार नही कि वह उपवास करे। दया मूल गुण है और उपवास उत्तर गुण है। मूल गुण का घात करके उत्तर गुण की क्रिया करना ठीक नहीं।

१४—पुत्री—पुत्र

आज तो पुत्र का जन्म होने पर हर्ष और पुत्री का जन्म होने पर विषाद अनुभव किया जाता है, पर यह लोगों की नासमझी है। पुत्री के बिना जगत् स्थिर ही कैसे रह सकता है ? अगर किसी के भी घर पुत्री का जन्म न हो तो पुत्र क्या आकाश

से टपकने लगेंगे ? सामाजिक व्यवस्था की विषमता के कारण पुत्र-पुत्री में इतना अन्तर पड गया है । पर यह समाज का दूषित पक्षपात है । जिस पेट से पुत्र का जन्म होता है, उसी पेट से पुत्री का । फिर पुत्री को हीन क्यों समझा जाता है ? सांसारिक स्वार्थ के वश में होकर औरो की तो बात क्या, पुत्री को जन्म देने वाली माता भी पुत्री के जन्म से उदास हो जाती है ! ऐसी बहिनों से पूछना चाहिए कि क्या तुम स्त्री नही हो ? स्त्री होकर भी स्त्री जाति के प्रति अभाव रखना कितनी जघन्य मनोवृत्ति है ? कई स्त्रियो के विषय में सुना गया है कि वे पुत्र होने पर खाने-पीने की जैसी चिन्ता रखती हैं वैसी पुत्री के होने पर नही रखती । जहाँ ऐसे तुच्छ विचार हो, सन्तान के अच्छे होने की क्या आशा की जा सकती है और सस्कार का कल्याण किस प्रका हो सकता है ?

सुवचन

स्त्रियों को या तो अविवाहित रहकर परमात्मा की भावना में रहना चाहिए या फिर ऐसे कुलदीपक को जन्म देना चाहिए । जो कुल को यशस्वी और प्रशसा का पात्र बना दे । केवल भोग करना स्त्री का कर्त्तव्य नही है ।

स्त्री की शक्ति साधारण नही होती । लोग 'सीता राम' कहते हैं, राम सीता नहीं कहते । पहले सीता का नाम फिर राम का नाम लिया जाता है । इसी प्रकार 'राधा–कृष्ण' कहने मे पहले राधा और फिर कृष्ण का नाम लिया जाता है । सीता और राधा स्त्रियाँ ही थी । तारा जैसी रानी की बदोलत ही आज भी हरिश्चन्द्र का नाम घर-घर में प्रसिद्ध है । इन शक्तियों की सहा-

यता से ही उन लोगों ने अलौकिक कार्य कर दिखलाए हैं। जैसे शरीर का आधा भाग वेकार हो जाने पर सारा ही शरीर वेकार हो जाता है, वैसी ही नारी की शक्ति के अभाव में नर की शक्ति काम नहीं करती।

'वही पत्नी श्रेष्ठ गिनी जाती है जो पति में अनुरक्त रहे और अपने कुटुम्बीजनों को अपने आदर्श व्यवहारों से आकर्षित कर ले।'

आर्यबालाओं में लज्जा का गुण होना स्वाभाविक है। पर लज्जा का अर्थ घूँघट नही है। लज्जा घूघट में नही, नेत्रो मे निवास करती है। घूँघट मारने वालियों में ही अगर लज्जा होती तो वे ऐसे बारीक वस्त्र ही क्यों पहनती जिसमें से सारा शरीर दिखाई देता हो। महीन वस्त्र पहन कर घूँघट निकालना तो एक प्रकार का छल है कि कपडे भी पहनें रहे और शरीर कुछ छिपा भी न रहे! इन महीन कपड़ों में लज्जा कहां?

धर्मी पुरुष के साथ विवाह करने की इच्छा तो स्त्री मात्र की रहती है लेकिन स्वय धर्मशीला बनने की भावना विरली स्त्री में ही होती है, और फिर धर्म का आचरण करने वाली तो हजारों-लाखों में भी शायद कोई मिल सकती है। पति कदाचित पापी भी हो लेकिन पत्नी अगर अपने धर्म का पालन करती है तो उसका पाला हुआ धर्म ही उसके काम आता है। पति के पाप से पत्नी को नरक नहीं मिलता। अतएव हमें दूसरे की ओर न देखकर अपने धर्म का ही पालन करना चाहिए।

वहिनों! तुम्हें जितनी चिन्ता अपने गहनों की है उतनी इन गहनो का आनन्द उठाने वाली आत्मा की है? तुम्हे गहनों का जितना ध्यान रहता है, कम से कम उतना ध्यान अपनी आत्मा का रहता है? आभूषणो को ठेस न लगने के लिए जितनी साव-धानी रखती हो उतनी आत्मधर्म को ठेस न लगने देने के लिए भी

सावधानी रखती हो !

कहाँ हैं ऐसी देवियां जो अपने बालक को मनुष्य के रूप मे देव-दिव्य विचार वाला, दिव्य शक्तिशाली—बना सकें ? महिला वर्ग की स्थिति अत्यन्त विचारणीय है। जब तक महिलाओं का सुधार नही होगा, तब तक किसी भी प्रकार का सुधार ठीक तरह नही हो सकता। आखिर को मनुष्य के जीवन का निर्माण बहुत कुछ माता के हाथ में ही है। माता ही बालक की आद्य और प्रधान शिक्षिका है। माता बालक के शरीर की ही जननी नही, वरन् बालक के सस्कारों की और व्यक्तित्व की भी जननी है, अतएव बालकों के सुधार के लिए पहले माताओं के सुधार की आवश्यकता है।

पुरुष स्त्रियो को अबला कहते हैं। स्त्रियां भी अपने को अबला मानने लगी हैं। लेकिन स्त्रियो को अबला कहने वाला पुरुष कितना सबल है ? दूसरो को अबला बनाने वाला स्वय सबल नहीं रह सकता। जो वास्तव मे सबल होगा वह दूसरों को निर्बल बनायेगा।

महिलावर्ग के प्रति पुरुषवर्ग ने जो व्यवहार किया उसका फल पुरुषवर्ग को भी भोगना पडा। महिलाओ को, जो साक्षात् शक्ति स्वरुपिणी हैं, अबला बनाने के अभिशाप में पुरुषवर्ग स्वय अबल बन गये। सियारनी से कभी सिंह उत्पन्न होते देखे गये हैं ? नहीं। तो फिर अबला से सबल सपूत किस प्रकार उत्पन्न हो सकते हैं ?

वही पत्नी योग्य कहलाती है जो स्वयं चाहे वीर न हो, युद्ध में लड़ने न जावे, पर वीर सन्तान उत्पन्न कर जो पति को देखकर सभी कुछ भूल जावे और पति जिसे देख कर सब भूल जावे। दोनों एक दूसरे को देखकर प्रसन्न हों। पति जो कार्य करे उसके लिए यह समझे कि मेरा आधा अंग कर रहा है।

१३

नारी-जीवन के उच्चतर आदर्श

१—गांधारी का गंभीर त्याग

शास्त्रों मे पत्नी को 'धर्मसहायिका' कहा है। अगर काम-सहायिका ही होती तो उसे धर्मसहायिका कहने की क्या आवश्यकता थी? जैसे दवा रोग मिटाने को खाई जाती है उसी प्रकार विवाह-धर्म की सहायता करने और काम वासना को संयत करने के लिए किया जाता है। इससे विपरीत, जो पत्नी को काम-क्रीड़ा की सामग्री समझता है, उसकी गति विचित्रवीर्य के समान होती है। अतिभोग के कारण विचित्रवीर्य की मृत्यु हो गई और राज्य का भार फिर भीष्म के कन्धो पर आ पडा।

विचित्रवीर्य के लडके पाण्डु का विवाह कुन्ती के साथ हुआ। धृतराष्ट्र अन्धे थे। वह जब युवावस्था में आये तो भीष्म ने जान लिया कि यह ब्रह्मचर्य पालन में समर्थ नही है। यह सोचकर उन्होंने धृतराष्ट्र का विवाह कर देने का विचार किया। उन्हें मालूम था कि गाधार देश के महाराजा सबल की कन्या गांधारी सभी तरह से योग्य है। भीष्म ने सबल के पास दूत भेजकर कहलाया—भीष्म ने धृतराष्ट्र के लिए आपकी कन्या गांधारी की मंगनी की है।

महाराजा पशोपेश मे पड गए। सोचने लगे—क्या करना चाहिए? क्या अन्धे को अपनी कन्या दे दू? यह नहीं हो सकता। भीष्म कितने ही महान पुरुष हो, मैं अपनी कन्या नहीं दे सकता। साधारण आदमी भी अन्धे वर को अपनी कन्या नहीं देता तो मैं राजा होकर कैसे दे सकता हूँ?

सबल ने अपने लडके शकुनि से पूछा—थोडे दिनो बाद राज्य का सारा भार तुम्हारे सिर आने वाला है। इसलिए तुम बतलाओ कि इस विषय मे क्या करना उचित है?

शकुनि ने कहा—अपने बलाबल का विचार करते हुए गांधारी का विवाह धृतराष्ट्र के साथ कर देना ही उचित है। अपने देश पर विदेशियों और विधर्मियों के आक्रमण होते रहते हैं। यह सम्बन्ध होने से कुरुवश अपना सहायक बनेगा और कुरुवश की धाक से बिना युद्ध ही देश की रक्षा हो जाएगी। यह तो कन्या ही देनी पड रही हैं, अवसर आने पर तो देश की रक्षा के लिए पुत्र का भी रक्त देना पडता है।

सबल—सग्राम में पुत्र का रक्त देना दूसरी बात है और कन्या के अधिकार को लूट कर देश की रक्षा चाहना दूसरी बात है। राज्य-रक्षा के लोभ मे पडकर कन्या का अधिकार छीन लेना क्या क्षत्रियों के लिए उचित कहा जा सकता है? गांधारी स्वेच्छा से शत्रु के साथ युद्ध करके अपना रक्त बहा दे तो हर्ज नहीं है, परन्तु कन्या के अधिकार का बलात् अपहरण करके उस पर अन्याय करना उचित नहीं है। गांधारी की इच्छा के बिना उसका विवाह नही करूंगा। ऐसा करने पर चाहे राज्य चला ही क्यों न जाय! हा गांधारी स्वेच्छा से अगर अन्धे पति की सेवा करना चाहे तो बात दूसरी है। मैं उसे रोकूंगा भी नहीं। लेकिन उसकी इच्छा के विरुद्ध अन्धे के साथ उसका विवाह नहीं कर सकता।

सभा में उपस्थित सभी लोगो ने राजा के विचार का समर्थन किया और कहा—आप राजा होकर भी अगर कन्या के अधिकार को लूट लेंगे तो दूसरे लोग आपके चरित का न जाने किस प्रकार दुरुपयोग करेंगे।

गांधारी राजकुमारी थी, युवती थी, सुन्दरी थी और गुणवती थी। पाण्डवचरित के अनुसार वह ऐसी सती थी कि किसी के शरीर को देखकर ही वज्रमय बना सकती थी। ऐसी गांधारी की मंगनी अन्धे पुरुष के लिए आई है। इस समय गांधारी का क्या कर्त्तव्य है? अगर पिता सगाई कर देते तो गांधारी के सामने विचारने के लिए कोई समस्या ही न रहती, मगर पिता ने इस सम्बन्ध को स्वीकार करने या न करने का उत्तरदायित्व स्वयं उसी पर छोड़ दिया है। अब गांधारी को ही अपने भविष्य का निर्णय करना है।

राजसभा में पूर्वोक्त निर्णय हो गया तो राजसभा में रहने वाली दासी गांधारी के पास दौड़ी आई। उस समय गांधारी अपनी सखियों के साथ महल में एक कमरे मे बैठी हास्य-विनोद कर रही थी।

दासी दौडती वहाँ आ पहुची। उसे उदास और घबराई देखकर गांधारी ने कारण पूछा—क्यो आज क्या समाचार है? उदास क्यों है?

दासी—गजब हुआ राजकुमारी!

गांधारी—क्या गजब हुआ? पिता और भाई तो सकुशल हैं?

दासी—और सब के लिए तो कुशलमगल है, आप ही के लिए अनर्थ हुआ है!

गांधारी ने मुस्करा कर कहा—मैं तो देख आनन्द मे बैठी हू। मेरे लिए अनर्थ हुआ और मैं मजे में हूं और तू घबरा रही

है !

दासी—एक ऐसी बात सुनकर आई हूँ कि आपके हितू को दुख हुए बिना नही रह सकता । आप सुनेंगी तो आपको भी दुख होगा ।

गांधारी—मुझे विश्वास नही होता कि मैं अपने सम्बन्ध में कोई बात सुनकर तेरी तरह घबरा उठूंगी । मैं अच्छी तरह जानती हू कि घबराहट किसी भी मुसीबत की दवा नहीं है । वह स्वय एक मुसीबत है और मुसीबत बढाने वाली है । खैर, बतला तो सही बात क्या है ?

दासी—कुरुवशी राजा शान्तनु के पौत्र और विचित्रवीर्य के अन्धे पुत्र धृतराष्ट्र के लिए तुम्हारी याचना करने के लिए भीष्म ने दूत भेजा है । इस विषय में राजसभा में गरमागरम बातचीत हुई है ।

गाधारी—यह तो साधारण बात है । जिसके यहां जो चीज होती है, मांगने वाले आते ही हैं । अच्छा, आगे क्या हुआ सो बतला ।

दासी—महाराजा ने कहा कि मैं अधे के साथ गांधारी का विवाह नही करूगा । राजकुमार ने कहा कि अपना बल बढ़ाने के लिए धृतराष्ट्र के साथ गांधारी का विवाह कर देना चाहिये ।

गांधारी—फिर ? विवाह निश्चित हो गया ?

दासी—नहीं, अभी कोई निश्चय नहीं हुआ है । इसी से मैं आपको सूचना देने आई हूं, । राजकुमारी, चेत जाओ । आपकी रक्षा आपके हाथ में है । महाराजा ने आपकी इच्छा पर निर्णय छोड दिया है । पुरोहित आपकी सम्मति जानने आएगे । अगर आप जन्म भर के दुखो से बचना चाहे तो किसी के कहने में मत लगना । दिल की बात साफ–साफ कह देना । सकोच में पडी तो

मुसीवत मे पडी ।

इसी वीच मदनरेखा नामक सखी ने कहा—बडी सयानी वन रही तू, जो राजकुमारी को यह उपदेश दे रही है ! क्या यह इतना भी नही समझती कि अन्धा पति जिंदगी भर की मुसीबत है ! जब राजकुमारी को स्वय निर्णय करना है तो फिर घबराहट की वात ही क्या रही ? जो वात अवोध कन्या भी समझती है वह क्या राजकुमारी नही समझेंगी ?

चित्रलेखा नामक सखी गौर से राजकुमारी के चेहरे की ओर देख रही थी । चेहरे पर कुछ भी मनोभाव न पाकर वह वोली—सखी, आप किस विचार मे हैं ? यह तो नहीं सोच रही हो कि पति अधा हो तो भले रहे, कुरुवश की राजरानी वनने का गौरव तो मिलेगा ! इस लोभ में मत पड जाना । राजरानी वनना तो आपका जन्मसिद्ध अधिकार है ही । जहाँ जाओगी, राजरानी ही वनोगी । लेकिन धृतराष्ट्र जन्माध है, तुम लोभान्ध हो जाओगी तो जोड़ी अच्छी वनेगी ! पर बहिन, जान-बूझ कर कोई अन्धा नही वन सकता । पहली वार ही ऐसा दो टूक जवाब देना कि पुरोहितजी- पुरोहिताई करना भूल जाएँ और उलटे पैरों भाग खडे हो ।

अपनी सखियों की सम्मति सुनकर और यह समझकर कि इनकी वुद्धि एव विचार शक्ति इतनी ही उथली है, गाधारी थोडा मुस्किराई । उसने कहा— सखियों, तुम मेरी भलाई सोचकर ही सम्मति दे रही हो, इसमें कोई सदेह नही । पर क्या तुम्हें मालूम है कि मेरा जन्म किस उद्देश्य के लिए हुआ है ?

एक सखी ने उत्तर दिया—वचपन से साथ रहती हैं तो जानती क्यों नहीं ? आपका जन्म इसलिए हुआ है कि आप किसी सुन्दर और शूरवीर राजा की अर्धांगिनी बने, राजकुमार पुत्र को जन्म दें, राजकीय सुख भोगें और राजमाता का गौरव पावें ।

गांधारी—सखी, यह सब तो जीवन में साधारणतया होता ही है, पर जीवन का उद्देश्य यह नहीं। तुम इतना ही समझती हो, इससे आगे की नहीं सोचती। मैं सोचती हूं कि मेरा जन्म जगत् का कोई कल्याणकारी कार्य करने के लिए हुआ है। यह जीवन बिजली की चमक के समान क्षणभंगुर है—कौन जानता है कब है और कब नही ? अतएव इसके सहारे कोई विशिष्ट कार्य कर लेना चाहिए, जिससे दूसरों का कल्याण हो।

सखी—तो क्या आप अभी से वैरागिनी बनेंगी ? संयम ग्रहण करेंगी।

गांधारी—संयम और वैराग्य का उपहास मत करो। जिसमें संयम धारण करने का सामर्थ्य हो और जो संयम ग्रहण कर ले वह तो सदा वन्दनीय है। अभी मुझ में इतनी शक्ति नहीं है। मेरी अन्तरात्मा अभी संयम लेने की साक्षी नही देती। अभी मुझ में पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने की क्षमता नही जान पडती।

चित्रलेखा—जब ब्रह्मचर्य नहीं पालना है और विवाह करना ही है तो क्या सूझता पति नहीं मिलेगा ? अंधे पति को वरण करने की क्या आवश्यकता है ?

गांधारी—मेरा विवाह भोग के लिए ही नहीं, धर्म के लिए होगा। मैं पतिसेवा के मार्ग से परमात्मा के समीप पहुंचना चाहती हूं।

मदन०—पतिव्रतधर्म का पालन करना तो उचित है। आप दुराचार नहीं करेंगी, यह भी हमे मालूम है। पर अंधे को पति बनाने से क्या लाभ है ? आपका यह सौन्दर्य और शृंगार निरर्थक नहीं हो जायगा।

गांधारी—सखी तुम वास्तविक बात तक नही पहुंचती। शृंगार पतिरंजन के लिए होता है, लेकिन मेरी मांग अंधे पति के लिए आई है। अतएव मेरा शृंगार पति के लिए नहीं परमेश्वर

के लिए होगा। शृंगार का अर्थ शरीर को सजाना नहीं है। वाह्य शृगार पति-रजन के लिए किया जाता है, लेकिन मुझे ऐसा शृगार करने की आवश्यकता ही नही रहेगी। असली की कमी होने पर ही नकली चीज का आश्रय लिया जाता है। सेवा में कमी होने पर सिगार का सहारा लिया जाता है। लेकिन मेरा सिगार पतिसेवा ही होगा। ऐसा करके ही मैं आत्म-सतोष पाऊगी और पत्नी का कर्त्तव्य स्त्रियों को समझाऊगी। अतएव पति अधा है या सूझता, इस बात की मुझे कोई चिन्ता नहीं। पुरोहितजी के आने पर मैं विवाह की स्वीकृती दे दूगी। जगत् को स्त्री का वास्तविक कर्त्तव्य वतलाने का सुअवसर मुझे प्राप्त होगा।

गाधारी का विचार जानकर उसकी सखिया चक्कर मे पड गई। वह आपस में कहने लगी—राजकुमारी को क्या सूझा है! वह अधे के साथ विवाह करने को तैयार हो रही हैं, यह बड़ा अनर्थ होगा।

इसी समय राजपुरोहित आ पहुचे। गांधारी ने पुरोहित का यथायोग्य सत्कार किया।

गांधारी की शिष्टता और विनम्रता देख पुरोहित गहरे विचार में पड गया। सोचने लगा—यह सुकुमार फूल क्या अधे देवता पर चढाने योग्य है? कैसे इसके सामने प्रस्ताव किया जाय! फिर भी हृदय कठिन करके पुरोहित ने कहा—राजकुमारी! आज एक विशेष कार्य से आया हूँ। तुम्हारी सम्मति लेना आवश्यक है।

गांधारी—कहिए न, सकोच क्यो कर रहे हैं?

पुरोहितजी—अधे धृतराष्ट्र के लिए आपकी सगाई आई है। इस सम्बन्ध में अतिम निर्णय का भार आप पर छोड़ दिया गया है। महाराज ने आपकी सम्मति लेने मुझे भेजा है।

पुरोहितजी की बात सुनकर गांधारी हल्की मुस्किराने लगी पर बोली नहीं। चित्रलेखा ने कहा—पुरोहितजी ! राजसभा की सब बातें राजकुमारी सुन चुकी है। उन्होंने अंधे धृतराष्ट्र को पति बनाना स्वीकार कर लिया है आप वृद्धि हैं, इसलिए कहना नहीं चाहती।

पुरोहित को आश्चर्य हुआ। उसने कहा—आर्य जाति में विवाह जीवन भर का सौदा माना जाता है। जीवन भर का सुख दुख विवाह के पतले सूत्र पर ही अवलंबित है, विवाह शारीरिक ही नही वरन् मानसिक सम्बन्ध भी है और मानसिक सम्बन्ध की यथार्थता तथा घनिष्टता में ही विवाह की पवित्रता और उज्जवलता है। इस तथ्य पर ध्यान रखते हुए इस विषय में राजकुमारी को मैं पुन. विचार करने के लिए कहता हूँ। तुम सब भी उन्हें सम्मति दे सकती हो।'

गाधारी भली-भांति जानती थी कि अन्धे के साथ मुझे जीवन भर का सम्बन्ध जोडना है। उसे अन्धे के साथ विवाह करने से इन्कार कर देने की स्वाधीनता थी। सखियों ने उसे समझाने का प्रयत्न भी किया। गाधारी युवती है और सासारिक आमोद-प्रमोद की भावनाए इस उम्र मे सहज ही लहराती हैं। लेकिन गांधारी मानो जन्म की योगिनी है। भोगोपभोग की आकांक्षा उसके मन मे उदित ही नहीं। उसने सोचा—दुष्टों द्वारा पिता सदा सताये जाते हैं और इस कारण पिताजी की शक्ति क्षीण हो रही है। यदि मैं उनके लिए औषध रूप बन सकू तो क्या हर्ज है ? मुझे इससे अधिक और क्या चाहिए ? यद्यपि इस सम्बन्ध के कारण पिताजी को लाभ है फिर भी उन्होंने इसके निर्णय का भार मेरे ऊपर रक्खा है, यह पिताजी की कृपा है।

गांधारी को उदारता की यह शिक्षा कहाँ मिली थी ?

किसने उसे आत्मोत्सर्ग का यह सुनहरा पाठ सिखाया था ! अपने पिता और भ्राता की भलाई के लिए यौवन की उन्मादभरी तरंगों के बीच चट्टान की भांति स्थिर रहने की, अपने स्वर्णिम सपनों के हरे-भरे उद्यान को अपने हाथों उखाड फेंकने की, अपनी कोमल कल्पनाओं का बाजार लुटा देने की और सर्वसाधारण के माने हुए सासारिक सुखों को शून्य में परिणत कर देने की सुशिक्षा कौन जाने गांधारी ने कहां पाई थी ! आज का महिला समाज इस त्याग के महत्व को समझ नहीं सकता। जहां व्यक्तिगत और वर्गगत स्वार्थों के लिए सघर्ष छिडे रहते हैं उस दुनिया को क्या पता है कि गाधारी के त्याग का मूल्य क्या है ? आजकल की लडकियां भले ही बडे-बडे पोथे पढ सकती हो पर पोथे पढ़ लेना ही क्या सुशिक्षा है ? जो शिक्षा सुसस्कार नहीं उत्पन्न करती उसे सुशिक्षा नही कह सकते। आज की शिक्षा प्रणाली में मस्तिष्क के विकास की ओर ध्यान दिया जाता है हृदय को विकसित करने की ओर कोई लक्ष्य नहीं दिया जाता। यह एक ऐसी त्रुटि है जिसके कारण जगत् स्वार्थलोलुपता का अखाडा बन गया है।

गांधारी ने अपनी सखियो से कहा था—मैं भोग के लिए नहीं जन्मी हूं। मेरे जीवन का उद्देश्य सेवा करना है। अंधा पति पाने से मेरे सेवा धर्म की अधिक वृद्धि होगी अतएव इस सबध को स्वीकार कर लेने से सभी तरह लाभ ही लाभ है। पिताजी को लाभ है, भाई का सकट कम होता है, मुझे सेवा का अवसर मिलता है और आखिर वह (धृतराष्ट्र) भी राजपुत्र हैं। उनका भी तो ख्याल किया जाना चाहिए। कौन जाने मुझे सेवा का अवसर मिलना हो और इसलिए वे अंधे हुए हों !

मनुष्य बीमार होता है अपनी करनी से, लेकिन सेवाभावी डाक्टर तो यही कहेगा कि मुझे अपनी विद्या प्रकट करने का अवसर मिला है ! इसी तरह गांधारी कहती है—क्या ठीक है

जो मुझे सेवा का अवसर देने के लिए ही राजकुमार अन्धे हुए हों !

पुरोहित ने कहा—राजकुमारी, अभी समय है। इस समय के निर्णय का प्रभाव जीवनव्यापी होगा। आप सोलह सिंगार सीखी हैं, परन्तु अंधे पति के साथ विवाह हो जाने पर आप सोलह सिंगार किसे बतलाओगी ? आपके सिंगार एवं सौन्दर्य का अन्धे पति के आगे कोई मूल्य न होगा। इसलिए कहता हूं कि निःसकोच भाव से, सोच—समझकर निर्णय करो।

गांधारी फिर भी मौन थी। उसे मौन देख उसकी सखियों ने कहा—यह सब बातें इन्होंने सोच ली हैं।

राजकुमारी ने हमें सिखलाया है कि स्त्रियां स्वभावतः सिंगार प्रिय होती हैं लेकिन जो स्त्री ऊपरी सिंगार ही करती है और भीतरी सिंगार नहीं करती, उसके और वेश्या के सिंगार में क्या अन्तर है ? यह बात नहीं है कि कुलांगनाएं ऊपरी सिंगार करती ही नहीं, लेकिन उनके ऊपरी सिंगार का संबंध भीतरी सिंगार के साथ होता है। कदाचित् उनका ऊपरी सिंगार छिन भी जाए तो भी वह अपना भाव-सिंगार कभी नहीं छिनने देतीं।

राजकुमारी कहती हैं—मैं अंधे पति की सेवा करके यह बतला दूंगी कि पति और परमात्मा की उपासना कैसे होती है ?

गांधारी के उच्च भावनाओं से भरे विचार सुनकर पुरोहित दंग रह गया। उसने गांधारी की सखियों से कहा—राजकुमारी कैसे भी उच्च विचारों में गई हों परन्तु तुम्हारी बुद्धि कहां गई है ? तुम तो छोटी हो, आखिर तो दासी ही ठहरी न !

दासियां कहने लगीं— पुरोहितजी, आप ओछी और दासी भले कहिए, पर हम दासी हैं भी तो ऐसे उत्तम विचार वाली राजकुमारी की दासी हैं। राजकुमारी सरस्वती का अवतार हैं तो हम इनकी पुजारिनें हैं। हम तो इन्हीं की मति मानेंगी ! जो

सिंगार इनका है, वही हमारा भी है। जब यह अन्धे पति को स्वेच्छा से स्वीकार करती हैं तो हम क्या कहें ! हम तो इनकी सेविकाएं हैं।

महाभारत मे कहा है कि अधा पति मिलने से गांधारी ने अपनी आखो पर पट्टी बांध ली थीं। लेकिन यह कल्पना ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से उनके सेवा-व्रत मे कमी आ जाती है। हां, विषय-वासना से बचने के लिए अगर कोई आंखों पर पट्टी बांधे तो उसे बुरा भी नही कहा जा सकता। लेकिन गाधारी जैसी सती के विषय में यह कल्पना घटित नहीं होगी। अगर आंखो पर पट्टी बाधने का अर्थ यह हो कि वह जगत् के सौन्दर्य से विमुख हो गई थी—सौन्दर्य के आकर्षण को उसने जीत लिया था तो पट्टी बांधने की कल्पना मानी जा सकती है।

अन्त में पुरोहित ने कहा—तो राजकुमारी का यह अभिमत है जो उनकी सखिया कहती हैं ?

गाधारी—पुरोहितजी, सखियां अन्यथा क्यों कहेंगी ? आप पिताजी को सूचना दे सकते हैं।

पहले पहल गांधारी के सामने समस्या उपस्थित हुई कि अन्धे के साथ विवाह करना उचित है या नही ? मगर गांधारी शीघ्र ही निर्णय पर पहुच गई। कैसा भी कठिन प्रसग क्यों न हो, धर्म का स्मरण करने से कठिनाई दूर हो जाएगी। धर्म और पाप की संक्षिप्त व्याख्या यही है कि स्वार्थत्याग धर्म है और स्वार्थ-साधन की लालसा पाप है।

गांधारी ने स्वार्थ त्याग दिया। गाधारी जैसी सती का चरित्र भारत मे ही मिल सकता है, दूसरे देश में मिलना कठिन है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि अमेरिका जैसे सभ्य गिने जाने वाले देश मे १५ प्रतिशत विवाह सम्बन्ध टूट जाते हैं—तलाक हो जाती है, भारतवर्ष में पतन की अवस्था में भी यह बात

नहीं है ।

गांधारी में अपनी मातृभूमि के प्रति भी आदर्श प्रेम था। अन्धे पति का वरण करने में उसका एक उद्देश्य यह भी था कि इससे मेरी मातृभूमि का कष्ट मिट जाएगा । मातृभूमि की भलाई के लिए उसका इतना त्याग करना अपना कर्त्तव्य समझा । उसने सोचा—अन्धे धृतराष्ट्र के साथ विवाह कर लेने से बढ़ेगा और मेरी मातृभूमि की रक्षा भी होगी तो ऐसा करने मे क्या हर्ज है ।

सांसारिक दृष्टि मे देखा जाय तो अन्धे के साथ विवाह करने मे कितना कष्ट है ? अन्धा पति होने से सिंगार व्यर्थ होता है और सिंगार की भावना पर विजय प्राप्त करनी पड़ती है। मगर गांधारी ने प्रसन्नतापूर्वक यह सब स्वीकार कर लिया ।

अन्त में धृतराष्ट्र के साथ गांधारी का विवाह हो गया । गांधारी धृतराष्ट्र की पत्नी बनकर हस्तिनापुर आई ।

२–राजमती का पतिप्रेम

भारत की स्त्रियों का रहन सहन और उनकी संस्कृति प्राचीन काल से ही अन्य देशों के रहन-सहन और वहा कि संस्कृति से भिन्न रही है । यह भिन्नता आज भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है । भारत की स्त्रियां सदा उच्च आध्यात्मिक आदर्श को सामने रखती आई हैं । सीता, मदनरेखा, दमयन्ती, द्रौपदी आदि के चरित्र को भारत की स्त्रियां बड़े आदर से देखती हैं । अपने लिए आदर्श मानती हैं और उनके चरित्र को अपनी जाति के लिए गौरवपूर्ण समझती हैं । यद्यपि पाश्चात्य देशों का अनुकरण करने के लिए भारत की स्त्रियां भी विवाह-सम्बन्ध विच्छेद तथा पुनर्विवाह आदि

कानूनों की माग करने लगी हैं, परन्तु यह मांग कुछ ही अंग्रेजी शिक्षा से प्रभावित स्त्रियों की है, भारत की अधिकांश स्त्रियां तो इस प्रकार के कानूनो की मांग की भावना को हृदय में स्थान देना ही पाप समझती हैं। जिन स्त्रियो की ओर से इस प्रकार की माग हुई उसमें से भी बहुत-सी अब यह समझने लगी हैं कि इस प्रकार के कानूनो का परिणाम कैसा बुरा होता है तथा भारतीय सस्कृति के मिटने से कैसी हानि होगी। जिन देशों मे विवाह-विच्छेद कानून प्रचलित है, उन देशो के पति पत्नी आज दाम्पत्य-जीवन की ओर से कैसे दुःखी हो रहे हैं, वहा दुराचार का कैसा ताण्डव होता है, यह कहा नही जा सकता। केवल इंग्लैड में और वह भी घरेलू झगडो के कारण प्रतिवर्ष १५ हजार पत्निया पतियो को छोड देती हैं और ३५०० पति पत्नी को निश्चित अलाउन्स न दे सकने के कारण जेल जाते है।

भारत में कोई स्त्री ऐसी शायद हो निकले, जो सीता, दमयन्ती आदि सतियों का नाम न जानती हो, उनके चरित्र से यत्किंचित् भी परिचित न हो या उनके चरित्र को आदर की दृष्टि से न देखती हो। सीता और दमयन्ती जैसी स्त्रियाँ भारत में ही हुई हैं, जो उसके कष्ट पडने और पति द्वारा त्यागी जाने पर भी पति-परायणा ही रही।

सीता, मदनरेखा, दमयन्ती आदि जितनी भी पतिव्रता और पति-परायणा स्त्रियाँ प्राचीनकाल मे हुई हैं, राजमती उन सबसे बढकर हैं। सीता आदि और सतियो का अपने पति द्वारा पाणि-ग्रहण हो चुका था। वे थोडा बहुत पति सुख भोग चुकी थी और इस कारण वे यदि पतिभक्ता न रहती तो उनके लिए लोकापवाद अवश्यम्भावी था। लेकिन राजमती के लिए इनमें से कोई बात नहीं थी। राजमति का तो भगवान् अरिष्टनेमि के साथ विवाह भी नहीं हुआ था और भगवान् के लौट जाने के पश्चात् यदि वह किसी के

साथ अपना विवाह करती तो कोई उसकी निन्दा भी नहीं कर सकता था। लेकिन नीति के अनुसार विवाह नहीं हुआ था, इसलिए राजमती भगवान् अरिष्टनेमि की स्त्री नहीं बनी थी। फिर भी राजमती ने भगवान् अरिष्टनेमि को अपना पति मानकर उत्कृष्ट पति-प्रेम का जो परिचय दिया, उसके कारण राजमति भारत की समस्त सती स्त्रियों में अग्रणी मानी जाती हैं। राजमती के सतीत्व का उच्च आदर्श भारत के सिवा किसी देश वालो की कल्पना में भी आना कठिन है।

भगवान् अरिष्टनेमि तोरण द्वार पर से लौट आये। भगवान् अरिष्टनेमि विवाह किये बिना ही लौट आये।

इसी प्रकार भगवान् के उपदेश से प्रभावित उग्रसेन ने जब यह सुना तो राजमती का विवाह किसी दूसरे के साथ करने का विचार किया। अपनी पत्नी सहित वे राजमती को समझाने और किसी दूसरे पुरुष के साथ विवाह करने की स्वीकृति लेने के लिए राजमती के पास आये। वे राजमती से कहने लगे—'पुत्री, तू अरिष्टनेमि के लिए इतना दुःख क्यों कर रही है! अभी अरिष्टनेमि का और तेरा सम्बन्ध ही क्या हुआ था! विवाह तो हुआ ही नहीं था, जो तुझे किसी प्रकार की चिन्ता करनी पड़े! तू अभी कुमारी है। तेरा विवाह दूसरी जगह करने से नीति, धर्म या समाज किसी का भी अपवाद नहीं है। यद्यपि हम पहले तेरा विवाह अरिष्टनेमि के साथ ही करना चाहते थे, लेकिन हमने सुन रक्खा था कि अरिष्टनेमि विवाह करना नहीं चाहते हैं, इससे हमने इस विषय में कोई विचार नहीं किया था। फिर जब कृष्ण स्वयं ही आये और उन्होंने मुझ से अरिष्टनेमि के लिए तेरी याचना की, तभी मैंने यह विवाह सम्बन्ध स्वीकार किया था। इतना होने पर भी अरिष्टनेमि चले गये तो इससे अपनी क्या हानि हुई? यह तो उसके पिता, भ्राता आदि का ही अपमान हुआ, जिन्होंने मुझसे

तेरी याचना की और जो बारात सजाकर आये थे । एक तरह से अच्छा ही हुआ कि अरिष्टनेमि तेरे साथ विवाह किये बिना ही लौट गये यदि विवाह हो जाता और फिर वह तुझे त्याग जाते या दीक्षा ले लेते तो जन्म भर दुःख रहता । अब तू अरिष्टनेमि के लिए किंचित् भी दुःख या चिन्ता मत कर । हम तेरा विवाह किसी दूसरे राजा या राजकुमार के साथ कर देंगे ।

माता की अन्तिम बात सुनकर राजमती को बड़ा ही दुःख हुआ, वह अपने माता-पिता से कहने लगी—पूज्य पिताजी ! आर्य-पुत्री का विवाह एक ही बार होता है, दो बार नहीं होता । चाहे वह पति द्वारा परित्याग कर दी गई हो या विधवा हो गई हो । आर्य-पुत्री स्वप्न मे भी दूसरे पुरुष को नही चाहती । मेरा विवाह एक बार हो चुका है, अतः अब मैं दूसरा विवाह कैसे कर सकती हूँ ? और आपकी दूसरा विवाह करने की सम्मति भी कैसे उचित हो सकती है ?

माता—हम दूसरा विवाह करने को कब कह रहे हैं ? क्या हम आर्य-पद्धति से अपरिचित हैं !

राजमती—फिर आप क्या कह रही हैं ? यदि अब मेरा किसी दूसरे पुरुष के साथ विवाह हुआ, तो क्या वह पुनर्विवाह न माना जावेगा ?

माता—नही ।

राजमती—क्यों ?

माता—इसलिए कि अभी तेरा विवाह नहीं हुआ है ।

राजमती—आप भ्रम में हैं, मेरा विवाह हो चुका है ।

माता—किसके साथ ?

राजमती—भगवान् अरिष्टनेमि के साथ ।

माता—समझ में नहीं आता कि तू यह क्या कह रही है । अरिष्टनेमि अपने घर तक भी नहीं आये, उन्होने तुझ को और

तूने उनको भली भांति देखा भी नहीं, हमने कन्या-दान करके तेरा हाथ भी उन्हें नही सौंपा और तू कहती है कि विवाह हो गया !

राजमती—वे यहां तक नही आये, या आपने मेरा हाथ उनके हाथ में नहीं सौंपा, तो इससे क्या हुआ ? क्या विवाह के लिए ऐसा होना आवश्यक है ?

माता—आवश्यक क्यों नहीं है ?

राजमती—नहीं माता, आवश्यक नहीं है। यह तो एक बाह्य क्रिया है जिसका होना न होना इच्छा और परिस्थिति पर निर्भर है ।

माता—फिर विवाह का अर्थ क्या होगा ?

राजमती—हृदय से किसी को पति रूप, या पत्नी रूप स्वीकार करना, यही विवाह है । विवाह के इस अर्थ से संसार का कोई भी व्यक्ति इन्कार नही कर सकता, और इसी अर्थ को लेकर मैं कह रही हू कि मेरा विवाह भगवान् अरिष्ट-नेमि के साथ हो चुका । मैं भगवान् अरिष्टनेमि को हृदय से पति रूप स्वीकार कर चुकी हूँ, अत अब मैं किसी और पुरुष के साथ विवाह करके, आर्य-कन्या के कर्त्तव्य को दूषण नही लगा सकती ।

माता—राजमती, तू विवाह का जो अर्थ लगा रही है, उससे हम इन्कार नहीं करते, लेकिन हृदयगत भावो को ससार के सभी लोग नहीं जान सकते । इसलिए विवाह-सम्बन्धी स्थूल-क्रिया का होना आवश्यक है और जब तक वह न हो जावे, कोई पुरुष, या स्त्री, विवाह-बन्धन से बद्ध नही मानी जा सकती ।

राजमती—कोई दूसरा मुझे विवाह-सम्बन्ध में बद्ध माने या न माने, मैं तो अपने को ऐसा मानती हू ! विवाह-सम्बन्धी

स्थूल क्रिया देखने की आवश्यकता तो तब है, जब मैं अपने हृदय के भावों को छिपाऊँ। विवाह-सम्बन्धी स्थूल क्रिया भी हृदय के आश्रित है। केवल विवाह ही नहीं, समस्त कार्य का मूल हृदय है। जिस बात को हृदय एक बार स्वीकार कर चुका है, केवल सासारिक विषय-सुख के लिए उससे मुकरना, और विवाह-सम्बन्धी स्थूल क्रिया न होने का आश्रय लेना, कम से कम मैं उचित नहीं समझती।

माता—तू चाहे विवाह-क्रिया को न मान, लेकिन ससार तो मानता है न! यदि तू अभी किसी से यह कहे कि मैं अरिष्ट नेमि की पत्नी हूँ तो क्या ससार के लोग इस बात को मानेंगे! और तो और, क्या स्वय अरिष्टनेमि ही यह स्वीकार करेंगे कि राजमती मेरी पत्नी है?

राजमती - माता! भगवान् अरिष्टनेमि को मैंने पति माना है, इसलिए मैं अपने को विवाह-सम्बन्ध में बंधी हुई और भगवान् अरिष्टनेमि की पत्नी ही मानूंगी। मैं यह नहीं कहती, कि भगवान् अरिष्टनेमि ने भी मुझे पत्नी रूप में स्वीकार किया है, और इस-लिए वे विवाह-सम्बन्ध में बंधे हुए हैं। कदाचित् उन्होंने हृदय से मुझे पत्नी माना भी हो तब भी वे विवाह-सम्बन्ध में न बधा हुआ मान सकते हैं, लेकिन मैं ऐसा क्यों मानू? मेरा हृदय जैसा पहले था वैसा ही अब है। जैसा पहले भगवान् अरिष्टनेमि को अपना स्वामी मानती थी, वैसा ही अब मानती हूँ। फिर मैं, स्थूल क्रिया क्यों देखू!

माता - देख राजमती, तू उतावली बनकर अपने लिये इस प्रकार का निर्णय मत कर। काम विकार की प्रचण्ड तरगों में बडे-बडे बह जाते हैं, तो तू तो अभी लडकी है।

राजमती — माता, आपका यह कथन ठीक है। काम के सामने, बड़ो २ को नतमस्तक होना पडता है, यह मैं मानती हूँ।

लेकिन यदि मेरे विवाह की स्थूल क्रिया हो गई होती, और मैं वह क्रिया होते ही विधवा हो जाती, तो क्या उस दशा में काम मुझ पर प्रकोप न करता ? यदि करता, तो उस काम प्रकोप से बचने के लिए आप मुझे क्या सम्मति देती ? क्या उस दशा में, आप मुझे दूसरा विवाह करने को कहतीं ? उस समय तो आप भी, मुझे धैर्य रखने का ही उपदेश देती । जो कार्य मैं स्थूल क्रिया से विवश होकर करती, वही कार्य हृदय की प्रेरणा से क्यों न करू ? ससार के लोग बुद्धिमान हैं, इसी से वे स्थूल क्रिया न होने के कारण दूसरा विवाह करना अनुचित न मानते होंगे, परन्तु मुझ में इस प्रकार का विचार करने की बुद्धि ही नहीं है । मैं तो अपनी बुद्धि भी उन्हीं के समर्पण कर चुकी हूं, जिन्हें मैंने हृदय से पति माना है ।

राजमती का अन्तिम उत्तर सुनकर, उसके माता-पिता, राजमती का विवाह करने की ओर से हताश हो गये । उन्होंने, राजमती से अधिक कुछ कहना-सुनना अनावश्यक समझा, और राजमती से यह कह कर वहाँ से चले गये, कि तू इस विषय पर शान्ति से विचार कर । उन्होने राजमती की सखियों से भी कहा, कि तुम लोग, राजमती को सब बातों का ध्यान दिलाकर समझाओ । इस प्रकार हठ पकडने का परिणाम, इसके लिए अच्छा न होगा ।

राजमती के माता-पिता के चले जाने के पश्चात्, राजमती की सखियाँ, राजमती को समझाने लगी वे कहने लगीं—सखी, ससार में कोई भी मनुष्य, सुख को दु.ख से बदलना नहीं चाहता, न कोई भी आदमी, अपने को बलात् दु.ख में डालता है । यह बात दूसरी है कि विवश होकर दुःख सहना पड़े, परन्तु प्रयत्न, सुख प्राप्ति का ही करते हैं । फिर आप अपने लिए दुःख क्यों मोल ले रही हैं ? जब आपका विवाह अभी हो सकता है,

तब इस सुख-सुयोग को क्यो ठुकरा रही हैं ? महाराज और महारानी ने आपसे जो कुछ कहा है उस पर भली प्रकार विचार करो और विवाह का सुअवसर न जाने दो। अन्यथा फिर पश्चात्ताप करना पडेगा।

सखियो की बातें सुनकर राजमती कहने लगी—सखियों! मुझ बुद्धिहीना की समझ मे, तुम लोगो की बातें जरा भी नहीं आती। मैं विचार करने बैठती हू, तब भी मेरे विचार मे भगवान् अरिष्टनेमि के सिवा, और किसी का ध्यान तक नहीं आता। सच्ची बात तो यह है, कि अब मेरे मे या तो बुद्धि-ही नहीं रही, या वह परतन्त्र बन गई है। बुद्धि पर भी भगवान् अरिष्टनेमि का आधिपत्य हो गया है। मैं तो बिलकुल वह विक्षिप्ता हूं, जिसे केवल भगवान् अरिष्टनेमि की ही धुन है। हृदय कहता है, कि इस जन्म के लिए तो तू भगवान् अरिष्टनेमि को अपना पति बना चुकी है। अब तुझे दूसरा-पति बनाने का अधिकार नहीं है। हां मस्तक दूसरा पति बनाने के विषय मे विचार कर सकता था, परन्तु हृदय ने, उसे भी अपने प्रभाव से प्रभावित कर लिया। ऐसी दशा में, तुम्हारी बात समझ में आवे तो कैसे! सखियों इस प्रकार की बातें करके, मुझ दुःखिनी के हृदय को और दुःखित न करो। मेरे लिए, पति का विरह ही असह्य हो रहा है। मेरे लिए एक-एक दिन वर्ष के समान बीतता है, और एक-एक रात युग के समान बीतती है। मेरा हृदय प्राणनाथ के वियोग से जल रहा है। उस जलते हुए हृदय पर तुम इस तरह की बातें करके नमक मत लगाओ। कहा तो मैं सोचती थी कि विवाह होते ही मैं पति के साथ आनन्द पूर्वक सुख भोग करूंगी, आगामी शरद्काल की स्वच्छ निर्मल रात पति के साथ सुख पूर्वक बिताऊंगी और चकोरी की तरह पति के चन्द्रमुख को देखकर आनन्दित होऊंगी, लेकिन कहां तक विरह-वेदना सहनी पड रही

है ! सखियो का कर्त्तव्य ऐसे समय में मुझे विरह-वेदना से मुक्त करने का प्रयत्न करना तथा धैर्य देना है लेकिन आप लोग तो ऐसी बातें करती हो कि जिससे मेरा दुख वृद्धि पाता है। सखियों इसमें तुम्हारा किंचित् भी अपराध नही है। यह तो मेरे पूर्व पापों का ही कारण है। यदि ऐसा न होता तो प्राणनाथ मुझे विरह-ज्वाला मे जलने के लिए छोड कर ही क्यों चले जाते और आप भी सखियो के योग्य कर्तव्य को क्यो भूलती ? फिर भी मे तुमसे यह अनुरोध करती हू कि इस प्रकार की बातें करके मुझे कष्ट मत पंहुचाओ। भगवान् के सिवा ससार के और समस्त पुरुषों को पिता-भ्राता के समान मानती हू। मेरे पति तो भगवान् ही हैं। मैं उन्ही के नाम पर अपना जीवन बिताऊगी।

सखियो, तुम मुझे यह भय दिखाया करती हो कि किसी दूसरे के साथ विवाह न करने पर, जब काम का प्रकोप होगा तब दुख पाओगी, लेकिन क्या काम मुझ अबला को ही कष्ट देगा ? पति को कष्ट न देगा ? पति ने मुझे त्याग कर किसी दूसरी का पाणिग्रहण तो किया ही नही है, जो उसके कारण पति को काम-पीडा न हो, और मुझे ही हो। जिस स्थिति मे पति है, उसी स्थिति में मैं हूँ। जब वे काम से होने वाले कष्ट सहेगे तो मैं क्या सहूँ। मैं उन कष्टों से भय खा कर अपने विचार से पतित क्यों हो जाऊँ ! स्त्री का कर्त्तव्य पति का अनुगमन करना है, अत जिस प्रकार पति कष्ट सहे, उसी प्रकार मुझे भी कष्ट सहने चाहिए और यदि पति, काम पर विजय प्राप्त करें, तो मुझे भी वैसा ही करना चाहिए। इसलिए तुम लोग, मुझे इस प्रकार का भय न दिखाओ किन्तु पति का अनुसरण करने की ही शिक्षा दो।

राजमती की बातों से, सखियाँ चुप हो गई। उन्होने

फिर भी, राजमती को समझाने और विवाह करना स्वीकार करने के लिए बहुत प्रयत्न किया परन्तु उसका सब प्रयत्न निष्फल हुआ। राजमती भगवान अरिष्टनेमि के प्रेम में ऐसी रंग गई थी, कि अब उस पर किसी की बातो से कोई दूसरा रंग चढता ही न था।